जय सोमनाथ

प्रथम संस्करण का आमुख

'ईस्ट एण्ड वैस्ट' नामक अंग्रेजी मासिक के १६११ के नवम्बर-दिसम्बर अंक में मैंने 'सोमनाथ की जीत' शीर्षक ऐतिहासिक लेख लिखा था। उसी समय से मुझे इस विषय में रुचि है। उसके कई वर्ष बाद 'पाटन का प्रभुत्व' की शृङ्खला को जोड़ने वाली इस कथा को लिखने की इच्छा हुई। इस इच्छा को मैंने प्रकट भी किया था।

लेकिन यह इच्छा मन-की-मन में रह गई। उसके बाद १६३५-३६ में आरम्भ की हुई यह कथा १६३७ में पूर्ण हुई।

गजनी के अप्रतिरथ विजेता सुल्तान महमूद ने जब सोमनाथ पर चढ़ाई की तब हिन्द की—विशेषकर गुजरात की—क्या दशा थी, इसी का चित्रण करने का इसमें कुछ प्रयत्न किया गया है। एक ओर प्रबन्ध-कुशल प्रचण्ड विजेता और दूसरी ओर वीरत्व की चिनगारियों जैसे राजा लोग, इन दोनों के आरम्भिक प्रयत्नों में अनेक महाकाव्यों की सामग्री भरी पड़ी है।

इस आक्रमण की मूल बातें मुस्लिम इतिहास में मिलती हैं, परन्तु अनेक प्रकार की सामग्री की छानबीन करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इनमें तथ्य कम है। मैं इसके कारणों को संक्षेप में यहाँ दे सकता हूँ—

१—भारतीय इतिहास में इस आक्रमण का कुछ भी उल्लेख नहीं।

२—मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता कहता है कि "नहरवाल (अनहिलवाड़) का राजा विरहमदेव (भीमदेव) अजमेर के नरेश तथा अन्य राजाओं की सेनाओं को एकत्रित करके सुल्तान का रास्ता रोकने

जीवन और महत्त्वाकांक्षा को अपने जीवन का लक्ष्य मानने वाले व्यक्तियों ने इसमें अच्छे रंगों के लिए स्थान भी नहीं छोड़ा है। मुझे तो अपनी साहित्यिक चेतना का मानदण्ड बदलना ही था। जैसा भी कुछ है, यह कथा गुजरात के चरणों में रखता हूँ। आज अनेक वर्षों का एक संकल्प पूरा हो रहा है, यही मेरे लिए सन्तोष की बात है।

महाबलेश्वर,
२०-५-४०

—कन्हैयालाल मुन्शी

की भारी तैयारी कर रहा था, इसलिए उसने सिन्ध के मार्ग से मुलतान जाने का विचार किया। मार्ग में असह्य गरमी और पानी के नितान्त अभाव के कारण सेना का अधिकांश भाग पागल होकर मर गया।"[1] तो भीमदेव की इतनी बड़ी विजय का उल्लेख किसी प्रशस्ति में, द्वयाश्रय में, कीर्तिकौमुदी में या किसी दूसरे इतिहास में क्यों नहीं है?

३—मुस्लिम इतिहास कहते हैं कि महमूद ने पाटण की गद्दी पर किसी डाबीसलीम नामक व्यक्ति को कर-दाता के रूप में बिठाया था। इस बात के लिए कोई भारतीय आधार नहीं।

४—हमारे उपलब्ध ऐतिहासिक आधार भीमदेव के राज्यकाल को सदैव शृङ्खलित बताते हैं। वि० सं० १०८६ के ताम्रपत्र के अनुसार भीमदेव कच्छ पर राज्य करते थे और वि० सं० १०८८ में इनके मन्त्री विमल ने आबू पर एक बड़ा मन्दिर बनवाया था।[2] यदि आक्रमण १०८२-८३ में हुआ माना जाए तो १०८८ की यह सत्ता और समृद्धि वाली बात कुछ अजीब-सी लगती है।

५—सोमनाथ के आक्रमण का पहला ब्यौरेवार वर्णन महमूद के दो सौ वर्ष बाद लगभग १२३० ई० में इब्न असीर की 'कामिलुत्त-वारीख' में मिलता है।

६—कितने ही मुस्लिम इतिहासकारों ने जो सोमनाथ की मूर्ति का वर्णन किया है वह हिन्दुओं की दृष्टि से असम्भव है। इतना ही नहीं, वरन् अलबरूनी, जिसने स्वयं इस मूर्ति को देखा था, इस बात की साक्षी देता है कि सोमनाथ का लिंग था और वह वैसा ही ठोस था जैसा कि शिव-मन्दिरों में होता है।[3]

१—फरिश्ता—जिल्द १, पृष्ठ ७५। रतिकान्त भट्टगुर्जरेश्वर भीमदेव सोलंकी, बुद्धिप्रकाश, जुलाई-सितम्बर १९३५ का अंक।

२—दुर्गाशंकर शास्त्री—'गुजरात का मध्यकालीन इतिहास,' भाग १, पृष्ठ १८९-१९०।

३—रतिकान्त भट्ट का उपर्युक्त लेख।

पहला प्रकरण

जगत् के नाथ

: १ :

संवत् १०८२ की कार्तिक सुदी एकादशी थी। जैसे लोहा चुम्बक से खिचता चला आता है वैसे ही यात्री सोमनाथ के परम पूज्य शिवालय की ओर आकर्षित होकर खिचे चले आ रहे थे।

कोई देलवाडा के रास्ते, कोई वेरावल बन्दर से, कोई जूनागढ़ के रास्ते; कोई सुखी, कोई दुखी; कोई सबल, कोई रोगी; कोई लूला, कोई लॅंगडा, कोई पैदल, कोई गाडी में, कोई घोडे पर या रथ मे, कोई ऊँट पर या हाथी पर, कोई भजन गाता, कोई कीर्तन करता, कोई एकतारे की धुन मे, कोई झाँझ-पखावज की ताल के साथ, कोई रक्षकों द्वारा सुरक्षित धन-राशि लेकर, कोई जीवन-भर की सचित पूंजी लिये, कोई निर्धनता में मस्त भिक्षा द्वारा ही मजिल तय करता हुआ, कोई बाधाओं से पिंड छुड़ाने, कोई भक्ति-विभोर; कोई धन त्यागने और कोई धन-संग्रह करने; कोई बेचने और कोई बिकवाने, कोई पुण्य कमाने और कोई पाप धोने।

—वे चले आ रहे थे, हजारो की सख्या मे। वे एक ही परम कर्तव्य को सामने रखकर आ रहे थे—देव का दर्शन। और उनके कानो मे एक ही पुण्यनाद गूंज रहा था—'जय सोमनाथ'।

—वे चले आ रहे थे—प्रभास के कोट के बाहर और भीतर, रास्ते में, पेड़ के नीचे, घर की छाया में या धर्मशाला मे—बैठते, सोते या भोजन की तैयारी करते।

—वे चले आ रहे थे—सूर्य-तेज में जगमगाती भगवान् शंकर की

थी। इस शाखा के अवशेष रूप अघोरी और कांचलिया आज भी चले आते हैं।

पाशुपतमत के केन्द्र गंग सर्वज्ञ के प्रभास में इन शाखाओं की प्रतिक्रियाओं का उल्लेख कुछ अखरेगा, परन्तु उसके बिना ग्यारहवीं शताब्दी के प्रभास का दिग्दर्शन अयथार्थ ही होगा।

'प्रबन्ध-चिन्तामणि' कुमारपाल-प्रबन्ध में भीमदेव की पत्नी और क्षेमराज की माँ को वीरांगना कहा गया है—

श्री मदणहिल्लपुरपत्तने वृहति श्री भीमदेवे साम्राज्यं पालयति श्री भीमेश्वरस्य पूरे चउलादेवी नाम्नी परायाङ्गना···तामन्तःपुरेण्यधात्।[1]

उसके पुत्र का नाम क्षेमराज या हरपाल था,[2] और बड़ा होने पर भी उसे इसी कलंक के कारण गद्दी नहीं मिली।

गर्वीले चालुक्य ने नर्तकी को अपनी पत्नी बनाया, इसी बात पर चौला के चरित्र का निर्माण हुआ है। मेरुतुंग ने चौलादेवी को अन्तःपुर में रखने का जो कारण बताया है उसकी अपेक्षा इस कथा में दिया गया कारण अधिक सुन्दर है।

यह कथा 'पाटन का प्रभुत्व', 'गुजरात का नाथ' और 'राजाधिराज' की कथा-माला का दाना अवश्य है, तथापि इसकी कल्पना, शैली, रचना और शिल्प-विधान में बड़ा अन्तर है। यह अन्तर उतना ही है जितना कि पच्चीस और बावन वर्ष के आदमी में होता है।

साहित्य-सर्जन के स्वरूप-निर्माण के लिए मैंने अनेक प्रयोग किये हैं। कथाकार-शिरोमणि ड्यूमा का प्रभाव कई अंशों में जाता रहा है। इसलिए सम्भव है कि रुचि से पढ़ने वाले पाठक को इसका शिल्प-विधान पहले तीन उपन्यासों जैसा अच्छा नहीं लगे। पर भीषण प्रसंगों, करुण

१—'प्रबन्ध-चिन्तामणि'—कुमारपाल प्रबन्ध।

२—श्री दुर्गाशंकर शास्त्री—'गुजरात का मध्यकालीन राजपूत इतिहास', पृष्ठ २०१।

उन्हें पीताम्बर और चतुर्भुजधारी विष्णु के दर्शन हुए।

हिरण्यगर्भ ने अपने हृदय में घुमड़ता हुआ प्रश्न पूछा, 'मैं किसका पुत्र हूँ?' विष्णु ने उत्तर दिया, 'जगत् का स्रष्टा मैं हूँ और मेरे द्वारा तुम्हारा जन्म हुआ है।' इस अपमान को सहने में अशक्त ब्रह्मा क्रोधाभिभूत हो गए और विष्णु के साथ घोर युद्ध करने की ठानी। शत-दल कमल के प्रकाश में तुमुल द्वन्द्व-युद्ध आरम्भ हुआ। उस समय युद्ध में मस्त इन दो योद्धाओं के बीच शत-शत ज्वालाओं से सुशोभित, प्रलय समुद्र के अग्नि-समूह के समान तेजस्वी, क्षय और वृद्धि से रहित, अनिर्वचनीय और अतर्कित सृष्टि का मूल-रूप यह ज्योतिर्लिङ्ग प्रकट हुआ और तत्काल विष्णु ने वाराह और ब्रह्मा ने हंस का रूप धारण करके पाताल और आकाश में उसका पार पाने का प्रयत्न आरम्भ किया।

पहले इस लिंग के ऊपर चन्द्रमा ने स्वर्ण का मन्दिर बनवाया। जब सतयुग का भी आविर्भाव नहीं हुआ था, तब वहाँ अमृत का स्वामी, अखण्ड स्वरूप में स्थित बारहों महीनों की रात्रियों को शोभाशाली बनाता रहता था। लेकिन बृहस्पति की साध्वी स्त्री तारा को ललचाने वाला चन्द्र कर्तव्यभ्रष्ट था। वह अपनी सत्ताईस पत्नियों में से केवल रोहिणी के पीछे ही उन्मत्त होकर घूमता रहता था। लापरवाह पति से ऊब-कर उसकी अन्य छब्बीस पत्नियाँ अपने पिता दक्ष के पास रोती-झींकती पहुँचीं। दक्ष पुत्रियों का दुःख न देख सका। उसने क्रोध में आकर शाप दिया, 'तू क्षय-रोगी हो।' शाप सुनकर चन्द्रिकाहीन रात्रियों के अनु-भव करने के भय से तीनों लोक थर-थर काँपने लगे।

प्रतिपल क्षीण होता चन्द्रमा, ससुर के शाप से जलता हुआ अन्त में इस ज्योतिर्लिङ्ग की शरण में आया। उसने अनेक युगों तक तप किया। अन्त में इस लिंग ने तप से प्रसन्न होकर चन्द्रमा का क्षय रोका और वरदान दिया, 'पन्द्रह दिन क्षय होगा और पन्द्रह दिन वृद्धि होगी।' उसी समय इस लिंग को सोमनाथ कहकर सम्मानित किया गया और ऋषियों एवं देवताओं ने चन्द्रकुण्ड की स्थापना की तथा चन्द्रमा ने स्वर्ण का मन्दिर बनवाया।

तीन सौ नर्तकियाँ दिन और रात नृत्य किया करती थी। लेकिन वह स्वय सबसे अलग थी। किसी के भी पैर ऐसे सुन्दर और सबल न थे। किसी की कमर इतनी सुन्दरता के साथ नहीं लचकती थी। गंग सर्वज्ञ भी सदा उसे बुलाकर उसकी खबर पूछते और उसे विश्वास था कि वे स्वयं भी उसमे रस लेते थे। कई बार जब नाचते-नाचते उसके पैर थक जाते तो सोमनाथ उसे शक्ति देते थे। कई बार स्वप्न मे त्रिशूलधारी ने दर्शन देकर उससे कहा था कि 'बेटी, तू मेरी सच्ची नर्तकी है।' और वह भी अपने देव की ही थी—तन और मन से, श्वास और प्राण से। जीवन-भर भगवान् के चरणो मे नृत्य करने के अतिरिक्त उसे और कुछ अच्छा ही नही लगता था। जीवन-भर नृत्य करना, 'जय सोमनाथ' की घोषणा के साथ नृत्य करते हुए देव के गर्भ-द्वार के आगे प्राण छोड़ना, इससे अधिक सुन्दर ध्येय उसकी कल्पना मे आता ही न था।

: ७ :

देवालय की नृत्यशाला के नियमानुसार अठारह नृत्य-शास्त्रों, बारह अभिनय-शास्त्रो और सात सगीत-शास्त्रों मे निष्णात अठारह वर्ष की बाल-नर्तकी को कार्तिक की एकादशी की आरती के समय प्रथम बार देव के आगे नृत्य करने का अधिकार मिलता था। उस धन्य पल मे एक बाल-पुष्प विकसित होता, देव को समर्पित होता, और फिर उसका अव-शिष्ट अंश रोज नृत्य करती नर्तकी के रूप मे सूखता रहता।

चौला को इस क्षण-भर के प्रकाश के पीछे छिपे अन्धकार का ज्ञान न था। आज वह नृत्य करेगी; स्वय सोमनाथ उस पर प्रसन्न होंगे। उसको प्रसन्न करने के लिए क्या उसने कम तप किया था? नृत्यकला मे पारंगत होने के लिए उसने इन्द्रियो का दमन कर डाला था। न उसने आहार बढ़ाया था, न निद्रा बढ़ाई थी और न पुरुष का स्पर्श किया था। सोमनाथ अवश्य प्रसन्न होंगे और, और···सदैव एकादशी और शिवरात्रि को देव उसके अतिरिक्त और किसी का नृत्य देखेंगे ही नहीं, उसे पूरा-पूरा विश्वास था। बहुत बार पौ फटने से पहले ही निर्जन सभामण्डप में जाकर उसने सोमनाथ की आराधना की थी और वरदान मांगा था कि मुझे ऐसी अपूर्व कला दो, जिसकी कोई कल्पना तक न कर सके। और

चल जाएगा, ऐसा उसकी माता मानती थी। कभी-कभी तो उसके मन में यह संशय भी उठता कि प्रौढ़ होने पर भी उसे समझ आएगी या नहीं।

आज गंगा की परीक्षा थी। चौला आज पहली बार महा-शिवपूजा के अवसर पर नृत्य करने वाली थी। इस अवसर के लिए उसने कितने ही वर्षों से तैयारी की थी। गत वर्ष जब सर्वज्ञ ने उसके सम्बन्ध में कहा था तो गंगा ने यह कहकर कि अभी चौला बच्ची है, अभी उसकी शिक्षा अधूरी है, बात उड़ा दी थी।

राजधानी पर भक्ति-भावपूर्ण नेत्र गड़ाते हुए, उसके हजारों मन्दिरों के शिखरों पर नाचती हुई ध्वजाओं से अपने हृदयों को उल्लसित करते हुए सोमनाथ के मन्दिर के सोने के कलश के मोहक तेज से मुग्ध होते हुए और उसकी भगवा रंग की मोहिनी पताका की विजयी फरफराहट में मोक्ष-मार्ग निहारते हुए।

और वे चले आ रहे थे नगर के मुख्य द्वार में परस्पर टकराते हुए हुंकार भरते हुए और 'जय सोमनाथ' का जयघोष करते हुए।

: २ :

सोमनाथ का शिवालय न तो कोई घर था, न शहर और न स्वस्थ प्रदेश। शताब्दियों की श्रद्धा ने उसे देवभूमि के समान समृद्ध और मोक्ष-प्रद बना डाला था।

उसके कोट के बाहर श्मशान में काले, मोटे, अक्खड़, महाव्रतधारी कपालों का झुण्ड पड़ा हुआ था—खोपड़ियों के आभूषणों से भय पैदा करता हुआ, राख या नरमांस खाता हुआ और हुंकार के साथ खोपड़ियों में से मदिरा पीता हुआ।

उसके कोट के भीतर घुसते ही धर्मशालाएँ थीं, जिनमें धनवान यात्री पड़े थे। उस स्थान के बाईं ओर तेली, मोची और गरीब लोग रहते थे। उसके दाईं ओर दुर्गपाल, चौकीदार और पहरेदारों का निवास था।

दरवाजे के चौड़े रास्ते से आगे चलकर, कुएँ और बावड़ी को छोड़-कर बाजार पड़ता था। वहाँ गुजराती व्यापारी संसार के कला-कौशल की सामग्री इकट्ठी करके यात्रियों को बेचते थे। ताँबे-पीतल के बर्तन, रेशमी और जरी के कपड़े तथा नाना प्रकार के आभूषण वहाँ दृष्टिगोचर होते थे। वहाँ गुजराती साहूकारों का पूर्वज पैर-पर-पैर रखे, मोटी तोंद पर हाथ फेरता हुआ ब्याज पर रुपया देकर धनाढ्य होने में रात-दिन संलग्न रहता था।

बाजार के दोनों ओर उच्च जाति की बस्ती थी। वहाँ से आगे चलकर अन्तरकोट आता था और उसके पास ही बाहर की ओर ब्राह्मणों का निवास था। वहाँ दो हजार श्रोत्रिय वेदाभ्यास, पूजा-पाठ और शास्त्रीय विधि से इस लोक में सोमनाथ की कीर्ति और परलोक में अपना

और यात्रियों का समूह आरती लेने में डूब गया।

शिवपूजा की पूर्णाहुति हुई और गंग सर्वज्ञ बाहर आकर एक स्वर्ण के सिंहासन पर बैठे। उनके पास ही शिवराशि और वे अतिथि बैठे।

'भीमदेव, बेटा,' सर्वज्ञ ने राजा जैसे लगने वाले अतिथि से कहा, 'आख़िर धाराधीश ने गाँव दिये तो सही।'

भीमदेव प्रेमपूर्वक आगे आया और कहने लगा, 'लेकिन महाराज, मन्दिर का जीर्णोद्धार तो मैं ही कराऊँगा।'

'जैसी तेरी भक्ति और देव की इच्छा,' सर्वज्ञ ने हँसकर कहा। और कुछ आदमियों के चरण स्पर्श कर जाने के बाद पूछा, 'कब आओगे?'

'आगामी वर्ष, क्यों विमल?' भीमदेव ने मन्त्री की ओर मुड़कर कहा।

'हाँ, अवश्य,' हँसते हुए उसके सुन्दर साथी ने कहा, 'यदि आदीश्वर करेंगे तो तब तक महाराज के हाथ में मालवा भी आ जाएगा।'

सर्वज्ञ कुछ गम्भीर होकर उसे देखते रहे। आदीश्वर का नाम और मालवा के साथ युद्ध, ये दोनों विषय उन्हें अच्छे नहीं लगे।

'अब नृत्य का समय हो गया,' सर्वज्ञ ने कहा।

सहसा दरवाज़े पर लोगों का हल्ला मच गया और बात अधूरी रह गई। तलाश करने पर मालूम हुआ कि अन्दर आने की खींचातानी में कोई कुचल गया था। चिल्ल-पुकार मची और मशालची इधर-उधर दौड़ने लगे।

थोड़ी देर बाद शान्ति हो गई और परकोटे के दक्षिण की ओर वाले दरवाज़े से सभामण्डप तक डोरी बाँधकर जो अलग रास्ता बनाया गया था, उसकी ओर सब लोग देखने लगे।

पहले दो मशालची आये। पीछे गंगा आई—चमकदार पोशाक पहने। उसके पीछे सफ़ेद कपड़ों में लिपटी एक छोटी-सी स्त्री आई। उसके पीछे छः नर्तकियाँ आईं। साथ ही मृदंग और वाद्य बजाने वाले भी आये।

ये सब सभामण्डप में आये और पृथ्वी पर झुककर महादेव को

जिसको रिझाने के लिए उसने इतने वर्षों से एकाग्रचित्त होकर तपस्या की थी, उस अपने जीवन-सर्वस्व पर। अहा ! भोले शम्भु उसकी बाट देख रहे थे, उसका नृत्य देखने के लिए अधीर हो रहे थे, उसे वाहवाही देने को तत्पर थे। शीघ्र उसके पगों में चेतना आई। झांझ की अविरत झंकार के साथ वह, वेगवती सरिता के प्रवाह की भाँति, सीधी गर्भद्वार तक आई और मृदंग का ठेका शुरू हुआ।

चौला की शिराओं में रुधिर का वेग बढ़ा। यह चौला न थी, पर्वत-कन्या थी; यह सोमनाथ का मन्दिर न था, तपस्या में अविचल उसके प्राण थे। वह पार्वती के रूप में पूजा कर रही थी। उसके पैर, उसके हाथ, उसकी कमर, उसकी गरदन पूजा करती हुई पार्वती के भावों को बना रहे थे। उसके मुख पर भोली-भाली पागल पुजारिणी का भाव था; उसकी आँखें आतुर और भक्तिभावापन्न थी। उसने खड़ी रहकर, बैठकर, झुक-झुककर पूजन किया। हाथ के अभिनय द्वारा उसने अक्षत-चन्दन चढ़ाए, दोनों हाथों से पुष्प समर्पित किये। उसके समस्त अंगों की मरोड़ से शम्भु को रिझाने की तड़प निकल रही थी।

पुजारिणी थकी। पग शिथिल हुए, हाथों में शिथिलता दिखाई दी; मुख पर खिन्नता आई, संगीत मन्द हुआ, ताल का ठेका धीमा हुआ; उसके मुख का उत्साह धीरे-धीरे लुप्त हुआ. दयनीयता भी आती गई; आंखों में निराशा छाने लगी।

चौला अभिनय नहीं करती थी। जैसा पार्वती ने तप किया था वैसा ही उसने किया था और अब वह शम्भु को रिझाने बैठी थी। यदि वे न रीझें तो ? आन्तरिक भावना से उसने नृत्य को अपने वश में कर लिया था।

तत्क्षण उसका भाव बदला। उसने कामदेव को आता देखा। उसके मुख पर उमंग खेलने लगी। अभिनय में चेतनता आई, पग के ठेके धीमे होने पर भी आशापूर्ण हुए। धीमे-धीमे पग आशापूर्ण ताल पर नाचने लगे।

वह चौकी—आशापूर्ण होकर। उसका आधा शरीर टेढ़ा हुआ; उसके विह्वल नेत्र स्थिर हो गए और धीरे-धीरे पीछे लौटी। कामदेव का

युग बीत गए। लंकाधिपति रावण ने जगत् को अपने अधिकार में करने के लिए यहाँ उग्र तप किया। शम्भु को रिझाने के लिए उसने एक के बाद एक मस्तक काटकर सोमनाथ के चरणों में रख दिए। अन्त में जब वह अन्तिम मस्तक काटने को तैयार हुआ तब कृपासिन्धु जैसे शिव प्रसन्न हुए और दसों मस्तकों को लौटाते हुए, रावण को बिठाकर उसे विश्व-विजय का परवाना दे दिया। उस समय रावण ने इस स्थान पर चाँदी का मन्दिर बनवाया।

जब द्वापर और कलि की सन्धि में यादवकुल-शिरोमणि श्रीकृष्ण-चन्द्र ने सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों सहित इस लिंग की आराधना करके पुरुषोत्तम पद प्राप्त किया, तब उन्होंने यहाँ चन्दनकाष्ठ का मन्दिर बनवाया।

कालान्तर में जब कलि का प्रभाव बढ़ा तब वल्लभीपुर के परम माहेश्वर राजाओं ने उसे पत्थर का कर दिया। ऐसा कहा जाता है कि जब यह मन्दिर बना तब विश्वकर्मा ने सहायता की और गन्धर्व-किन्नरों के गान और नृत्य द्वारा उसकी स्थापना हुई।

: ४ :

इस ज्योतिर्लिङ्ग पर दिन-रात रुद्री होती, उसके सामने सभा-मण्डप में सूर्योदय से मध्यरात्रि तक सतत नृत्य होता रहता।

दीपस्तम्भ के आगे होकर प्रदक्षिणा के मार्ग में पड़ने वाले परकोटे में तीन छोटे दरवाजे मिलते थे। एक में होकर पाशुपत मठ में जाते थे, जहाँ कि पूज्यपाद गंग सर्वज्ञ रहते थे।

ये शंकर के अवतार लकुलेश द्वारा स्थापित सम्प्रदाय के अधिष्ठाता थे। समस्त ज्ञान के भण्डार होने से उन्होंने 'सर्वज्ञ' की उपाधि प्राप्त की थी। उनकी कीर्ति प्रत्येक लोक में व्याप्त थी। काश्मीर से कांची तक के शिष्य उनका गुण-गान करते थे। देश-देश के राजा अपने मुकुटों की मणियों के तेज से उनके पैर धोते थे। उनकी छोटी-से-छोटी इच्छा में लोगों को भगवान् सोमनाथ की आज्ञा सुनाई देती थी। उनकी गिनती देवताओं में नहीं थी, लेकिन उन्होंने ऐसा तपोनिधित्व प्राप्त किया था जो देवताओं को भी दुर्लभ था।

और विशाल हो गई।

प्रणय-विह्वल पार्वती बनते-बनते वह प्रणय-विह्वल वधू बन गई। उसके पग नाचते नहीं थे, पृथ्वी को स्पर्श किये बिना ही उठते थे। उसके हाथ छटा के साथ बल नहीं खा रहे थे, तीव्र वायु में झुकती, झूमती और उलझती बेलें बन रहे थे। उसका मुख प्रणय-तत्त्व के सदृश अदृश्य प्रकाश से झिलमिला रहा था।

उसने उल्लास में प्रदक्षिणा की, वृषभ को छाती से लगाया। शम्भु का आलिंगन करती हुई रुण्डमाला में खो गई। वह आलिंगन से दब गई, चुम्बन से शरमा गई।

वह नृत्य करने लगी। बढ़ते हुए मृदंग का ठेका और झाँझ की झंकार धड़कते हृदय का साथ देने लगे। चौला ने संयम छोड़ दिया। नृत्य प्रणय-काव्य बन गया। चुम्बित, मुदित, आनन्द की चरमता का अनुभव करती हुई वह पृथ्वी पर गिर पड़ी।

वाद्य और मृदंग एकदम रुक गए। सभा चित्र-लिखी-सी रह गई। सर्वज्ञ स्वस्थ हुए और उन्होंने अपनी आँखों से गर्वाश्रु पोंछ डाले।

इसके पश्चात् आज सत्ताईस वर्ष से महाशिवरात्रि को जो काम करते कभी किसी ने नहीं देखा था वह आज देखा। वे जहाँ बैठे थे वहाँ से उठे, वेग से जहाँ चौला पड़ी थी वहाँ गये और उसको उठा लिया।

चौला उनकी पुत्री थी। देवाज्ञा से उसे उन्होंने कैसे प्राप्त किया था, यह आज जान पड़ा। वे लड़की को गर्भद्वार के सम्मुख ले गए और गद्गद कण्ठ से बोले, 'देवाधिदेव, इस लड़की को स्वीकार करो, जब तक चौला जियेगी तब तक यहीं शिवरात्रि को आपके सम्मुख नृत्य करेगी।'

उपहार की भाँति सर्वज्ञ ने चौला को सोमनाथ के सम्मुख रख दिया। चौला को जीवन का परम क्षण प्राप्त हो गया। जटाधारी पिनाकपाणि तो उसकी आँखों से ओझल हुए ही नहीं थे।

'तुम्हारी! तुम्हारी, इस भव में और भवोभव में—' वह बड़बड़ाई और मूर्च्छित हो गई।

थी, वैसे-ही-वैसे काले पानी के प्रवाह की भाँति वे उसके पैरों के ऊपर से बहते प्रतीत होते थे।

जैसे-जैसे उसकी अधीरता बढ़ती वैसे-वैसे उसके पैर ज़ोर से गिरने और केशों की धाराएँ उछल-उछलकर पैरों के ऊपर से ज़ोर से बहने लगतीं।

वह अठारह वर्ष की थी, लेकिन उसके शरीर की गठन पन्द्रह वर्ष की बालिका के समान थी और उसके मुख पर आठ वर्ष के बालक का माधुर्य और सरलता थी। परन्तु उसकी तेजस्वी आँखों का गाम्भीर्य उसकी उम्र की अपेक्षा अधिक गहरा था।

उसके मस्तक पर बल पड़ते और मिट जाते। अभी तक उसकी माँ क्यों नहीं आई। सर्वज्ञ ही उसकी माता को न जाने क्यों इतनी देर तक बिठाये रखते थे। यह बुड्ढा हमेशा ऐसा ही किया करता था।

उसने गर्दन ऊँची करके सूर्यनारायण की ओर देखा। उसकी गर्दन की सुरेखा कमान के भी हृदय को कँपा देने वाली थी। सूर्य ढलने लगा था और भगवान् सोमनाथ के मन्दिर के सोने के कलश पर पड़ने वाली उसकी प्रभा सौम्य होने लगी थी।

उसने बहुत देर तक अपनी गम्भीर अन्यमनस्क आँखों को मन्दिर के शिखर पर गड़ाये रखा। आकाश को स्पर्श करते हुए इस शिखर की कारीगरी में आनुवंशिक शिल्पियों ने भव्यता का सत्त्व डाल दिया था। चौला उसे कैलाश मानती थी। बचपन से वह सदैव उसके ऊपर जाती थी और उसके छज्जे पर खड़ी-खड़ी सागर की तरंगों की ताल के साथ नृत्य करती रहती थी।

कुछ ही समय में सूर्यास्त हो जाएगा—चौला की विचारधारा चली—और आरती शुरू हो जाएगी। फिर उसकी बारी—उसके जीवन की अपूर्व घड़ी आएगी। जब वह बच्ची थी तभी से उसके लिए उसकी माँ और बाप व्यग्र रहते थे। वह भी जब से समझने योग्य हुई थी, इसके लिए दिन-रात मेहनत कर रही थी। जिस क्षण के लिए वह जीती थी वह अब निकट आ गया था।

जगत् के नाथ सोमनाथ का रंजन करने के लिए उसकी माँ जैसी

पाटण जाओ, जल्दी जाओ।'

'क्यों?' भीमदेव ने विस्मय से पूछा।

'क्यों? गजनी का अमीर चढ़ा चला आ रहा है।'

'क्या कहा?' सर्वज्ञ और भीमदेव दोनों बोल उठे।

'क्या, क्या? उसके आदमी तो टिड्डी-दल की भाँति सपादलक्ष की भूमि पर छाने के लिए आ रहे हैं; कल सवेरे वहाँ आ पहुँचेंगे।'

'यहाँ?' सर्वज्ञ ने गम्भीर होकर पूछा।

'हाँ, उसने थानेश्वर को लूट लिया है और कन्नौज को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। क्या आपको पता है कि अब वह भगवान् सोमनाथ के धाम को नष्ट करने के लिए आ रहा है? एक क्षण भी खोने का समय नहीं है। जाओ, मेरे बापू और गुर्जर-भूमि को सँभालो।'

'वह गजनी से कब चला?'

'महीना-भर हुआ होगा। जैसे ही मुझे खबर मिली वैसे ही मैं चल दिया आपको खबर देने के लिए। आज दस दिन से मैं पैर सिकोड़कर बैठ नहीं सका हूँ।'

'भगवान् सोमनाथ के धाम को तोड़ने आ रहा है, अच्छा?' कुछ गर्व से सर्वज्ञ ने पूछा।

'हाँ, सपादलक्ष को रास्ता देने के लिए भी उसने कहला भेजा था।'

'कितने दिनों में यहाँ आएगा?'

'कैसे कहा जा सकता है? लाखों की सेना लेकर मरुस्थल पार करना है।'

'और यह यवन मेरे देवाधिदेव की पताका को झुकाएगा?' सर्वज्ञ हँसे और बोले, 'अभिमानी मनुष्य देव से भी नहीं डरता?'

'गजनी का महमूद तो यम से भी बढ़कर है।'

'आने दो। जिसने तृतीय नेत्र से कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया था, उसकी नयन-ज्योति अभी मन्द नहीं पड़ी है,' सर्वज्ञ ने कहा। 'भीमदेव, दामोदर ठीक कहता है, तू शीघ्र पाटण को बचाने के लिए जा।'

'महाराज, मैं तैयार हूँ। गजनवी ने अभी पट्टणियों के हाथ नहीं देखे। मेहता, यवन के साथ कितने आदमी हैं?'

देव ने यह वरदान देना स्वीकार किया था; इसलिए आज वे देंगे। और फिर यह नाचेगी तथा उसके भोले शंभु रीझेंगे।

उसने फिर से मन्दिर के शिखर की ओर देखा। उस शिखर पर भगवी ध्वजा हवा में फहरा रही थी। उसकी ओर वह न जाने कब तक देखती रही।

फहराती हुई ध्वजा की लहराती हुई गति उसे हमेशा मुग्ध करती रहती थी। जहाँ कोई नृत्य करता होता वहीं उसका हृदय पहुँच जाता। फहराती हुई ध्वजाओं, नाचती हुई तरंगों, लहराती हुई शाखाओं को देखकर उसके हृदय में स्नेह उमड़ने लगता। वह स्वयं इन सबकी कुंजी थी। तालमय सौन्दर्य इन सबका सामान्य लक्षण था। और इन सबके अतिरिक्त भोले शम्भु में ही चौला का जीवन लीन हो गया था। उसके मन में दो को ही स्थान था—एक भगवान् नटराज और दूसरी वह स्वयं—उसकी नाच-नाचती। शेष जगत् तो केवल लोगों का ही बना हुआ था।

'चौला! चौला! उठ, तू पड़ी क्यों है?' गंगा की आवाज आई। चौला के मुख पर उत्साह छा गया। उसने कुछ ऊँची होकर पीछे देखा और उसकी गर्दन तथा कन्धों की रेखाओं में भरा हुआ माधुर्य स्पष्ट हो उठा।

'उठ! उठ!' गंगा आई, 'तुझे खबर है कि आज कौन आया है?'

'लेकिन मेरे कपड़े लाई कि नहीं?'

'ले रही,' हँसते हुए गंगा ने कहा।

गंगा की उमर ढलने लगी थी। उसके बालों में सफेद लटें चाँदी के तार के समान चमकती थीं। लेकिन उसमें, उसकी चाल में, उसकी आवाज में अब भी आकर्षण था; उसके स्वर में अब भी सौन्दर्य झलकता था। उसने पच्चीस वर्ष तक सोमनाथ के देवालय में नृत्यकला की अधिकारी का पद किस प्रकार भोगा था, इस बात का पता शीघ्र चल जाता था।

उसकी आँखें उसकी पुत्री के समान नहीं चमकती थीं, परन्तु वैसे ही सुन्दर और गम्भीर थीं। लेकिन इस समय वह पुत्री को देखकर हँस

वसन्त के पक्षी की भाँति चौला उत्साह के साथ कूदती हुई चली गई।

शीघ्र ही कापालिक खम्भों में लुकता-छिपता पीछे चला।

भीम गज़नी के यवन और भगवान् के दर्शन दोनों को भूल गया। उसका हृदय भी उस वसन्त के पक्षी पर जा लगा था। वह भी कापालिक के पीछे हो लिया।

कापालिक क्यों पीछे गया था?

सकेत पाकर?—तो छिपता क्यों था?

क्या कोई कारण है?—है तो क्या?

उसने सुना था कि कापालिक भोली-भाली बालिकाओं को उड़ा लाते हैं और त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर में बलि देते हैं, या श्मशान में ले जाकर उनके रुधिर से भैरव को तृप्त करते हैं। लेकिन यह तो सोमनाथ की नर्तकी है। इसको ऐसा भय क्यों होगा?

कापालिक आगे जाती हुई चौला पर दृष्टि रखकर चला जा रहा था।

भीमदेव भी कापालिक पर दृष्टि रखता हुआ गर्भ-गृह के पीछे गया। चौला समुद्र की ओर के दरवाज़े की ओर मुड़ी। इस समय समुद्र पर किसलिए? भीमदेव दरवाज़े में छिपकर खड़ा हो गया। कापालिक किनारे की सीढ़ियों पर एक झाड़ की ओट में जाकर खड़ा हो गया। लेकिन चौला—

वह किनारे की अन्तिम सीढ़ी पर रही। वह तेज़ी से कपड़े उतार रही थी। उसे तनिक भी पता न था कि दो पुरुषों की अपलक अतृप्त आँखें भ्रमर की भाँति, पृथक्-पृथक् भाव से प्रेरित होकर उसके अंगों की शोभा को पी रही हैं।

चौला ने कपड़े उतारे। वह चन्द्रिका के अमृत बरसाते हुए प्रकाश में—सागर की लहरों की रुपहली चमक में—एकान्त प्रतीन होते हुए किनारे पर खड़ी, जल से निकली हुई लक्ष्मी के समान, वस्त्रहीन जग-मगाते सौन्दर्य में स्थिर, चन्द्रमा की किरणों की छोटी-सी मूर्ति लगती थी।

सौन्दर्य-दर्शन के प्रचण्ड प्रवाह में बहता हुआ भीमदेव पागल जैसा

गंगा के पैरों में अब भी पच्चीस वर्ष की युवती का बल और छटा थी। जिस समय वह नाचती उस समय यात्री-वृन्द दंग होकर देखता रह जाता। ऐसा कहा जाता था कि उसने भगवान् सोमनाथ का साक्षात्कार किया था, लेकिन उसके अधीन रहने वाली नर्तकियाँ इस बात का विश्वास नहीं करती थीं।

उसकी सत्ता और सर्वश्रेष्ठता का कारण कुछ और ही था, ऐसा ईर्ष्यालु लोगों का मत था। समस्त नर्तकियों में अकेली वही गंग सर्वज्ञ के पास जा सकती थी और चाहे जो करा सकती थी। निन्दक कहते थे कि गंगा के माँगने से पहले ही गंग माँगी हुई वस्तु को सामने रख देते थे। वृद्ध इन दोनों के बचपन की कुछ दन्तकथाएँ भी कहते थे, परन्तु वे सच थीं या झूठ, यह कोई नहीं कह सकता था। लेकिन हर सोमवार को रात्रि के समय जब गंगा मन्दिर में नृत्य करती थी तब सर्वज्ञ वहाँ आना नहीं भूलते थे। कितने ही द्वेषी तो चौला की मुखाकृति में ब्रह्मचारी सर्वज्ञ की मुखाकृति खोजने का सफल प्रयत्न करते थे और उन रेखाओं के समान न होने पर भी उनकी समानता के कारण खोज लेते थे।

जैसे गंगा की माँ ने उसे तैयार किया था वैसे ही गंगा ने चौला को अपने पद के लिए तैयार किया था। जितनी कला उसे आती थी उतनी उसने अपनी लड़की को सिखा दी थी। यौवन में जैसी वह सुन्दर थी उससे भी अधिक सुन्दर उसकी लड़की थी। और उसने ऐसी युक्ति सोची थी कि जिससे सर्वज्ञ के पट्टशिष्य शिवराशि का ध्यान चौला के ऊपर रहे। कालान्तर में जब उसकी शक्ति का प्रसार होने लगे तब नर्तकियों का राज्यदण्ड चौला सँभाल ले, यह उसके हृदय की सबसे बड़ी हौंस थी। केवल कभी-कभी उसे चौला के ऊपर अविश्वास होता था। लड़की दुनियादार न थी। वह नाचती, गाती और सोमनाथ का ध्यान किया करती। देव को समर्पित दासियाँ देव की ही रट लगाती रहें, यह बात गंगा ने भी दूसरी नर्तकियों को सिखाई थी। लेकिन उसे आचरण में लाने पर अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती थीं, इस बात का गंग को अच्छी तरह पता था। चौला को भी पीछे चलकर इस बात का पता

नर्तकी नहीं हूँ, शिव-निर्माल्य हूँ ।'

'इसी लिए तो शिव पर चढे हुए फूल को मैंने भी मस्तक पर चढ़ाया है। और ले, मैं मुँह फेरकर खड़ा हो जाता हूँ, तू कपड़े पहन ले।'

भीमदेव हँसता हुआ मुँह फेरकर खड़ा हो गया। घबराहट में चारों ओर देखती हुई चौला ने जैसे-तैसे कपड़े पहने। कापालिक के भय और वस्त्रहीनता की लज्जा के कारण उसका हृदय अभी तक ठिकाने नहीं आया था।

'अब मैं मुड़ूँ ?'

'हाँ, मुड़ो,' चौला ने उत्तर दिया।

'अच्छा हुआ कि मैं यहाँ था, नहीं तो···'

'आपको कालमुखे का डर नहीं लगा ? वह मर गया, न जाने इससे क्या होगा ? ऐसे भयंकर अघोरी को छूने का साहस आपको कैसे हुआ, यह तो महादेवजी ही जानें। क्या भगवान् अपनी नर्तकी को कभी भूल सकते हैं ?'

भीमदेव फिर हँसा और चौला पास आई।

'आप बड़े साहसी हैं।'

'तू कहती है, इसलिए मुझे विश्वास होता है।'

'मैं अब जाती हूँ। आप यहाँ कब तक है [illegible]'

'मैं ? मुझे तो भगवान् ने इतने ही कार्य के [illegible] भेजा था। मैं तो वापस जाता हूँ।'

'इस समय कहाँ जाते हैं ?'

'पाटण।'

'लेकिन आज सवेरे ही तो [illegible] कहाँ [illegible] जाता है ?' चौला हँसी—[illegible] रमणीयता सहस्रधा होती [illegible]

'किसीसे न कहो तो [illegible]

'नहीं कहूँगी। [illegible]

दूसरा प्रकरण

नृत्याञ्जलि

बाहर दीपस्तम्भ पर हजारों दीपक जल रहे थे। परकोटे पर चारों ओर दीपावली जगमगा रही थी। भगवान् सोमनाथ की आरती का समय हो चुका था, इसलिए सभामण्डप में लोगों की भीड़ जमा हो गई थी।

सभामण्डप के स्तम्भ-समूह के सुनहरे दीपकों की बत्तियाँ जलाई गईं। छत और खम्भों पर जो त्रिपुरारि के पराक्रम का अंकन था वह ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे सजीव हो गया हो। छत में चार-चार खम्भों के बीच सोने की जंजीरों में लटकते हुए घण्टों का नाद अधिकाधिक सुनाई देने लगा। जैसे-जैसे लोगों की भीड़ बढ़ने लगी वैसे-वैसे 'जय सोमनाथ' की घोषणा भी बढ़ने लगी।

गर्भ-गृह की छत में लटकते हुए रत्नजटित दीपक जल रहे थे और बीच में छाती जितना ऊँचा सोमनाथ का लिंग, पुष्प और बेलपत्रों से ढका हुआ, कैलाश पर्वत का आभास दे रहा था। उसके ऊपर बड़ी सोने की जलधारी से पानी टपक रहा था। चारों वेदों में पारंगत श्रोत्रिय पुरुष-सूक्त के पाठ द्वारा महाशिव का पूजन कर रहे थे।

सहसा नौबतखाने में नगाड़े और शहनाइयाँ बज उठीं और लोगों में धक्का-मुक्की शुरू हो गई। पन्द्रह अलमस्त बाबा आये और जगह करने लगे। लोग झटपट हट गए और गर्भद्वार के सामने जगह हो गई।

एक बाबा ने जोर से शंख बजाया और उसकी प्रचण्ड ध्वनि चारों ओर फैल गई। लोग चुप हो गए और टकटकी लगाकर सभामण्डप की सीढ़ियों की ओर देखने लगे।

आने लगा। शंकर की कृपा की याचना के बिना इस दैवी प्रकोप से छुटकारा पाने का कोई दूसरा उपाय किसी को नहीं सूझा।

शिवराशि ने बड़ी कठिनाई से घड़ी-दो घड़ी ही आँखें मींची थीं कि इस कोलाहल ने उसे जगा दिया। उसने जाँच-पड़ताल की और बात सुनते ही वह भी शिवकवच का जप करने लगा। नित्य-कर्म छोड़कर वह मन्दिर में आया और वहाँ त्रस्त तथा कृपा की याचना करती भीड़ को देखकर स्वयं भी त्रसित हो गया। वह देहली पर आया, ज्यों-त्यों भीड़ में से रास्ता बनाया और सीढ़ियों पर पहुँच गया।

उदय होते हुए सूर्य के प्रकाश में कापालिक का होंठ-रहित मुख फटी हुई आँखों से शिखर की ध्वजा की ओर देख रहा था।

दामोदर की बात से परिचित, दैवी प्रकोप के भय से त्रस्त शिवराशि ने माथे पर दोनों हाथ रखे और सामान्य जनों की भाँति 'ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकल तत्वात्मकाय···' बोलने लगा। वह पीछे लौटने लगा, लेकिन दो कदम चलते ही उसकी दृष्टि घबराये हुए स्त्री-पुरुषों पर पड़ी और वह रुक गया। बीस वर्ष का शास्त्रों का अभ्यास, गुरु-सेवा और तप उसकी सहायतार्थ दौड़े। गग सर्वज्ञ के कैलासवासी होने पर इस परमधाम और पाशुपतमत के आचार्य की पदवी उसे मिलने वाली हो, और वह आज स्वयं डरकर भाग जाए! वह हिम्मत करके लौटा और पास खड़े हुए एक शिष्य को उसने बुलाया।—

'सिद्धेश्वर!'

'जी!'

'गुरुदेव को जाकर खबर कर दे कि कालमुखों में श्रेष्ठ और त्रिकालज्ञ श्रीमद्कंक योगेश्वर कैलासवासी हो गए हैं। उनके पश्चात् कालमुखों के झुण्ड को खबर दे आना।'

'जैसे आज्ञा,' कहकर सिद्धेश्वर तेजी से चला गया।

खड़े हुए लोगों की भीड़ ने जब कंक योगेश्वर का नाम सुना तो उसमें कँपकँपी की एक बड़ी लहर दौड़ गई। कंक योगेश्वर का नाम कालमुख सम्प्रदाय में परमपूज्य समझा जाता था। पाशुपतमत के अनुयायियों की मान्यता थी कि उनके योगबल के कारण स्वयं भैरव उनके

...र का ध्यान आता था, जो थका हुआ होने पर भी झपट्टा मारने
...ए तैयार रहता है।

उसके साथ आने वाला तीसरा पुरुष विधाता ने दूसरे से बिलकुल ...न बनाया था। वह शरीर से छोटा होने पर भी सुन्दर था। उसका ...वर्ण, सुन्दर मुख, तेजस्वी और चंचल आँखें, छोटी और सुडौल अंगु-...याँ इस बात की सूचक थीं कि वह किसी सौभाग्यशाली सामन्त का ...ाडला है। उसे देखकर पहले कोई उसे बालक समझता परन्तु उसके ...बाये हुए होंठ की अडिग रेखाएँ उसे ऐसा प्रतापी बना देतीं कि उसे ...बालक समझने वाला शीघ्र ही अपनी धृष्टता के लिए थर-थर काँपने ...लगता। उसने भी कमर पर तलवार बाँध रखी थी, लेकिन निरर्थक शस्त्रों का भार वहन करने का उसे चाव नहीं था।

सर्वज्ञ 'नमः शिवाय' कहने वालों से 'शिवाय नमः' कहते हुए और हाथ लम्बा करके आशीर्वाद देते हुए गर्भद्वार के पास आये। एक व्यक्ति के तैयार किये हुए बेलपत्र उन्होंने लिये और गर्भगृह में दण्डवत् प्रणाम करके उसके द्वारा देव का पूजन किया। फिर राजा भी जिसको पूजने में गर्व का अनुभव करते थे ऐसे गंग सर्वज्ञ ने नम्रतापूर्वक दयालु बनकर, हाथ जोड़कर शीश नवाते हुए देव का ध्यान किया। उसके बाद एक शिव-भक्त ने आरती तैयार की और सर्वज्ञ ने उसको लेकर आरती की।

आज चौदह वर्ष हो गए, सन्ध्या समय, बिना एक भी दिन भूले हुए सर्वज्ञ जब अपने हाथों देव की आरती उतारते तब यात्री गूंगे मुँह 'नमः शिवाय' बोलते। हजारों घण्टों का नाद गूंज उठता और नग... देव-दुन्दुभियों की भाँति बज उठते। उस समय सर्वज्ञ हृदय की भक्ति इस प्रार्थना के रूप में व्यक्त करते।

गंग सर्वज्ञ ने आरती पूरी की और 'जय सोमनाथ' का उच्च... किया। शीघ्र ही उनके आसपास खड़े हुए लोगों ने उस घोषणा को ... लिया। घोषणा का प्रवाह सभामण्डप में होकर फैला, यात्रियों में ... और बाहर प्रलय-समुद्र के गर्जन की भाँति चारों ओर व्याप्त हो ... के लिए समस्त प्रभास सोमनाथमय हो गया।

चौथा प्रकरण

सामन्त चौहान

: १ :

जिस समय चौला की मूर्च्छा टूटी उस समय उसका सिर चकरा रहा था, भीमदेव, कापालिक और गजनी का म्लेच्छ, इन तीनों की मूर्तियाँ उसके मस्तिष्क में चक्कर लगाती हुई जान पड़ी और उसके हृदय में दहशत बैठ गई। वह पास ही बैठी गंगा से लिपट गई।

'माँ, क्या होगा ?'

'होना क्या है ?'

'तू क्या जाने ? योगेश्वर मरा है तो अवश्य कोई अनिष्ट होने वाला है।'

'अरे, बहुत हुआ,' उपेक्षापूर्वक गंगा ने कहा, 'मुझे तो इतने वर्ष हो गए। मैंने तो कभी इतना बड़ा अनिष्ट नहीं देखा।'

'तुझे खबर भी है ?' चौला ने माँ के कान में कहा, 'गजनी का म्लेच्छ चढ़ा आ रहा है।'

'गजनी का म्लेच्छ ! भला यह कौन मर्दुआ है ?'

'यह मैं क्या जानूँ ?'

'तो तुझे मालूम कहाँ से हुआ ?'

'कहीं से हुआ हो। तुझे इससे मतलब ?'

'ओहो, कल तो तुझे मालूम नहीं था, आज कहाँ से मालूम हो गया ?'

'मुझे मालूम हो गया है।'

'कहाँ से हुआ, बात तो सही ?' गंगा ने आग्रह से चौला से पूछा।

मस्कार करने लगे। सर्वज्ञ की आँखें भावमयी होकर सफ़ेद कपड़ों में की स्त्री पर जा ठहरीं।

'आज तो नई नर्तकी नृत्य करने वाली होगी ?' भीमदेव ने शिव-राशि से पूछा और उसने गरदन हिलाकर 'हाँ' कही।

'कौन है ? क्या नाम है ?' विमल मन्त्री को भी उत्सुकता हुई। शिवराशि ने चुप रहकर जवाब देने से इन्कार किया।

और गंगा ने देव का यशगान प्रारम्भ किया।

उसके कण्ठ में से माधुर्य की सरिता बहती थी। उस सरिता में भक्ति तैरती, भाव तैरता और स्तवन भी तैरता। वह गाती तो शंकर की स्तुति थी, लेकिन उसका उद्देश्य था सर्वज्ञ को रिझाना। उसकी आँखें जितनी बार देव पर टिकतीं उससे अधिक बार सर्वज्ञ की खोज करतीं। वह अकेली उसके लिए ही गाती—सर्वज्ञ अधमुँदी आँखों से उसे ही सुनते। वे समस्त शास्त्रों के साथ संगीतशास्त्र में भी पारङ्गत थे और गंगा के सिवाय किसी भी दूसरे व्यक्ति का संगीत उनकी कसौटी पर खरा नहीं उतरा था।

संगीत रुका, गंगा ने दृष्टि द्वारा सत्कार की याचना की और सर्वज्ञ ने आधी आँख खोलकर उसका सत्कार किया। दोनों की दृष्टि श्वेत वस्त्र में लिपटी स्त्री की ओर एक साथ गई।

'अब नृत्य शुरू करो,' सर्वज्ञ ने धीरे से कहा।

और उनकी दृष्टि के सामने एक अविस्मरणीय प्रभात का उदय हुआ। एक पल-भर में उन्नीस वर्ष संकलित हो गए···अर्बुदाचल सामने आकर खड़ा हो गया, जहाँ छः महीने तक पवित्रता की खोज में उन्होंने पंचाग्नि का सेवन किया था। वहाँ से लौटकर देव की सेवा तथा भक्तों और शिष्यों के सम्पर्क में उनको जिस अद्भुत उत्साह का अनुभव हुआ था, उनका स्मरण आया।

आधी रात हो गई, पर उल्लास का ज्वार नहीं उतरा। वे सो न सके, मानो कोई दूर से बुला रहा हो। हाथ में दण्ड लेकर वे बाहर आये और समुद्र-तट पर अस्तंगत तारों के प्रकाश में घूमने लगे।

वहाँ जैसे समुद्र से कोई लक्ष्मी आती हो, ऐसी एक सुन्दरी मिली।

शिवराशि उठकर सज्जन चौहान और उसके पुत्र को बुलाने आया।

: ३ :

सज्जन चौहान पैंतीस-चालीस वर्ष का प्रचण्ड, मोटे बालों वाला, विकराल राजपूत था। उसका बीस वर्ष का पुत्र बाप की लघु प्रतिकृति था। दोनों एक-सी ढाल-तलवार बाँधे थे। दोनों ने आकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

'नमः शिवाय !'

'शिवाय नमः,' सर्वज्ञ ने आशीर्वाद दिया। 'क्यों, क्या कल शाम को आये?'

'हाँ गुरुदेव,' सज्जन ने कहा, 'आने में कुछ देर हो गई। आप आरती कर रहे थे। उसके बाद नृत्य हुआ था।' उसने चौला की ओर देखा।

'हाँ, चौला ने सुन्दर नृत्य किया; किया कि नहीं ?' सर्वज्ञ ने कहा और उसकी नजर सज्जन के पुत्र सामन्त पर पड़ी। लड़का जब से आया था, चौला पर आँखें गड़ाए बैठा था। सर्वज्ञ ज़रा मुस्कराए। चौला अत्यन्त आकर्षक तो थी ही।

'सज्जन, घोघाराणा कैसे हैं ?'

'मजे में हैं। आपके लिए उन्होंने बहुत-बहुत प्रणाम कह दिया है और यह भेंट भेजी है,' कहकर सज्जन ने कमरबन्द में से एक हीरा निकालकर सर्वज्ञ के चरणों पर रख दिया।

'चौहान कुल का मुकुट सोमनाथ की भक्ति में अविचल है, यह देखकर मैं प्रसन्न हूँ,' सर्वज्ञ ने कहा।

'शंकर की कृपा है।'

'सज्जन, घोघाराणा पर शंकर प्रसन्न हैं। उनकी सेवा देर बहुत प्रिय है। तुम कब चले ?'

'हमें तो घोघागढ़ से चले दो महीने हो गए। हम श्रीमाल और श्रीमाल से चितौड़ होते हुए आ रहे हैं।'

'और कितने दिन में वापस जाओगे ?'

'पच्चीस दिन लगेंगे।'

धुन्ध-सी छा गई।

लेकिन उसके अन्तस्थल में श्रद्धा थी। उसके सोमनाथ ने उसे कभी छोड़ा नहीं था और इस समय तो वे सामने ही थे। उसने मूर्ति की ओर देखा—यह थे उसके साक्षात् देव, उसके प्राण, उसके नाथ! उसने प्रणाम किया।

गंगा की आवाज सुनाई दी, 'सर्वज्ञ के पैर छूना।'

'अवश्य!' उसके पगों में शक्ति आई। वह गई और सर्वज्ञ के पैर छुए। मठाधिपति हँसे। वह आशीर्वाद था···और अस्तंगत तारे, तरंगित सागर और प्रभात की लहरें उसके स्मृतिपट पर क्षण-भर को फिर तैर गए।

चौला उठी। सर्वज्ञ के पास बैठे शिवराशि को उसने देखा। पास बैठे दो अपरिचित युवकों की रस-भरी आँखों को उसने अपने को टुकुर-टुकुर देखने पाया। वह पीछे खिसकी, उछली और सभामण्डप के बीच, रत्नजटित दीपकावलियों के चन्द्रिका मनोहर प्रकाश में, ऊपर के वस्त्र को हटाकर, उसके ढेर के बीच वह श्वेत कमल से उत्पन्न लक्ष्मी की भाँति खड़ी हो गई।

प्रेक्षक-समूह मुग्ध और मूक था। कोमल कदली के समान नूपुरों से शोभित पैरों पर, सुनहरी जरी की गाँठ से बाँधे हुए लहँगे के ऊपर चमकती मेखला में से, किसी सुन्दर मन्दिर के निकले हुए अद्भुत शिखर की भाँति उसकी नाजुक कमर, गौरवर्ण पेट, हीरों से जगमगाता हुआ अदृश्य स्तन-मण्डल, सुन्दर भूरे रंग की रेखाओं से शोभित गरदन और बालक के समान अत्यन्त मनोहर मुख निकले। उसके मुख पर पार्थिव सुन्दरी की अपूर्व रेखाएँ नहीं थीं, देवांगनाओं की भव्यता नहीं थी, मात्र छोटी बालिका की सुकुमारता न थी; वह तो किसी सुन्दर स्वप्न में क्षण-भर देखा हुआ, नवमंजरियों द्वारा निर्मित, मधुर निर्दोषता के सार के समान, बाल्यवसंत का मुख था।

लेकिन चौला को अपने रूप का तनिक भी ज्ञान नहीं था। आस-पास की पृथ्वी है भी कि नहीं, इसका भी उसे ठीक पता न था।

उसकी आँखें तो टिकी हुई थीं दूर, अपने सोमनाथ के लिंग पर;

'विजयी होकर शीघ्र लौटना,' उसने धीरे से कहा।

'अवश्य,' गर्व से सामन्त ने कहा, और चौला की मोहक आंखों ने पलकों की एकाग्रता से उसे स्मृति पर अंकित कर लिया।

जिस समय वह चला उस समय उसकी रग-रग मे विजेता का प्रचंड उत्साह व्याप्त था।

: ४ :

सज्जनसिंह, सामन्त और दूसरे आठ योद्धा तेज ऊंटनियों पर रवाना हुए। उन्होंने अपने साथ सर्वश्रेष्ठ ऊंटनी वाले पथ-प्रदर्शक भी ले लिये।

सज्जन को चक्करदार मार्ग की अपेक्षा सीधे रेगिस्तान में होकर जाना था। सौराष्ट्र के मार्गों से वह अधिक परिचित नहीं था। लेकिन रेगिस्तान मे उसे किसीकी परवाह न थी। कारण, जहां रेत का विस्तार हो, वहां तो वह राजा था। कच्छ से घोघागढ तक के सभी मार्गों को पार करने का उसके मन मे चाव था और समस्त मरुभूमि मे उसके समान ऊंटनी पर चढने वाला कोई नहीं था। इस प्राणी पर उसने दिन और रात व्यतीत किये थे। जिस ऊंटनी पर वह चढता उसीके पंख लग जाते थे; उसके साथ बातें कर सकता था, वह उसके दु.ख को समझ सकता था; वह उससे चाहे जो करा सकता था। घोघागढ की तेज-से-तेज ऊंटनियां उसकी एड खाकर पागल-सी हो जाती थी और वह भी ऊंटनियों के पीछे पागल था। उसके लिए ये मूक पशु नहीं थी, वरन् उसकी वंशी पर नाचती गोपियां थी।

वह तेजी से आगे बढ़ा। उसने सामन्त और एक पथ-प्रदर्शक को साथ रखा था। साथ के सैनिक दूसरी ऊंटनियो पर आ रहे थे।

जब सौराष्ट्र के जगलों को पार करता हुआ सज्जन चौहान का छोटा-सा काफिला रेगिस्तान के सामने आकर खडा हुआ तब दोपहर होने आया था। जिस प्रकार सागर के नीर पर खड़े हुए व्यक्ति की दृष्टि के सामने, जहां तक दृष्टि पहुंचती है वहां तक, पानी की तरगें ही उछलती दिखाई देती हैं, उसी प्रकार सज्जन की दृष्टि के सामने रेत की तरगें फैली हुई थीं। सूर्य की किरणें रेत मे ऐसी चमकती थी कि सज्जन आंखों को खुला न रख सका। उसे इस बात का पता था कि इस

शर शम्भु को लगा और वह लाजसहित, नयनों में प्राणवानता लिये, कुछ शरमाती, कुछ गर्व में शम्भु के पास आई। चौला ने लिंग की ओर देखा और उसे लगा कि शम्भु मान गए।

पीछे खड़ी हुई छः नर्तकियों ने सरदा के मीठे स्वरों पर महादेवजी की वाणी का उच्चारण किया—

किं मुखं किं शशाङ्कश्च किं नेत्रो चोत्पले च किं।
भ्रुकुट्यौ धनुषी चैते कंदर्पस्य महात्मनः।
अधरः किं च बिंबं किं, किं नासा शुकचंचुका।
किं स्वरः कोकिलालापः किं मध्ये चाथ वेदिका।[1]

पार्वती विरह-विह्वला होने पर भी खिचती और शरमाती पीछे हटी, नितम्ब बारी-बारी से विजयोल्लास प्रदर्शित करने लगे। मन्द हास्य और ससंभ्रम मुख से, उत्तरीय से स्तन-मण्डल ढकती-ढकती, धीमे, संकुचित पगों से गर्व में ठुमकती, पीछे पग रखती, वह पीछे हटी।

वह फिर चौंकी, घबराई और रुकी। नर्तकियों ने गाया—

किं जातं चरितं चित्रं किमहं मोहमागतः।
कामेन विकृताश्चाद्य भूत्वापि प्रभुरीश्वरः।
ईश्वरोहं यदीच्छेयं परांग स्पर्शनं खलु।
तर्हि कोऽन्योक्षमः क्षुद्र किं किं नैव करिष्यति।[2]

१—यह मुख है या चन्द्रमा? ये नेत्र हैं या कमल? यह महात्मा कामदेव का धनुष है या भृकुटि? ये अधर हैं या बिम्ब? यह नासिका है या तोते की चोंच? यह स्वर है या कोकिला की काकली? यह मध्य भाग है या वेदिका?

—शिवपुराण

२—ईश्वरीय और प्रभु होने पर भी कामान्ध होने के कारण आज मेरे व्यवहार में क्यों विचित्रता आ गई है और क्यों मैं मोह के वश हो गया हूँ? ईश्वरीय होने पर भी मैं जब परस्त्री के अंगों का स्पर्श करने की इच्छा रखता हूँ तब क्षुद्र व्यक्ति क्या-क्या निन्दनीय कार्य नहीं करते होंगे।

'हमारे ऊपर तो इस रणयम्भी माता की बाधा थी। उसे उतारने आये थे।'

सज्जन हँसा। 'और मुझे यह बाधा है कि मैं इसी समय यहाँ से चल दूँ।'

'बापू, यह रणयम्भी माँ की आन है। इस रास्ते से जाने वाला कोई वापस नहीं लौटा। बुजुर्गों का कहना है कि तीन सौ योजन तक पेड़ या पानी नहीं।'

'चिन्ता मत करो। मुझे अपनी एक ऊँटनी दे दो, बस।'

'नहीं बाबा, ये तो हमारे घर की ऊँटनियाँ हैं। ये नहीं दी जा सकतीं।'

'तब मैं तुम्हारे बिना दिये ही लूँगा,' सज्जन ने तलवार पर हाथ रखकर कहा, 'सोनिया खा ले। मैं नहाकर, पदमड़ी बहू को नहलाकर, आता हूँ। उसके बाद तू अपनी ऊँटनी को नहला लाना।'

'सवेरे नहलाऊँगा बापा!'

'अरे पागल हुआ है! अभी चाँद निकला कि हम चले।'

'लेकिन बापा, रात में, और वह भी इस रणयम्भी माता को दुखी करके!' घबराकर सोनिया बोला।

'घबराता क्यों है? सोमनाथ महादेव की आज्ञा है। जा खा ले,' कहकर पदमड़ी को लेकर सज्जन वहाँ से तालाब पर गया।

सोनिया दूसरे ऊँट वाले की ओर मुड़ा, 'यहाँ से आगे चलकर क्या आएगा?'

'कुछ नहीं, तेरा बापू तो पागल है,' एक वृद्ध बोला, 'इस रास्ते से जाता हुआ हमने कोई नहीं सुना।'

'अरे मनुष्य तो क्या, किसी पक्षी को भी उड़ता हुआ नहीं सुना।'

'चलो रोटी तो खा लें,' कहकर सोनिया अपने ढेबरों को लाकर सबको बाँटने लगा। रणयम्भी माँ को दुखी करके जाने वाले इस मूर्ख के भविष्य की कल्पना उनको परेशान कर रही थी, इसलिए ऊँट वाले कुछ चुप हो गए। सोनिया ने जैसे-तैसे बात की, उन्होंने जैसे-तैसे जवाब दिया और बार-बार आगे न जाने की चेतावनी देने लगे।

वेणी शिरसो ते दिव्या सर्पिणीव विभासिता।
जटाजूटं शिवस्येव प्रसिद्धं परिचक्षते।
चन्दनं च त्वदीयांगे चिताभस्म शिवस्य च ॥
क्व दुकूलं त्वदीयं वै शांकरं क्व गजाननम्।
क्व भूषणानि दिव्यानि क्व सर्पाः शंकरस्य च ॥[1]

पार्वती ने तिरस्कार किया। झांझ क्रोध में झमकने लगीं। उसके हाथ की मरोड़ में उग्रता आई। मृदंग भी क्रोध में गर्जन करने लगा। उग्र पार्वती की आँख से अंगारे झरने लगे। पगों से सुन्दर छलाँग भरती हुई, झांझ के साथ ताल देती हुई वह चारों ओर से ब्राह्मण को झिड़कती रही। आँखों द्वारा, भाव द्वारा, मुद्राओं द्वारा उसने तिरस्कार किया। मुँह चिढ़ाकर वह तिरछी लौटी और—चौला सहसा बदल गई। प्रच्छन्न-वेशी शिव ब्राह्मण का वेश छोड़कर अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए; मृदंग में बादल की गड़गड़ाहट सुनाई दी; वाद्य रुके।

चौला की आँखों को भी लिंग में से शिवजी प्रकट होते दिखाई दिए। नृत्य करते हुए उसकी शिराओं में उल्लास बढ़ता जाता था। उसके हृदय में अकथनीय उत्साह की बाढ़ आ रही थी। गति और नाद की उछलती हुई सरिता में तैरती हुई कल्पना के आगे साक्षात् शम्भु, उसके जीवन-सर्वस्व, आ खड़े हुए।

वह सब-कुछ भूल गई; उसे इतना ही ध्यान रहा कि उसने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। उसने नृत्य और अभिनय में शास्त्रों को भुला दिया; उसकी नाक फटने लगी, प्रेमोन्माद से उसकी आँखें व्याकुल

इसका कारण सुन। कहाँ तो कमलदल के समान नेत्र वाली तू और कहाँ तीन नेत्र वाले शिव!

१—तेरे दिव्य केशों की सुन्दरता वर्णन करने की भी किसी में शक्ति नहीं है, जबकि शिव के मस्तक के ऊपर जटा-जूट तो प्रसिद्ध है; तेरे अंगों में चन्दन और शिव के अंग में भस्म; कहाँ तेरा रेशमी वस्त्र और कहाँ शिव का हस्तिचर्ममय अशुभ वस्त्र! कहाँ तेरे दिव्य आभूषण और कहाँ शंकर के सर्प!

पाँचवाँ प्रकरण

गज़नी का अमीर

: १ :

उस रात को कृष्णपक्ष की तीज-चौथ का चन्द्रमा रेगिस्तान के विशाल विस्तार पर आह्लादक प्रकाश डाल रहा था; रेत भी समुद्र की लहरों की भाँति चमक रहा था; ठण्डी हवा चल रही थी और पदमड़ी बहू के घुँघरू चमक रहे थे, और सज्जन चौहान का हृदय अपने गीतों की लय के साथ नाच रहा था। उसको चौहानों की अपराजयता में तनिक भी अविश्वास न था। जब घोघाबापा के पुत्रों ने अनेक युद्धों में भाग लिया था तब यह तो एक म्लेच्छ था। उसकी क्या चिन्ता थी!

सज्जन ऊँटनी को उत्तर दिशा में—जहाँ ध्रुव के आसपास प्रकाश फैलता दिखाई दे रहा था उसी दिशा में—हाँके चला जा रहा था। रुपहली रात की घड़ियाँ गिनकने लगीं। इसलिए पदमड़ी की चाल धीमी पड़ गई और उसने भी चलती हुई ऊँटनी पर थोड़ी नींद ले ली। आधी रात बीती, ध्रुव के आसपास फैलने वाला प्रकाश भी समाप्त हुआ और प्रभात की वायु की लहरें उठने लगीं। सज्जन ने हुकार की, नकेल हाथ में ली और समझदार पदमड़ी बहू तेजी से रास्ता तय करने लगी।

जैसा कि ऊँट वालों ने बताया था, यह रास्ता बिलकुल निराशाजनक नहीं था। कहीं-कहीं टीले या पेड़ मिलते और उनके नीचे सज्जन विश्राम करता, स्वयं खाता-पीता और पदमड़ी को खिलाकर पानी पिलाता। यह रास्ता ठीक जँचा। रेगिस्तान में होकर सीधे आने पर जो लुटेरों के मिलने की बातें सुनी थीं वे गलत नहीं थीं, इसका भी उसको विश्वास हो गया।

रा प्रकरण

दैवी प्रकोप

: १ :

मन्दिर में एकत्रित भीड़ में एकदम खलबली मच गई। लोगों ने हाहाकार मचा दिया। ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई व्यक्ति तेज़ी से भीड़ में चला आ रहा है। सर्वज्ञ आश्चर्यचकित हो गए। उनको इस बात क पता न चला कि उस समय कौन शान्ति को भंग कर रहा था। उन्हों भ्रूभंग करके देखा। उनकी उपस्थिति में धृष्टता बहुत कम होती थी। भीड़ दो भागों में बँट गई और बीच के रास्ते से एक पागल जैसा व्यक्ति घुस आया। 'भीमदेव महाराज की जय,' उसने थके हुए, भर्राये हुए कण्ठ से जयध्वनि की। भीमदेव इसे सुन चौंककर खड़ा हो गया और आगे आया।

'कौन है?' उसने सर्वज्ञ की ओर देखकर पूछा।

'कौन है? जो हो, उसे यहाँ आने दो,' सर्वज्ञ ने आज्ञा दी। नवा-गन्तुक लड़खड़ाता-लड़खड़ाता आया। उसकी आँखें पथराई हुई और उसके कपड़े चीकट थे। वह आकर सर्वज्ञ के पैरों पर गिर पड़ा और जैसे-तैसे 'नमः शिवाय' बोल पाया।

'शिवाय नमः, कौन है बेटा?'

'कौन? मूला राठोर?' भीमदेव उसके सामने जाकर पूछने लग

'बापू! बापू!' मूला ने जैसे-तैसे बैठकर हाथ जोड़कर कहा, ' चलो, मेहता जी मरने ही वाले हैं। चलो, चलो।'

'मेहता जी? दामोदर, क्या हुआ? कहाँ?' विमल मन्त्री ने अ मूला का कन्धा झकझोरा, 'पागल हुआ है क्या? और तू कहाँ से

जो सूर्य की चमक में अग्निकणों के स्तम्भ जैसे लगते थे, उड़ने लगे और सज्जन और पदमड़ी की आँखें भी खुली न रह सकीं। दोपहर होने तक चारो ओर उड़ता, जलाता, आँखों में लगता रेत ऊँचा उठने लगा और आगे बढ़ना असम्भव हो गया। सज्जन ने पदमड़ी को बिठाया, उसके गले से लिपटकर उसकी आँखें अपने शरीर से ढकीं और उसकी गरदन में अपनी आँखें दबाकर जैसे-तैसे भयंकर दोपहरी बिताई। स्नेहमयी पदमड़ी छोटी बकरी की भाँति सज्जन की बाँहों में सिर रखे पड़ी रही।

दोपहरी ढलते ही गरम हवा रुकी और सज्जन ने ऊँटनी पर सवारी की। उस समय उसके साहसी हृदय में भय समाया था। यदि ऐसे तीन दिन और बीते तो क्या होगा? उसका अनुमान भी ठीक नहीं जान पड़ता था। यदि यह रास्ता ठीक हो तो दो-तीन दिन में विश्राम-स्थल आने चाहिएँ, लेकिन वे नहीं आये। तो क्या वह रास्ता भूल गया? रेगिस्तान में पड़े हुए मनुष्य जैसे प्यास और गरमी से मर जाते हैं वैसे ही तो कहीं उसकी दशा न होगी?

रात को पदमड़ी लड़खड़ाने लगी और सज्जन भी थक गया, इसलिए वह पदमड़ी की बगल में सो गया। सहसा पदमड़ी के तड़फड़ाने से वह चौंककर जाग गया। पौ फटने वाली थी और ऊँटनी आँखें फाड़े, नथने फुलाए, कूद रही थी।

'क्या है? क्या है? पदमड़ी बह, क्या तू पागल हुई है?'

पदमड़ी की भाषा उसने समझ ली। वह शीघ्र जाना चाहती थी। सज्जन तुरन्त उस पर चढ़ा और उसने उत्तर की ओर चलने का संकेत किया। लेकिन ऊँटनी टस-से-मस नहीं हुई। न उसने सज्जन के लाड को माना और न उसके गुस्से की परवाह की। उसने उत्तर की ओर जाने से साफ़ इनकार कर दिया। जब वह उसे समझाते-समझाते थक गया तो एक सोटी जमाई। इस पर पदमड़ी ने वेदना-भरी आवाज की और उसकी आज्ञा की चिन्ता किये बिना, मुँह फेरकर, पूर्व दिशा की ओर भागने लगी। अन्त में उसकी समझ में आया—पदमड़ी की तीक्ष्ण वृत्ति ने उत्तर दिशा के किसी भय के कारण

पैरों के तलवों पर काँसे की कटोरी से अण्डी का तेल मल रहा था। भीमदेव अधीरता से उनकी ओर देख रहे थे।

कुछ ही दूर पर गंग सर्वज्ञ पालथी मारकर सीधे बैठे थे। पास ही शिवराशि था।

एक कोने में दूसरा शिष्य सिल पर दवाई घिस रहा था। मूला दूसरे कोने में छिपकर नींद के झोंके ले रहा था।

'गुरुदेव, दामोदर मर तो नहीं जाएगा?' भीमदेव ने दसवीं वार यह अधीरता-भरा प्रश्न किया।

'नहीं मरेगा, जा, यह मेरा वचन है,' सर्वज्ञ ने कहा। उन्होंने उठकर शिष्य द्वारा घिसी हुई दवाई ली और पास आकर दामोदर मेहता के होंठ खोलकर उनमें डाल दी।

थोड़ी देर तक सब टकटकी लगाकर मेहता की ओर देखते रहे। उसके निश्चेष्ट मुख में से एक निःश्वास निकला, आँखें फड़कीं, होंठों में से कुछ दवाई बाहर फैली और मेहता ने आँखें खोल दीं।

'दामोदर! दामोदर!' भीमदेव ने प्रेम से उसे पुकारा।

दामोदर की आँखें सजग हुई। उसने भीमदेव को पहचाना। 'अन्नदाता! बापू! तुम हो? सच?' कहकर वह एकदम बैठ गया और भीमदेव से लिपट गया।

'मेरे मेहता...' पाटण के स्वामी ने मन्त्री के प्रति स्नेह प्रदर्शित किया।

'दामोदर के लिए एक तकिया लाओ,' सर्वज्ञ ने कहा।

सर्वज्ञ को देखकर वह पैरों पर गिर पड़ा। 'नमः शिवाय' कहकर सर्वज्ञ ने उसे प्रत्युत्तर दिया और दामोदर को तकिये के सहारे बिठाया।

'दामोदर, अब बिना हिचक के कह, है क्या?' सर्वज्ञ ने पूछा।

'पूज्यपाद,' सिर झुकाकर दामोदर ने कहना शुरू किया। उसकी आवाज और भाषा संस्कारी थीं। उसे खाँसी आई, लेकिन उसके बन्द होने पर वह फिर बोलने लगा।

'शान्त हो, दामोदर, शान्त हो।'

'बापू! बापू!' दामोदर ने बोलने का प्रयत्न किया, 'बैठे क्यों हो?

भी कहता था कि गोपावापा की उम्र में वह स्वयं उनके जैसा ही होगा।

इस प्रकार मज्जन की विचारधारा चल रही थी और पदमड़ी मनचाहे रास्ते से रेगिस्तान पार कर रही थी। रेगिस्तान सौम्य बन गया था।

आठवें दिन पेड़ वाला टीला दिखाई दिया तो मज्जन ने हुंकार की और पदमड़ी भी बिना कहे उस ओर दौड़ी। टीला निर्जन था, परन्तु सौभाग्य से वहां एक कुएं में पर्याप्त जल देखकर मज्जन की थकान उतर गई। उसने पानी सींचा, पिया और पदमड़ी को भर-पेट पिलाया। बहुत दिन बाद वह स्वयं निश्चिन्त होकर नहाया और उसने ऊँटनी को नहलाया। पदमड़ी ने बहुत दिन बाद हरे पत्ते खाकर जुगाली की। इन सब विधियों के पूरा होने पर प्रेम से एक-दूसरे का सहारा लेकर उन दोनों ने निश्चिन्तता से नींद ली।

आकाश से तारों ने इस नर और पशु की मित्रता पर किरण-पुष्प बरसाये और सवेरे जब सूर्यनारायण उदय हुए तो मज्जन चौंककर जाग पड़ा। माता के स्नेह से पदमड़ी उसकी रक्षा करती हुई अपने ढंग से हर्ष प्रकट करती रही।

'पदमड़ी बहू, अभी मंजिल तो बाक़ी तय करनी है।'

मज्जन ने पखाल में नया पानी भरा और उसने पदमड़ी को ही रास्ता खोजने का काम सौंपकर यात्रा प्रारम्भ की।

नवाँ दिन तो अच्छी तरह बीता, परन्तु उस रात मज्जन को ऐसा भान हुआ कि वह उत्तर की ओर जाने के बदले पश्चिम की ओर जा रहा है और गोपावापा से दूर होता जा रहा है। उसने ऊँटनी को उत्तर की ओर जाने के लिए संकेत किया, लेकिन वह टस-से-मस न हुई। मज्जन ने महादेवजी का स्मरण करके अपना भविष्य उसीको सौंप दिया। वह स्वयं हार गया है, इसका पता तो उसे कभी का चल गया था। अब तो केवल यही इच्छा रह गई थी कि किसी प्रकार सरल मार्ग मिल जाय।

रेगिस्तान के सफ़र का दसवां दिन शुरू हुआ। अब किसी-किसी स्थान पर विश्राम करने के टीले आने लगे थे, इसलिए सरल मार्ग एव

'यह कैसे कहा जा सकता है ? अफ़वाह तो उड़ रही है कि यवन-सेना लाखों में है।'

'जिसकी रक्षा पिनाकपाणि करेंगे उसे कौन छेड़ सकेगा ?' सर्वज्ञ ने कहा, 'उठ बेटा, सोमनाथ सदा तेरे साथ है।'

'गुरुदेव, मैं तो इसमें महादेवजी की कृपा देखता हूँ। मैं तो युद्ध के लिए लालायित हूँ और उसमें भी गज़नी के अमीर जैसा योद्धा लड़ने के लिए मिला है। अब आप भीम की बाणावली का कौशल देखें। उठ, विमल, तैयारी कर।'

'सत्य की जय होती है बेटा,' सर्वज्ञ ने कहा, और सोमदेव की कृपा में श्रद्धा रखने वाले उस तपस्वी ने आगे कहा, 'भगवान् तुझे ही विजयी बनाएँगे।'

: ३ :

भीमदेव के कान में रणकंकण का उत्साहवर्द्धक नाद पड़ने लगा। विषयी पिता और निःसत्व भाई को पाटण की गद्दी से पदच्युत करके उस पर बैठना उसके लिए खेल हो गया था। वह मालवा के साथ युद्ध करने की तैयारी कर रहा था और उसे विश्वास था कि वह उसमें विजयी होगा। बहुधा वह इस बात का विचार करके खिन्न हो उठता था कि युद्ध करने में उसके समान कोई योद्धा पैदा ही नहीं हुआ है। इस समय तो देव ने ही कृपा करके यह अवसर उसे दिया था।

गज़नी के म्लेच्छ राजा की अनेक बातें वह सुन चुका था। उसने लवकोट के राजा को हराया था, थानेश्वर को लूटा था, कन्नौज को नष्ट किया था; लेकिन वह रेगिस्तान पार करके, दुनिया के परले सिरे से, वीर-प्रसू गुर्जर भूमि पर आक्रमण करने की धृष्टता करेगा, ऐसा स्वप्न में भी नहीं सोचा था। आज महादेवजी ने ही उसे यह सुन्दर अवसर दिया था। उनके परमधाम को नष्ट करने वाले यवन को दण्ड देने से बढ़कर दूसरा कौन-सा लाभ पतित व्यक्ति को मिल सकता है ? उसके रग-रग में उत्सुकता व्याप्त हो गई।

मध्य रात्रि बीत चुकी थी और विमल जाने की पूरी तैयारी कर रहा था। चलने में दो-चार घड़ी शेष थीं।

सज्जन को ऊँट वाले की आवाज तिरस्कारपूर्ण जान पड़ी, परन्तु इस अपमान को पीकर उसने जवाब दिया, 'हाँ, लेकिन आप कौन हैं ?'

ऊँट वाले ने यह जवाब उस नायक को बताया। वह खिलखिलाकर हँसा। उसने ऊँट वाले से कहलवाया, 'हम कौन हैं यह तो अभी मालूम पड़ जाएगा, लेकिन यह तो बताओ कि गुजरात जाने का सीधा मार्ग कौन-सा है ?'

'किसको जाना है ?' सज्जन ने पूछा।

'हमें।'

सज्जन को एक प्रेरणा हुई। इस म्लेच्छ की सेना को गुजरात जाना था—सोमनाथ का मन्दिर तोड़ने। इसी लिए तो महादेव उसे इस रास्ते में लाये थे। ऐसा क्यों हुआ, यह अब उसकी समझ में आया और वह हँसा। गजनी के म्लेच्छ को जीवित मार डालने की शंकर की आज्ञा शिरोधार्य करने का इससे अच्छा अवसर क्या हो सकता था ?

'चलो, ले चलूँ।'

'तू अच्छी तरह जानता है ?'

'हाँ, मैं वहीं से चला आ रहा हूँ।'

'कितने दिन का रास्ता है ?'

'बारह-पन्द्रह दिन का।' सज्जन ने कहा।

ऊँट वाले ने इस उत्तर का अनुवाद नायक को बताया और उसके हर्ष की सीमा न रही।

'चलो हमारे साथ,' ऊँट वाले ने नायक की आज्ञा सज्जन से कही।

'तैयार हूँ,' सज्जन ने कहा और उसके साथ चल दिया, बिना साथ गये छुटकारा भी तो न था।

उसके हृदय में आशा की तरंगें उठ रही थीं। कारण, उसे अकेले ही सोमनाथ भगवान् की आज्ञा पालन करने का अवसर मिल रहा था। स्वयं बन्दी होने पर उसे यह स्पष्ट दिखाई दिया कि उसके साथी उसे धोखा देना चाहते थे। नायक की तीक्ष्ण दृष्टि उसकी चौकीदारी कर रही थी तो भी उसने पदमड़ी के लिए पूरा-पूरा पानी दिया, स्वयं खाने बैठा तो अपने साथ उसे भी बिठाया और थोड़ी-थोड़ी देर के बाद उसके

शक्ति। यह तो जीवित और सच्चा कापालिक है। भीमदेव का रोम-रोम भय से खड़ा हो गया। उसका मन हुआ कि वह वहाँ से भाग जाए, लेकिन उसके पैर वहाँ से उठे ही नहीं।

कपाली किसकी ओर देखकर हँस रहा था, इस बात का पता लगाने के लिए भीमदेव ने गर्भ-गृह पर दृष्टि डाली। लाल, मदिरा में मत्त, भयानक आँखें गर्भ-गृह में पड़ी किसी वस्तु को ध्यान से टकटकी लगाकर देख रही थीं। भीमदेव ने उस वस्तु की ओर देखा।

पहले तो ऐसा लगा जैसे वह फूलों का ढेर हो, लेकिन बाद में उसे उसमें एक स्त्री की आकृति का भान हुआ। सुघड़ कन्धे, छोटे-छोटे कोमल हाथ और गठीले नितम्बद्वय की रेखाओं पर उसने दृष्टि डाली, और जैसे हृदय का तार टूटने पर पता चल जाता है वैसे ही उसने देखा कि यह तो वही चौला है—महादेवजी की नर्तकी।

वह पृथ्वी पर मस्तक रखकर प्रार्थना कर रही थी। उसका एक भी अंग नहीं हिल रहा था। क्या वह मर गई थी? भीमदेव को अपने हृदय का दीपक बुझता हुआ जान पड़ा। और यह कापालिक उसे इस प्रकार क्यों देख रहा था?

वह भी स्तब्ध हो गया। उसकी आँखें भी चौला के सुप्त शरीर पर जाकर चिपक गईं।

कुछ देर बाद चौला का मस्तक हिला। क्या वह जीवित थी? क्या यह कापालिक उसे यहाँ लाया था? क्या वह इसीके लिए प्रतीक्षा कर रहा था? न वह हिला-डुला, न चौला हिली-डुली और कापालिक हिला-डुला। बाद में चौला बैठकर, हाथ जोड़े प्रार्थना करती रही और उसके पश्चात् वह एक एकदम गेंद की भाँति उछली। स्वर्णिम उत्साह की वर्षा करने वाले हास्य से वह देव को मनाने लगी। वह हँसी, पैरों से उसने दो-तीन तालें दीं और प्रणय-कलह के आनन्द-भरे स्वर में बोली, 'मेरे नाथ! तुम्हारी···मैं तुम्हारी हूँ।' वह पीछे मुड़ी और हँसती, मदमाते नयनों को नचाती, गर्भ-द्वार के बाहर आई और दक्षिण की ओर चल दी।

भीमदेव पीछे हटा, कापालिक भी खम्भे की ओट में हो गया और

इधर-उधर घूम रही थीं। उसका बलिष्ठ दायाँ हाथ कमर में पड़ी एक बड़ी नंगी तलवार की मूठ के साथ खेल रहा था।

उसने चमड़े की विचित्र पोशाक पहन रखी थी। उसके माथे पर एक जरीदार-सी पगड़ी थी, जिसमें नीलम अटक रहे थे। इस पुरुष की दाईं ओर एक अधेड़ वय का म्लेच्छ बैठा था, जिसने कमर में एक बड़ा कलमदान बाँध रखा था और कान में एक कलम खोंस रखी थी। उसकी बगल में एक नीचे दरजे का परन्तु बलवान दिखाई देने वाला योद्धा बैठा हुआ था। उसके पास ही एक युवक सरदार बैठा था और ये दोनों म्लेच्छ नहीं, राजपूत जान पड़ते थे। तकिये का सहारा लेकर पड़े हुए मनुष्य के बाएँ हाथ पर म्लेच्छ योद्धा बैठा था, जिसकी पोशाक उसके दाएँ वाले सरदार जैसी ही थी। उनको आते देखकर बीच में पड़ा हुआ मनुष्य सीधा बैठ गया और उसने बादल की गर्जना जैसे भयंकर स्वर से आते हुए नायक को सम्बोधित किया। नायक झुकता-झुकता नम्रतापूर्वक आगे बढ़ा। सज्जन को पता चला कि इस नायक का नाम सालार मसूद था।

सज्जन को विश्वास हो गया कि यही वह म्लेच्छ था, जिसने कन्नौज, कालिंजर, नगरकोट और मथुरा को जमींदोज कर दिया था; यही वह गजनी का भीषण अमीर महमूद था, जिसने मथुरा के ब्रज-वधुओं को गजनी के बाजार में साढ़े तीन रुपये में बेचा था, वही जिसने इस रेगिस्तान को पार करके देवों के देव भगवान् सोमनाथ का विनाश करने का प्रण लिया था। उसकी नस-नस में उत्तेजना व्याप्त थी और यदि सम्भव होता तो वह शार्दूल के समान उछलकर वहीं उसके प्राण ले लेता और गुरु सर्वज्ञ की आज्ञा पालन करता।

: ३ :

बीच में बैठे हुए पुरुष के विषय में सज्जन का विचार ठीक था। वह था गजनी का सुल्तान—यमीनुद्दौला महमूद निजामुद्दीन कासिम महमूद। चौदह वर्ष की उम्र में ही उसने गजनी के भयंकर वीरों में भी ख्याति प्राप्त कर ली थी। गरीब होते हुए भी उसने धन प्राप्त कर लिया था। सुलतान के राज्य को लेकर उसने देखते-देखते अपने

चौला समुद्र में स्नान करने के लिए कूद पड़ी। समुद्र में तूफ़ान आ रहा था। उसने बालों को खोलकर प्यार के साथ उनकी लटों को सुलझाया। उसने गाल, छाती और पेट पर धीरे-धीरे हाथ फेरा और फिर उसने पानी में डुबकी मारी; क्षण-भर वह डूबी रही, ऊपर आई और फिर डूब गई। उसने हाथों और पैरों से कुछ पानी उछाला और चित लेटकर तैरने लगी। चमकती हुई पारदर्शक तरंगों में होकर किरणें उसके शरीर पर गिर रही थीं। वह उस समय ऐसी लग रही थी, जैसे मोह के सीप का कोई शंख हो। और समुद्र उसे जल-पलना पर झुला रहा था—धीरे-धीरे, ममता के साथ।

भीमदेव ने स्त्रियाँ देखी थीं—अच्छी और बुरी, सुन्दर, नखरे वाली और लावण्यमयी; लेकिन उसने ऐसी किसी स्त्री को न देखा था और न कल्पना की थी, जो उसे इस प्रकार मुग्ध बना दे। यह तो कौमुदी, लहर, पवन और लावण्य से निर्मित सौन्दर्यातिरेक से मूर्च्छित बनाता हुआ स्वप्नमात्र था। उसका पुरुषत्व उसकी आँखों में आकर ठहर गया।

चौला का सौन्दर्य-स्नान पूरा हुआ। वह घुटनों तक पानी में खड़ी रही। उसने अपने शरीर को हिलाकर जलकणों को दूर किया, बाल निचोड़कर जूड़ा बाँधा और पानी से बाहर आई। भीमदेव इस सौन्दर्य का पान कर रहा था।

और चन्द्रिका की उस मादक अपूर्वता में, समुद्र की तरंगों की चमक के आह्लादकारी प्रकाश में सरसता की भावना के समान इस चित्र को कलंकित करने के लिए काले और बड़े धब्बे के समान वह भयंकर कापालिक हुंकार के साथ हाथ में हाड की गदा घुमाता हुआ राहु के सदृश चौला के सामने जाकर खड़ा हो गया।

और आनन्दमग्न, उत्साहपूर्ण सुकुमार बाला इस भयंकरता को देखकर भयभीत होकर पीछे हट गई और उसकी भयानक चीख से तरंगों के स्वर से मनोहर बनी हुई शान्ति विदीर्ण हो गई।

भीमदेव के मस्तिष्क को धक्का-सा लगा। वह सिंह के समान कूदा और एक ही छलाँग में सीढ़ियों को पार करके कापालिक पर जा टूटा; जाते ही अपने बलिष्ठ हाथों से उसकी गरदन दबा दी।

देर तक धीमे-धीमे बातें करते रहे।

: ६ :

दूसरे दिन सालार मसूद ने सज्जन को अपने तम्बू में नजरबन्द रखा। तीसरे दिन पौ फटने से पहले ही गजनी का सुल्तान महमूद, प्रधान मार्ग पर एकत्रित राजपूत सेनाओं से व्यर्थ उलझने का विचार छोड़, पश्चिमी दिशा में पदमडी के पीछे कूच करने लगा और घोघा चौहान का पुत्र देव की आज्ञा-पालन के लिए अपने को सौभाग्यशाली मानता, जिस रास्ते से आया था उसी रास्ते से आँधी से मिलने के लिए तरसता, पदमड़ी वहू को मीठे गीतों से प्रोत्साहित करता, आगे-आगे रास्ता बताने लगा।

से चिपका लिया; उसका मुख लेकर अपने मुख से दवाया । क्रोध, और उमंग से जलता हुआ उसका मुख चौला के वेसुध मुख की तलता को स्पर्श करके शान्त हो गया । उसने चौला के कपड़े जैसे-से उसके चारों ओर लपेट दिए और उसे कोने में सुलाकर होश में ाने का प्रयत्न किया ।

चौला की पलकें फड़कीं और उसने आँखें खोलीं । आँखें खोलते ही जैसे उसे होश आया, वह चीख मारकर दूर जाकर खड़ी हो गई । दूर जाते हुए उसका वस्त्र पृथ्वी पर खिसक पड़ा ।

भीमदेव खड़ा हो गया । 'घवराओ नहीं,' उसने कहा, 'घवराओ नहीं ।'

अपने शरीर का ध्यान आते ही चौला लजा गई । उसने वस्त्र उठा-कर जैसे-तैसे अंग ढके । 'कालमुखा कहाँ गया ?' उसने कहा, और भय से चारों ओर देखने लगी ।

'कालमुखे को मैंने भैरव के यहाँ भेज दिया,' और भीमदेव खिल-खिलाकर हँस पड़ा ।

'क्या कालमुखे को···' अवरुद्ध कण्ठ से चौला ने कहा, 'मार डाला ?

भीमदेव ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा ।

'ओह माँ ! अपशकुन हुआ । लेकिन तुम कौन हो ?'

कालमुखे के मरण से उत्पन्न अपशकुन के भय को भीम ने जैसे-दवाकर कहा, 'मुझे नहीं जानती ? मैं हूँ पाटण का भीमदेव ।'

'कौन, वाणावलि भीमदेव !' संभ्रम और लज्जा की मा फिर अंगों को ढकने का निष्फल प्रयत्न करने लगी ।

'हाँ, यदि मैंने न मारा होता तो वह कापालिक तुझे उड़ा ले

'लेकिन कृपानाथ, आप मुझे उठाकर लाए ?' वह नीचे नहीं देख सकी । 'मेरे कपड़े ?'

'मैं क्या करूँ ?' इस पर लज्जा से खिलखिलाकर हँसते ने कहा, 'तू कपड़ों के साथ कहाँ मूच्छित हुई थी ?' और उस हास्य चौला को भी आकर्षित करने लगा ।

'कृपानाथ ! जो कुछ देखा हो उसे भूल जाना, क्योंकि

'हाँ,' और चपल सामन्त ने इस आने वाले का कारण भी समझ लिया। 'और आप भी मेरी तरह सोमनाथ की आज्ञा से ही आये जान पड़ते हैं। आपका नाम क्या है?'

'मैं हूँ भीमदेव का मन्त्री विमल,' कहकर वह सामन्त को सब सैनिकों से दूर ले गया।

'और आप?'

'मैं हूँ घोघाराणा के पुत्र का लड़का सामन्त,' हँसकर सामन्त ने कहा, 'आप भी उस म्लेच्छ के ही कारण आये हैं?'

'आप?' अनुभवी विमल ने पूछा।

'मैं घोघावापा को खबर करने जा रहा हूँ। मुझे गुरुदेव ने भेजा है। ...आप?'

'अच्छा हुआ आप मिल गए,' विमल ने कहा, 'रावल तो आपके सम्बन्धी हैं। यदि आप मेरे साथ कहने लगेंगे तो वे मान लेंगे।'

'क्या कहना है?'

'झालोर मदद दे तो पाटण यहाँ आ जाए और सब मिलकर फौजें लेकर गजनी के सुलतान को युद्ध में ही समाप्त कर दें।'

'अरे,' खिलखिलाकर हँसते हुए सामन्त ने कहा, 'लेकिन इधर आये तब न! बीच में बैठे हैं मेरे घोघावापा—रेगिस्तान के सम्राट्, और सपादलक्ष के स्वामी, हजारगढ के मालिक; नान्दोल, कन्नौज और सुरसागर अलग रहे।'

'यह ठीक है, लेकिन जितनी ज्यादा तैयारी की जाए उतनी ही कम है। सोमनाथ महादेव का काम है।'

'तनिक भी मत घबराओ। कारण, घोघावापा उसे हाथ से निकल जाने दें, ऐसे नहीं हैं।'

'यह क्या मैं नहीं जानता?' समझदार विमल ने बालक सामन्त का उत्साह बढाया। वे दोनों बातें कर रहे थे और उनकी थकी हुई ऊँटनियाँ दम ले रही थीं। उसी समय गढ के दरवाजे से थोड़ी-सी ऊँटनियों का तीसरा काफिला बाहर आया। देखते-देखते वह काफिला गढ़ से उतरकर उत्तर की ओर चला गया और विमल एकाग्र नयनों से.

'हूँ, तब तो विजयी होकर शीघ्र आना,' चौला ने कहा, 'भोलानाथ आपकी रक्षा करेंगे।'

'तू बाट देखेगी ?' भीमदेव पूछ बैठा।

चौला तटस्थ हो गई, 'जब आप आएँगे तब मैं तो अपने महादेव के चरणों में ही मिलूँगी।'

गौरव-मग्न भीमदेव को ऐसा लगा जैसे किसीने तमाचा मार दिया हो। उसने इस लड़की की ओर देखा। उसके कृतज्ञ नयनों और मोहक स्मित में मानवीय प्रेम नहीं था, मात्र देव-भक्ति थी। उसने आह भरी।

'तो चल, मेरा विमल बाट देख रहा होगा। तुझे मैं छोड़ दूँ।'

'चलिए,' चौला ने पानी की ओर देखा और वह फिर कांप उठी।

: ५ :

नर्तकियों के आवास में जाने वाले दरवाजे के आगे चौला ने भीमदेव से विदा ली। अस्त होते हुए चन्द्रबिम्ब की भाँति वह दृष्टि से ओझल हो गई, लेकिन भीमदेव से वहाँ से हिला तक न गया। इस घड़ी-आधी घड़ी में उसने ऐसे सौन्दर्य का दर्शन किया, जिसकी उसने कभी कल्पना तक न की थी, कभी स्वप्न तक न देखा था। और जैसे अन्धकारमय जगत् को जीवन देने वाला सूर्य उदय होता है, वैसे ही उसके जीवन में यह प्राणेश्वरी आई और उसी सौभाग्य के क्षण में उसको पीछे छोड़कर चली गई। उसे जाना चाहिए, युद्ध में लड़ना ही चाहिए, विजयदेवी की गोद में सिर रखना ही चाहिए······समय है, हो सकता है जीवित लौटना न हो सके। उसके हृदय में खिन्नता व्याप्त हो गई।

उसने मन्दिर की ओर देखा, धीरे-धीरे ऊपर देखकर शिखर पर फहराती हुई ध्वजा पर दृष्टि डाली। उसके महादेव ही उसके साथ थे। गंग सर्वज्ञ का आशीर्वाद था। चौला उसकी बाट देखती होगी, अवश्य—'ना' कहने पर भी। वह अवश्य लौटेगा और फिर दर्शन करेगा। अपनी कल्पना के आगे बढ़ने से पहले ही वह होंठ दबाकर वहाँ से चल दिया।

उसने झटपट महादेवजी के दर्शन किये और बाट जोहने वाले विमल से जा मिला। जाने से पहले उसने दामोदर को जगाकर उससे विदा ली।

'जो प्रभास तक दावानल फैलाएगा उसे किसका भय रहेगा ?' विमल ने पूछा।

'छोकरे, सब तेरे मालिक जैसे नहीं हैं, समझा ? परमार का शूरता तूने देखी नहीं है। वह पैर तो रखे !' गुस्से में आकर वाक्पतिराज बोले।

'हमारी शूरता म्लेच्छ को मार भगाने में है।'

'क्यों रे, छोटे मुँह बड़ी बात करता है ? जा, जाकर पूछ अपने घोघाबापा से कि वाक्पतिराज की शूरता किसमें है !'

सामन्त खड़ा हो गया। 'मेरे बापा को ऐसा न कहना पड़ेगा। जब तक वह रेगिस्तान का सम्राट् बैठा है तब तक म्लेच्छ की क्या मजाल है जो आगे बढ़े ! आप अन्धे बनकर मौज कीजिए,' सामन्त ने कहा, और रावल के गुस्से में आकर डींग मारने से पहले ही वहाँ से चल दिया।

'घोघा का पूरा वंश ही अविचारी है,' रावल बड़बड़ाए और विमल से बोले, 'तू अपने मालिक के पास वापस जा। मैं अपने वचन को नहीं तोड़ूँगा।'

'मैं आपसे कल सवेरे फिर मिलूँगा।'

'मैं टस-से-मस नहीं हूँगा।'

'आप कर्ता-हर्ता हैं,' विमल नम्रतापूर्वक नमस्कार करके उठा और वाक्पतिराज ने पैर दबाने वालों को फिर बुलाया।

: २ :

रावल की स्वार्थपरता देखकर सामन्त के क्रोध की सीमा न रही। वह अधीर पगों से अपने डेरे पर गया और लोगों को तैयार होने का हुक्म दिया। थोड़ी देर बाद जब विमल गम्भीर मुद्रा लिये आया तब वह नीचा मुँह किये जमीन पर अपनी आँखें गड़ाए बैठा था।

'चौहान, अधीर मत हो,' विमल ने प्रेमपूर्वक इस साहसी युवक को समझाने का प्रयत्न किया।

'वाक्पतिराज क्या इतना पतित हो गया है ? ब्राह्मणों का काल खुले-आम चला आए और झालोरराज उसे रिश्वत लेकर आने दे ? सूर्य और चन्द्र की कीर्ति भी कलंकित होने के लिए बैठी है। यदि आज

सीढ़ियों से उतरीं। पानी में उतरीं कि पैर में कोई चीज़ उलझ गई। दोनों ने नीचे देखा। घड़े उन्होंने फेंक दिए और 'ओह री माँ' कहती हुई उलटी भागीं।

आधी घड़ी में मन्दिर में कोलाहल मच गया। सबकी जीभ पर एक भयंकर बात थी; सबके हृदय में एक अकल्पनीय घबराहट थी। एक ऐसा भयंकर, आपत्तिसूचक और दैवी प्रकोप का प्रदर्शक प्रसंग उपस्थित हो गया था, जैसा कभी किसीने नहीं सुना था। एक कालमुख आँखें फाड़े, बिना होंठों के मुख के कारण विकराल बना हुआ किनारे पर पड़ा था।

बात हवा में फैली। सर्वज्ञ के धाम से, मन्दिरों से, पाठशालाओं से, शिव-भक्तों और नर्तकियों के आवास से स्त्री और पुरुष घबराये हुए और डरते हुए, धीमी आवाज़ में बात करते, शिव की कृपा की याचना करते, धड़कते हृदय से बाहर आये। कुछ ऐसा बनाव बन गया था कि जिसकी कल्पना से सबकी काया कम्पायमान हो रही थी; कुछ ऐसा बनाव बन गया था कि जिसको त्रिकाल में भी किसीने अनुभव नहीं किया था। एक कालमुखे का शव मन्दिर के द्वार पर पड़ा था। भय से काँपते और दैवी प्रकोप की सम्भावना से त्रसित स्त्री-पुरुष न तो अपनी जिज्ञासा को रोक सके और न घटना की वास्तविकता का ही पता लगा सके।

बात बढ़ने लगी। एक नहीं अनेक कालमुखों के शव की बातें होने लगीं।

यात्रियों के डेरे में बात फैली। थर-थर काँपते श्रद्धालु दैवी प्रकोप से बचने का उपाय सोचने लगे। स्त्रियाँ रोने लगीं। और अबोध बालकों को हृदय से लगाकर बलाएँ लेने लगीं। छोटी बालिकाएँ हिचकी भर-भरकर रोने लगीं। प्रत्येक मुख 'शिव-शिव' की रट लगाने लगा।

जिन्हें शिव-कवच का पाठ आता था वे उसे बोलने लगे। श्रोत्रिय मन्दिर में आये और शीश झुकाकर तथा गाल पर तमाचा मारकर देव से क्षमा-याचना करने लगे। जो नहाकर संध्या कर चुके थे, उन्होंने रुद्री शुरू की। कुछ भयग्रस्त लोग झुण्ड बनाकर घर से बाहर निकले और इकट्ठे होकर कीर्तन करने लगे। चारों ओर मजीरा, मृदंग और शहनाई की आवाज़ें होने लगीं। जिससे जैसे बना वैसे ही मन्दिर की ओर

और धीमी आवाज़ में उससे कहा, 'मैं रावल के पास से ही आ रहा हूँ। आप उनसे मिले, नजरें दीं, और रावल ने मार्ग देने से इनकार किया, परन्तु स्वय न लड़ने का वचन दिया। क्या यह सच है? अब विश्वास हुआ? यदि मैं गलत कहता हूँ तो पूछो इस चौहान कुँवर से।'

मुखिया को कुछ विश्वास हुआ। उसने पूछा, 'रावल ने तुमको किसलिए भेजा है?'

'रावल को ऐसा लगा कि सम्भव है मारवाड़ के रणमल्ल राजा आपका कहना न मानें, इसलिए हमें भेजा है। रावल की ओर से हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि वे नहीं लड़ेंगे।'

'विश्वास दिलाने की जरूरत?' मुखिया ने सशंक होकर पूछा।

'यही कि अनहिलवाड पाटण के राजा भीम ने राठौर को युद्ध में सम्मिलित होने के लिए कहला भेजा है।' विमल ने हिम्मत से पासा फेंका।

'अच्छा?' मुखिया ने पूछा।

'हाँ, चलो,' कहकर विमल ने साथ चलने की आतुरता दिखाई। 'हम राठौर से कहने जा रहे हैं कि भीमदेव की बात न माने।'

'अच्छा!' कहकर थोड़ा बोलने वाला मुखिया ऊँटनी पर चढ़ा और दोनों काफिले साथ-साथ चलने लगे।

ऐसा नहीं लगता था कि मुखिया को थोड़ा भी विश्वास हुआ हो। निद्रित-सी आँखों से वह विमल को देखता था। वह बात नहीं करता था और विमल के बात करने के प्रयत्नों को भी प्रोत्साहन नहीं देता था।

बहुत देर तक ऊँटनियों की डगों की आवाज़ को छोड़ कुछ भी नहीं सुनाई दिया। सामन्त अपने दिये हुए वचन के अनुसार चुपचाप चला जा रहा था। विमल भी अपनी ऊँटनी को मुखिया की ऊँटनी के साथ मिलाकर उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा था। दोनों एक-दूसरे की रखवाली कर रहे थे। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों विमल अधीर होता गया।

चुपचाप वे आगे चले। घड़ियाँ बीतने लगीं, पिछली रात प्रभात में बदलने लगी और विमल का हृदय अधीरता से और भी अधिक

अधिकार में रहता था ।

शंकर का साक्षात्कार करने के लिए उन्होंने भयंकर महानिधि का आरम्भ किया था और उस विधि को पूरा करने के लिए उन्होंने एक सौ आठ सुन्दरियों के रुधिर से भैरवनाथ महारुद्र की रुद्री करने का महाव्रत लिया था । अघोरियों में श्रेष्ठ यह व्यक्ति मध्य रात्रि को छोड़कर कभी श्मशान से बाहर नहीं निकलता था । उसकी ऐसी मृत्यु देखकर सब लोग और भी घबरा गए ।

शिवराशि को लगा कि आज उसकी परीक्षा है । यदि ये सब लोग उसे घबराया हुआ मानेंगे तो सर्वज्ञ पद के लिए उसकी योग्यता कम हो जाएगी । गुरु के साथ रहकर अधिकार कैसे प्राप्त किया जाए, यह उसे आता था । जैसे-तैसे घबराते हुए हृदय को वश में करके, उसने पास खड़ी एक वृद्ध स्त्री को काँपते हुए देखकर कहा—

'माँजी ! क्यों काँप रही हो ?'

'राशिजी ! यह क्या हुआ ? कंक योगेश्वर इस प्रकार कैलाशवासी हो गए, न जाने क्या होगा ?'

'भगवान् शंकर का अनुग्रह है तो क्या हो सकता है ?'

'महादेवजी की अकृपा के बिना क्या ऐसा हो सकता है ? न जाने क्या-क्या विपत्तियाँ आएँगी ।'

शिवराशि को गज़नी का अमीर याद आया और उसका रोम-रोम खड़ा हो गया । परन्तु भयभीत हृदय को प्रयासपूर्वक दबाते हुए उसने कहा, 'अरी, ऐसी क्यों घबराती है ? मुझे स्वयं योगेश्वर ने कहा था कि जिस समय उनको भगवान् शंकर का साक्षात्कार होगा, वे पृथ्वी पर नहीं रहेंगे और कैलाशवासी हो जाएँगे । यह तो भगवान् सोमनाथ की कृपा हुई है ।'

शिवराशि आडम्बरपूर्वक सीढ़ियाँ उतरा और योगेश्वर के शव के आगे जाकर खड़ा हो गया तथा उनकी फटी हुई आँखों से अपनी नज़र बचाता हुआ स्तोत्र बोलने लगा । उसका हृदय पल-पल बुझने की तैयारी कर रहा था, पर इस आशा से कि शीघ्र ही गुरु आ जाएँगे, वह जैसे-तैसे टिमटिमा रहा था ।

मोर पर बैठकर आया और उसे हृदय से लगा लिया। मोर ने चोंच मारकर उसके कपड़े ले लिये तथा उड़ गया।

वह चौंककर उठी और कल की स्मृति को ताजा करने लगी। कल उसने देव को रिझाया था, चन्द्रिका में समुद्र-स्नान किया था, भीमदेव की गोद में छिपी थी। उसके महादेव ने ही उसे जीवित बचाया था, नहीं तो फिर उसे बचाने के लिए भीमदेव कहाँ से आ जाता? निश्चय ही वह देव की प्यारी थी। थी, हाँ थी। इसमें तनिक भी संशय नहीं। वह हँसी।

गंगा ने पुत्री को इस प्रकार हँसते हुए देखा।

'क्यों री, कितनी सोती है? दोपहर कब का हो गया।'

'तो क्या हुआ? कल सारी रात जागी थी न?'

'लेकिन पता है कि क्या हुआ?'

'जब सो रही थी मुझे कैसे पता लगता?' उसने अल्हड़पन से पूछा, 'क्या बात है?'

'कंक योगेश्वर मर गए।'

'कौन?'

'कापालिक कालमुखों के आचार्य। किनारे पर शव पड़ा हुआ था। बाप रे! कैसी फटी आँखें और भयावना मुख था!' कपड़े बदलती हुई गंगा बात करती गई। 'खबर है तुझे? उसने एक सौ आठ लड़कियों के रुधिर से रुद्री की थी—' उसकी दृष्टि चौला पर पड़ी, वह घबराई और रुकी। 'क्या है बेटा?'

'लड़कियों का रुधिर! ओह माँ री!' कहकर चीखती हुई चौला मूर्च्छित हो गई।

: ८ :

और जब श्मशान से लौटकर दुबारा स्नान करके गंग सर्वज्ञ ध्यान करने बैठ रहे थे तब उनके मुख से भी अनायास शिवकवच का पाठ होने लगा—

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय—

था, जिसके सामने श्मशान भी तुच्छ जान पड़ता था।

पन्द्रहवें दिन उसका घायल सैनिक एकाएक बुरी तरह बीमार हो गया। उसे आगे ले जाना असम्भव देखकर अपने दूसरे सैनिक को उसकी देखभाल के लिए छोड़कर सामन्त अकेला ही आगे चल दिया। उसके आदमियों ने उससे रुकने के लिए बहुत कहा, लेकिन वह टस-से-मस न हुआ। जैसे-जैसे समझ मे न आने वाला महान् भय उसे ग्रसित करने लगा वैसे-वैसे शीघ्रता से जाने के लिए उसकी बेचैनी बढ़ने लगी।

इस अनिश्चितता की भयकर मनोदशा की अपेक्षा तो भय के मुँह में समा जाना उसे अधिक अच्छा जान पड़ा।

और अब तो भम्मरिया दूर नही था—दो दिन में आ जाएगा। उसका पिता तो वहाँ बाट जोह ही रहा होगा। वहाँ से घोघागढ की सीमा पार करने में देर ही कितनी···!

: २ :

उसका आदमी उसे पकड ले, इस आशा से एक दिन वह धीरे-धीरे चला। कई बार उसे ऊँटनी के कदमो की आवाज़ सुनाई दी, कई बार उसने पीछे मुड़कर क्षितिज को देखा, लेकिन उसे अपने आदमी का नामोनिशान नही दिखाई दिया।

भयकर स्थिति थी। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, निर्जनता फैली हुई थी। उड़ते हुए रेत, हिलते हुए ताड, विश्राम-स्थल की सूनी झोपड़ी और वीर-शैया जैसी प्रतीत होती देहली को छोड़कर और कोई वस्तु ध्यान को नही खीचती थी। यह सीधा रास्ता था। जब वह चला था तब उस पर कितने ही काफिले जा रहे थे, दोनो ओर गाँव के कुत्तों के भूँकने की आवाज़ सुनाई देती थी, विश्राम-स्थल पर ऊँट वालो के टोल गप्पें मारते बैठे थे। लेकिन इस समय उस पर आदमी या जानवर का नामोनिशान नही था। इस सूनेपन ने उसे घबरा दिया। उसका हृदय ज़ोर से धड़क रहा था। उसे इस बात का भी भय लगा कि यदि कोई न मिला तो उसका मस्तिष्क काम करेगा भी कि नही।

चारों तरफ भयकर सन्नाटा छाया हुआ था। उसे एक क्षण को

पुत्री के लिए उसका प्रेम इतना तीव्र था कि वह उसके मन की बातों से अपरिचित रहने पर भी ईर्ष्या कर उठती थी। यद्यपि वह इस बात का समर्थन करती थी कि वह शिवराशि के साथ अपना सम्बन्ध कर ले, तथापि इस विचार के आते ही कि वह अपना शरीर और हृदय दोनों किसी दूसरे को समर्पित करे, उसके हृदय में भयंकर घाव हो जाता था।

'बता तो सही। मुझे नहीं बताएगी?'

चौला भोली और सरल थी। जब वह संसार से कोई चीज़ नहीं छिपा सकती थी तो माँ से कैसे छिपाती!

'माँ, गज़नी का म्लेच्छ चढ़ा आ रहा है, यह बात मुझसे पाटण के भीमदेव ने कही थी।' और चौला की कल्पना ने उसकी आँखों के आगे रात का चन्द्रिका-स्नान ला खड़ा किया। वह काँपने लगी।

गंगा ने चौला को छाती से लगा लिया और पूछा, 'और मेरी चालाक बिल्ली, तू भीमदेव से कब मिल आई?' चौला का हृदय तो इस अनुभव को कहने के लिए तैयार ही बैठा था। वह माँ से चिपट गई, उसकी छाती में छिप गई, रोते-हँसते, डरते उसने रात की घटना, कंक योगेश्वर की मृत्यु और भीमदेव के मिलन का वर्णन किया। केवल वह इस बात को कहना भूल गई कि जब उसके नहा लेने पर बाहर निकलते समय भीमदेव उसे ले आया था, तब उसके शरीर पर कपड़े थे कि नहीं।

: २ :

जिस समय गंगा ने यह बात सुनी उस समय उसके हृदय में भी दहशत बैठ गई। कंक योगेश्वर का कत्ल चौला के लिए हो, इससे बड़ी विपत्तिसूचक बात क्या हो सकती थी? और शीघ्र ही भीमदेव को गज़नी के म्लेच्छ से लड़ने जाना पड़ा।

समस्त दुखों से छूटने का एक ही मार्ग गंगा जानती थी और वही उसने पकड़ा। वह गंग सर्वज्ञ के पास गई और चौला को भी अपने साथ लेती गई।

गंग सर्वज्ञ मध्याह्न की संध्या कर रहे थे। वे अर्घ्य दे चुके थे और गायत्री का पाठ कर थे। आज उनका चित्त भी अस्वस्थ था। मुँह

'क्यों ? क्या हुआ ?' योद्धा की आवाज़ में सामन्त को अकल्पनीय भय लगा। 'आप कौन हैं ?'

'बापू, न जानने में ही भलाई है। अपना रास्ता छोड़ो, पीछे लौटो और न हो तो चलो हमारे साथ। चौहान, तीन महीने में तो पृथ्वी रसातल को पहुँच गई है।'

'लेकिन क्या हुआ ?'

'हुआ क्या ? हमारा तेज नष्ट हो गया।' बड़े योद्धा की आँखों में आँसू आ गए।

'चौहान, वीर बाल्मदेव मारे गए। साथ ही पच्चीस हजार बत्तीस योद्धाओं ने भी अपने प्राण दिये। सपादलक्ष गिरकर खंडहर हो गया है।'

'और म्लेच्छ ?'

'म्लेच्छ की विजय हुई, राजपूतों में भगदड़ मच गई और कुंवर सारंगदे और रावलवल्लन घोरविटली में बैठे हैं।'

'फिर म्लेच्छ कहाँ गया ?'

'घोरविटली को नष्ट करने का साहस न हुआ; वह रेगिस्तान में भाग गया है। कहाँ गया, इसका पता नहीं चलता।'

'और आप उसे खोजने निकले हैं ?' सामन्त ने कहा।

'हाँ, उसकी सेना घबराई हुई है। उसका पता चले तो राजपूतों के हाथ दिखाये जाएँ।'

'तो राजाजी, इस रास्ते पर म्लेच्छ नहीं है। मैं झालोर से सीधा चला आ रहा हूँ।'

'जान पड़ता है कि वह हाथ से निकल गया,' बड़े योद्धा ने छोटे से कहा; और उसने सामन्त से कहा, 'बापू, तुम चलो हमारे साथ। सारंगदे बापा तुम्हें प्रेम से अपनाएँगे।'

'नहीं, मुझे तो शीघ्र घोघाबापा के पास पहुँचना है।'

'भाई, रहने दो। इस समय हमारे साथ चलो,' छोटे योद्धा ने फिर सामन्त से प्रार्थना की।

'यह कैसे हो सकता है ? मुझे तो सीधे घोघागढ़ पहुँचने की आशा

एक तो इस चौला को आपके दर्शन कराने थे।'
'—और दूसरे ?"
'और दूसरे, चौला ने मुझसे भयंकर वात कही है, उसे कहने के लिए
ई हूँ।'
चौला ने चारों ओर देखा, इसलिए गंग सर्वज्ञ समझ गए। 'शिव-
राशि, जा वाहर कह आ कि किसीको अन्दर न आने दिया जाए।'
'जैसी आज्ञा,' कहकर शिवराशि उठकर वाहर गया और थोड़ी देर
में वापस आकर वैठ गया।

और गंगा ने चौला के साथ घटने वाली घटना सर्वज्ञ को वताई।
जैसे-जैसे वह कहती गई वैसे-वैसे सर्वज्ञ का मुख गम्भीर होने लगा। जव
उसने भीमदेव द्वारा कंक योगेश्वर के वध की वात कही तो दोनों आँखें
आगे निकालकर, श्वास रोककर, सर्वज्ञ शिवकवच की कुछ पंक्तियाँ
वोलने लग गए। शिवराशि के तो वात सुनते-सुनते ही छक्के छूट गए।
तव गंगा की वात पूरी हुई तव सव चित्रलिखे-से रह गए।

सर्वज्ञ ने प्रयत्नपूर्वक धीमे और स्थिर स्वर से कहा, 'मनुष्य का
भय और मनुष्य की आशा खरगोश के सींग के समान हैं। सत्य वस्
तो भगवान् शंकर की इच्छा ही है। हम उसके अधीन हो सकें, इत
ही कृपा हमें चाहिए। भगवान् ने इन वीस वर्षों में मेरे हाथ से ध
की उन्नति कराई है। जव तक ये त्रिशूलपाणि वैठे हैं तव तक व
क्या कर सकता है ?' और यह कहते-कहते ही उनकी आँखों में
झलकने लगा और उनकी आवाज़ ऐसी अर्थगर्भित वन गई मा
देव का सन्देश ही सुना रहे हों। 'जिसका हाथ भगवान् ने पकड़ा
उसको छोड़ने वाला कोई है ? जिसको सोमनाथ ठुकरा देंगे उसे
वाला कौन ? जिस समय गज़नी का अमीर उनसे द्वेप करेगा उ
वह ऐसा हो जाएगा जैसे कि वह था ही नहीं।'

वे रुके और आँखें आकाश की ओर उठाकर क्षण-भर
सर्वज्ञ के तीनों दर्शकों की उनमें अविचल श्रद्धा जागी।
'राशि, वाहर सज्जन चौहान खड़ा है न ? भगवान् सो
... ऐसा है। उसे वुला ला।'

उसके दाँत किटकिटा रहे थे और रग-रग काँप रही थी। वह अकेला इस सन्नाटे-भरे एकान्त में दौड़ा, मानो पीछे कोई प्रेत-सेना आ रही हो। वह श्वास लेने में भी असमर्थ था। सामने भम्भरिया महादेव का मन्दिर खड़ा था। उसे उसने देखा—न देखा; ध्वजदण्ड टूटा पड़ा था, कलश किसीने फोड़ डाला था, काले संगमरमर के नांदी के दो टुकड़े पड़े थे। उसे समस्त सृष्टि विप्लवकारी ताण्डव करती दिखाई दी। उसकी आँखें लाल भयाकुल और असमानबोध हो गईं। उसका श्वास रुद्ध होने लगा, उसकी कनपटियाँ फटने लगीं। वह मन्दिर में घुसा और पुकारने लगा, 'शम्भो ! शम्भो ! शम्भो !' मन्दिर के गुम्बज से हृदयभेदी प्रतिध्वनि हुई, 'शम्भो ! शम्भो ! शम्भो !'

वह महादेवजी के पास गया। उसकी अँधेरा-छाई आँखों को कुछ नहीं दीखा और उसने प्रणाम किया। वह अपने इष्टदेव, अपने पिता, अपने स्वामी की शरण गया। वह सिसकता हुआ, पत्थर के फर्श पर माथा टेके कुछ देर पड़ा रहा।

फिर वह रुका। उसकी आँखें कुछ-कुछ अन्धकार की आदी हो गई थीं, इसलिए उसे चारों ओर कुछ सूझने लगा। वह ऐसे भयंकर चीख मारकर पीछे हटा और दोनों हाथों से आँखें बन्द कर लीं जैसे उसने भूतावलि देख ली हो।

वहाँ कुलदेवता भम्भरिया महादेव के बाण के दो टुकड़े अलग-अलग पड़े थे। उसने पागल आदमी की तरह आँखें फाड़कर चीख मारी—एक-दो-तीन। वह बेहोश होता जा रहा था। पीछे हटकर उसने दीवार का सहारा लिया और सरका—गिरा—देवालय चक्कर खाता दिखाई दिया—और उसने लिंग के पीछे एक वृद्ध को हाथ में दीपक लिये खड़ा देखा···बुड्ढे को वह पहचानता था—कहाँ और किस अवस्था में उसे देखा था, यह उसे याद नहीं आया।

एक चमगादड़ और उससे टकराई···उसने गगन-भेदी चीख मारी और उसके चारों ओर अन्धकार छा गया।

: ३ :

सामन्त के मस्तिष्क के आगे एक सुन्दर

'यों नहीं, तेज़ी से पक्षी की भाँति उड़ते हुए जाओ। जान पर खेल जाने का काम है—भगवान् का काम है।'

'बहुत जल्दी करूँ तो बीस दिन लग सकते हैं।'

'सज्जन, पन्द्रह नहीं दस दिन में, दस नहीं आठ दिन में। मैं तुझे, घोघाराणा के पौत्र को, पहचानता हूँ। तू रेगिस्तान में ऊँटनी पर इतनी तेज़ी से जा सकता है जितनी तेज़ी से कि पक्षी भी नहीं उड़ सकता।'

'कहिए, क्या आज्ञा है ?'

'पतित की क्या आज्ञा हो सकती है ? आज्ञा तो भगवान् सोमनाथ की है।'

'क्या है ? कहिए, घोघाबापा के कुल को सोमनाथ की आज्ञा सदैव शिरोधार्य है।'

'इस कुल पर तो भगवान् सोमनाथ के दोनों हाथ हैं। सज्जन, मन्दिर की बड़ी-से-बड़ी ऊँटनी ले और रात-दिन रेगिस्तान काटते हुए जाकर घोघाराणा के सोमनाथ की आज्ञा कह।'

'क्या महाराज ?'

'गज़नी का म्लेच्छ चढ़ा आ रहा है—भगवान् का मन्दिर तोड़ने। जा, घोघाराणा से कह कि भगवान् ने अस्सी वर्ष की भक्ति के बदले उन्हें देवों को भी दुर्लभ अधिकार दिया है—उन्हें सोमनाथ के मन्दिर का रक्षक चुना गया है।'

'हमारा सौभाग्य !'

शंकर की आज्ञा का उच्चारण करते हुए सर्वज्ञ के मुख पर दिव्य तेज झलक रहा था और उनकी आँखों से अंगारे बरस रहे थे।

'कहना कि जब तक घोघाराणा के कुल में एक भी वीर जीवित हो, तब तक सुलतान रण में प्रवेश न करने पाए। और यह भी कहना कि जहाँ भी मिले, वहाँ इस देव-द्वेषी के प्राण ले लिये जाएँ क्योंकि यह सोमनाथ की आज्ञा है। और शंकर का वरदान है कि घोघा चौहान की कीर्ति तब तक अमर रहेगी जब तक कि सूर्य और चन्द्र का प्रकाश अमर है।'

सज्जन सर्वज्ञ के चरणों में सिर झुकाए भगवान् शंकर की आज्ञा

'फिर जब वह सन्धि की बातें लेकर आया तब क्या हुआ ?'

'सन्धि-भेंट लेकर आये दो जने—एक था युवक सालार ममूद—लम्बा, तेजस्वी और अभिमानी; दूसरा एक अधेड़ उम्र का देश-द्रोही—धर्म-द्रोही—'

'राजपूत ?'

'नहीं, जाति का नाई था, परन्तु म्लेच्छ की सेवा करके उसने प्रतिष्ठा पा ली थी। वह दुभाषिये का काम करता था। उसका नाम तिलक था। जहाँ हम बैठे थे वहाँ वह आया और घोघाबापा के पैरों में हीरे-मोती से भरा हुआ थाल रख दिया। घोघाबापा चुपचाप देखते रहे। मैंने पूछा, "बोलो, किस काम से आये हो और इसके लाने का क्या अर्थ है ?"

'तिलक ने नम्रता से हाथ जोड़कर कहा, "घोघाराणा, आपकी शूरवीरता की प्रशंसा से मुग्ध गजनी के अमीर यमीनुद्दौला महमूद ने यह सन्धि-भेंट भेजी है।" यह शब्द सुनते ही बापा की मूँछें जोर से फड़कने लगीं। लेकिन उनके दबे हुए होंठों से एक शब्द तक नहीं निकला।

'मैंने आगे बढ़कर पूछा, "उसे क्या चाहिए ?" तिलक ने विनम्रता से हाथ जोड़कर कहा, "रेगिस्तान के राजा, घोघागढ़ के स्वामी से अमीर विनय करता है कि रेगिस्तान में से प्रभास जाने का मार्ग दो।"

'और जैसे ही उसने यह कहा, घोघाबापा का हाथ मूँछों पर चला गया और उनकी जलती हुई आँखों का प्रकाश सूर्य के तेज को फीका करने लगा। मैंने समझा कि अब बिजली गिरेगी। अस्सी वर्ष तक जिसने किसी के सामने सिर नहीं झुकाया वह इस म्लेच्छ के सामने सिर झुकाएगा ? बापा का हाथ मूँछों पर ताव-पर-ताव दे रहा था। सामने तिलक उनके उत्तर की प्रतीक्षा करता खड़ा था।

'थोड़ी देर तक कोई नहीं बोला और वज्रपात होने से पहले पर्वत पर जैसी गम्भीर गर्जना होती है वैसी ही घोघाबापा की आवाज़ सुनाई दी, "तेरा अमीर मुझसे मार्ग देने के लिए कहता है, जाकर भगवान् सोमनाथ को तोड़ने ? और बदले में यह भेंट भेजी है ?"

सकते हैं, हमारे लिए तो ये बड़े सरल हैं।'

'मैं क्या जानता नहीं हूँ ?'

सज्जन चौहान और सामन्त ने चरण स्पर्श कर विदा ली। चलते-चलते सामन्त ने चौला की ओर देखा। उसकी सुन्दर और प्रशंसामुग्ध आँखें देख रही थीं। उनके द्वारा उसने नयन-सन्देश प्राप्त किया। उसे लगा कि वह सन्देश उसे वीरता की प्रेरणा दे रहा है।

सर्वज्ञ की दृष्टि से कोई बात छिपी न थी। उन्होंने कहा, 'सज्जन, तू और तेरा पुत्र दोनों भगवान् के दर्शन करके जाना। यह चौला तुमको प्रसाद दे जाएगी।'

सामन्त का हृदय धड़कने लगा। यह चौला—सोमनाथ की लाड़ली दासी—जो कल नृत्य कर रही थी, उसे प्रसाद देने आएगी ?

दो घड़ी बाद जब सामन्त और उसका पिता दर्शन करने गये तब चौला प्रसाद लिये खड़ी थी। दोनों ने मिश्री का प्रसाद पाया, प्रक्षालन जल माथे चढ़ाया और शौर्य से उछलते हुए हृदय से दोनों वीरों ने सोमनाथ के चरणों का स्पर्श किया।

सामन्त की आँखें पास खड़ी हुई नर्तकी को देख रही थीं। वह जाना ही चाहता था कि उसकी सुमधुर ध्वनि उसे सुनाई दी।

'और सर्वज्ञ प्रभु ने यह जो भेंट भेजी है, सो तो रह ही गई,' कहकर एक सोने की कटोरी में रखी भस्म उसने उसके आगे कर दी।

दोनों चौहानों के गर्व का पार नहीं रहा। शंकर के सेवायज्ञ में उसकी ही आहुति दी जाय, इस आशा से सज्जन ने स्वयं ही गर्व से भौंहों के बीच भभूत लगाई। सामन्त ने भभूत स्वयं नहीं ली। उसने तो सशरीर इस अप्सरा का नृत्य देखा था, उसका नयन-सन्देश प्राप्त किया था, उसके हाथ का दिया जल चखा था। यदि उसे रणयज्ञ की बलि बनना है तो भभूत क्यों उसीके हाथ से न ली जाय ? उमंग से कांपता हुआ वह क्षण भर खड़ा रहा और फिर मस्तक आगे कर दिया। चौला ने सामन्त की आँखों में शौर्य की मस्ती देखी। इस सुन्दर युवक के अंग-प्रत्यंग में स्वयं उसके लिए जो उत्कण्ठा भरी थी, उसे देखा। उसने अपनी उँगली से भभूत लेकर तिलक किया।

ऐसी बात तो कायर कहते है। आज मेरी आँख बचाकर यवन भागा है। अब मुझे—तुम्हें—जीने का क्या अधिकार है! सोमनाथ का सौंपा हुआ काम न हो सका, अब साँस लेना हराम है। देव ने हमें यहाँ भेजा, आज सबको वापस बुलाते हैं। तैयार हो जाओ।" और बापा ने खड्ग खींचा जैसे अँधेरे आकाश में बिजली चमकी हो और मैं "धन्य है, धन्य है" कहता हुआ क्षण-भर को मूर्च्छित हो गया। घोघाबापा के वचन कौन सह सकता था? समस्त पुत्र-परिवार ने खड्ग खींचे। समस्त स्त्रियों ने कंकण का विजयनाद किया। मैं शिवकवच से सबको सुरक्षित करने लगा।

"दौड़-धूप होने लगी। तैयारी के बाजे बजे। घोड़े और ऊँटनियों ने हर्ष-ध्वनि की। केसर-कुंकुम की फुहारें उड़ी। सामन्त, चौहान वीरो का यह महोत्सव, जिसको देखना देवों को भी दुर्लभ था, मैंने देखा। मेरी आँखों में तो हर्ष के आँसू थे और उनमें से होकर मैंने शिव-पार्वती को विमान से पुष्प-वृष्टि करते देखा।

'घोघाबापा ने जरी के बागे सजाये, माथे पर बाँधी केसरिया पगड़ी, गले में पहना लाल फूलों का हार। चौहान वंश के वीर तैयार हुए। मैंने थाल भरकर देव की पूजा की, केसरिया वीरों को कुंकुम का तिलक किया और आशीर्वचन कहे, "यावच्चन्द्र दिवाकर घोघाराणा का यश उज्ज्वल रहे!" मुझे बापा ने दरवाजे के पास बुलाया और सबको सुनाई दे ऐसे बोले, "नन्दिदत्त, तेरे बाप ने राजतिलक करके मुझे गद्दी दी। तूने मुझे स्वर्ग जाते हुए विजयमाल पहनाई। ब्रह्मदेव, मुझे वचन दे। चौहान वीरों के समाप्त होते ही उनकी सतियों को अग्नि को अर्पित कर देना। क्यों लड़कियो!" बापा ने झरोखों में कुंकुम-अक्षत लिये खड़ी वीरांगनाओं को सम्बोधित किया, "हमारे साथ कैलाश आने की हिम्मत है या नहीं?" और वे हँसे, मानो विवाहमण्डप में कुटुम्बियों को निमन्त्रित कर रहे हों। कमल के समान सुन्दर मुखों पर निमन्त्रण की सुमधुर स्वीकृति शोभा दे रही थी। सभी की आँखों में हर्ष के आँसू थे। वीरों ने भीषण गर्जना की, "जय सोमनाथ!"

'दरवाजे खुले और उदय होते सूर्य की सुनहरी किरणें

न में होकर जाने का एक भयंकर संक्षिप्त मार्ग है, लेकिन वह र और सुन्दर सामन्त के लिए नहीं था।

उसने पुत्र की ओर देखा। आँखों को हाथ द्वारा सूरज की धूप से ता हुआ वह भी हौंस और हिम्मत के साथ इस दुस्तर रेत के समुद्र नाप रहा था। क्यों इस बेचारे को इस मार्ग से ले जाऊँ? उसका न हुआ।

'बेटा, हमें एक काम करना चाहिए। तू आबू के रास्ते से झालोर जा। मैं यहाँ से सीधा रास्ता पकड़ता हूँ।'

सामन्त समझ गया और आँखों से बाप को फिर उपालम्भ दिया, 'इस रास्ते में मुझे क्या हो जाएगा?'

'तुझे होगा क्या? लेकिन एक की अपेक्षा दो रास्ते अच्छे हैं। इस रास्ते से मैं कभी गया नहीं हूँ, इसलिए मुझे जाकर देखना है। हम भस्म-रिए पर मिल जाएँगे।'

'बापू, सच बताना, मुझे साथ लेते हुए डरते तो नहीं हो?'

'घोघाबापा की सन्तान क्या कभी डरी है?' कहकर उसने सामन्त को हृदय से लगा लिया। उसके हृदय में अद्भुत उमंग उठी और उसकी आँखें भीग गईं। दो दिन पहले घोघागढ़ पहुँचने के लिए वह इस अन-जान मार्ग को पकड़ रहा था। लेकिन समय है, यदि यह रत्न जैसा लड़का फिर देखने को न मिला तो! सामन्त में बालकोचित अदू-दर्शिता थी।

'ऊँह बापू, ऐसे क्या मुझसे पहले घोघागढ़ जाना है? देखना मैं पहले पहुँचूंगा।'

'यदि तू मुझसे सवाया न होगा तो और कौन होगा?' सज-

सामन्त ने पिता की आँखों में पानी देखा, 'बापू, यह क्या' पूछा।

'कुछ नहीं, कुछ नहीं, यह तो रेत की चमक मार रही है।'

चार घड़ी सबने विश्राम किया और सज्जन ने दो ऊँ पानी और खाना रखा; फिर एक बार सामन्त से मिला, एक स्वयं चढ़ा, दूसरी पर ऊँट वाला बैठा और 'जय सोमनाथ' क

देने का अधिकार मेरा। धीमे-धीमे लड़खड़ाते पैरों से मैं गढ़ से उतरा। गिद्ध गढ़ पर चक्कर लगाते थे और नीचे रेगिस्तान में पड़े हुए शवों पर गिद्धों के झुण्ड टूट रहे थे। मैं जैसे-तैसे नीचे गया। मेरे राजपूत वीरों ने हद कर दी थी; हरेक ने मरने से पहले पाँच-पाँच वैरी मारे थे। बड़ी मुश्किल से मैंने घोघाबापा के शव को ढूँढ़कर निकाला और किसी तरह मैं उसे सबसे दूर लाया। फिर लौटकर गढ़ पर आया और चन्दन-काष्ठ लेकर नीचे उतरा। और भाई, मैंने घोघाबापा का दाह-संस्कार किया। फिर वहाँ मैं अधिक न ठहर सका; मेरा शरीर जल रहा था और मेरी जीभ सूख रही थी। दो दिन में गिद्धों ने कितने ही शव नोच डाले थे और उनमें से दुर्गन्ध निकल रही थी।

'इस भयंकर प्रेतलोक में मैं ही अकेला जीवित व्यक्ति था। और मुझे मरना था नहीं। मैं वहाँ से भागा। रास्ते में दो-चार भागकर आते हुए बटोहियों ने मुझे गरीब ब्राह्मण जानकर दया की और मुझे भम्भरिया ले आए।'

'और यवन-सेना?' सामन्त ने पूछा।

'यवन-सेना भम्भरिया की ओर न आकर सीधी सपादलक्ष की ओर चली गई। यहाँ थोड़े-से यवन आये जान पड़े, नहीं तो देव को कौन छोड़ता? अन्त में मैं वहीं रहा; तुममें से कोई यहाँ आएगा, इसका मुझे विश्वास था।'

'इसका अर्थ है कि घोघाबापा के कुल में अब···' सामन्त ने सिसकी भरकर कहा।

'तू, मेरे बेटे, और तेरा बाप—'

'शम्भु जाने उनको क्या हुआ?'

और दोनों एक-दूसरे से मिलकर दहाड़ मारकर रो पड़े।

सामन्त रात-भर मन्दिर के आगे घूमता रहा। उसका पितृ-प्रेम, उसका शोक, क्रोध और बदला लेने का जोश इकट्ठे होकर उसकी आत्मा को हलाहल पिला रहे थे। दुःख में डूबे इस एकाकी वीर पर सोमनाथ ने कृपा की। उमगों का अनुभव करने वाली उसकी शान्ति नष्ट हो गई। साथ ही उसका बालकपन भी जाता रहा। जब सवेरा हुआ तब स्ट

ा रही थी। सज्जन ने हर्ष-ध्वनि की—'विश्राम-स्थल आ
ी रह मेरी पदमड़ी वहू !'
ड़ी ही देर में दोनों ऊँटनियाँ टीले पर चढ़ गई। वहाँ दो-तीन
ाँ थीं और खाट डालकर चार-पाँच ऊँट वाले बातें कर रहे थे।
ऊँटनियाँ गरदनें ऊँची करके पेड़ की चोटी पर के पत्तों को चवा
थीं। उन्होंने अपनी जाति के नवागन्तुकों को देखा और जैसी आवाज़
ही अपने गले से निकाल सकता है वैसी आवाज़ निकालकर उनका
ागत किया।

सूर्य अस्त हुआ और रात पल-पल झुकने लगी। पश्चिमी दिशा के
प्रकाश ने चारों ओर फैले हुए रेत को लाल कर दिया। ऐसी निर्जनता
में यह अकेला खड़ा हुआ ताड़ का वृक्ष भोलाशंकर की कृपा का एकमात्र
चिह्न दीखता था। सज्जन ने ऊँटनी विठाई और वहाँ बैठे हुए ऊँट वालों
को वुलाया।

'ओ भाई, कुछ खाने-पीने को भी है ?'

'वापू, वाजरे के ढेवरे (पराठे) हैं और वह तालाब और कुआँ है।
पानी का आनन्द है।'

सज्जन को समय विगाड़ना अच्छा नहीं लगता था। उसने अपनी
ऊँटनियों की जाँच की और उनको पानी पिलाने का काम अपने सोनिया
ऊँट वाले को सौंपा। वारह घडी की मंज़िल तय करने पर भी पदमड़ी तो
ताज़ी ही थी, परन्तु दूसरी ऊँटनी कुछ थकी मालूम देती थी। सज्जन
उसे थपथपाया, उसे पुकारकर देखा, लेकिन ऐसा नहीं लगा कि उ
तेज हो। उसने गरदन मोड़ी और वहाँ खड़े ऊँट वालों की ओर देख

'तुम लोगों को कहाँ जाना है ?' उसने पूछा।

'वापू, हम तो कल सवेरे हलवद की ओर जाएँगे।'

'तो अपनी एक ऊँटनी मुझे दे दो और यह मेरी ऊँटनी तुम रख

'नहीं वावा, आपको कहाँ जाना है वापू ?'

'मुझे ? मुझे अभी रेगिस्तान के रास्ते जाना है।'

'इसी समय ? क्या रेगिस्तान के मार्ग से जाया जा सकता

'... तुम लोग कहाँ से आये हो ?'

'ओ शैतान, तू कौन है ?' मसूद ने तलवार खींचकर पूछा। वह इस पथ-प्रदर्शक की चालाकी को समझ गया।

'कौन हूँ ?' सज्जन ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा, 'मैं, म्लेच्छ, मैं तो घोघाबापा का लड़का हूँ, इस रेगिस्तान का स्वामी। और देख, यह मेरे सोमनाथ का तीसरा नेत्र खुला।' उसने आती हुई आँधी की ओर गर्व से हाथ किया और उसका भयंकर हास्य गरजने लगा।

मसूद को उसके ऊँटवाले ने इसका अर्थ समझाया। लेकिन अपनी ऊँटनी की अधीरता के आगे उसका क्रोध किसी काम का न था। वह पूँछ उठाकर भागी और दूसरे पथ-प्रदर्शकों की ऊँटनियाँ भी चारों पैरों से उछलती हुई साथ देने लगीं।

पदमड़ी आती हुई आँधी के सामने मुँह करके खड़ी रही। सज्जन की इच्छा थी कि वहाँ से तनिक भी न खिसके। सज्जन दूर भागने वाली ऊँटनियों को बड़ी तिरस्कार की दृष्टि से देख रहा था। अब क्या किया जाए ? दोनों ओर मृत्यु थी—मसूद के साथ जाने पर उसके हाथ से, आँधी के सामने जाने पर उससे दबकर। इतने में पदमड़ी ने भयंकर चीख मारकर उसे चेताया। आँधी पाँच सौ हाथ दूर थी और कुछ ही क्षण में उसे निगल जाने वाली थी। पदमड़ी उसकी आज्ञा लेने के लिए अधीर होकर नाच रही थी।

यह ऐसा भयंकर समय था, जिसमें उसकी कल्पना ने कितने ही चित्र खड़े किये। उसने देखा घोघाबापा—नब्बे वर्ष में भी सोटे के समान कड़ा, हर्षित नेत्रों से पुत्र की बहादुरी को देखता हुआ; देखी अपनी बाट जोहती हुई वीरांगना; देखा प्राणों से भी प्यारा सामन्त, रास्ते में बिना उसके रोता, बाप की गोद में छिपने के लिए तरसता, और फिर देखा उसके ऊपर श्रद्धा रखकर सोमनाथ के मन्दिर में बैठे हुए गग सर्वज्ञ को—और उसकी आँखों के आगे भगवान् सोमनाथ, उसके कुल-देवता का वह भव्य मन्दिर भी आया, जिसकी रक्षा के लिए उसने सर्वस्व समर्पण किया था।

और उस समय उसका हृदय गर्व से फूल उठा। जो किसी ने नहीं किया था वह उस अकेले ने किया था। उसने यवन-सेना का संहार

चौहान वीर को इनमें से किसीकी परवाह न थी। उसको तो भगवान् सोमनाथ का सन्देश घोघाबापा को सुनाना था। उसने पदमड़ी को मलकर नहलाया, स्वयं नहाया, कुएँ से पानी निकालकर पदमड़ी पर पखाल भरकर लादी, रणथम्भी माता के पैरों पड़ा और जहाँ ऊँट वाले बैठे थे वहाँ गया। बेचारी पदमड़ी गाय की भाँति उसके पीछे-पीछे आई; इस स्नेही और पुचकारने वाले मालिक की वह गुलाम बन गई थी।

सोनिया ने बिना मुँह से बोले खाना खोलकर दिया और सज्जन खाने लगा।

'सोनिया, वे लोग ऊँटनी देते हैं कि नहीं?'

सोनिया का मुँह फक हो गया। बोला, 'बापा, वे 'ना' कहते हैं।'

'तब तो हम छीन लेंगे।'

'बापा, इस समय कैसे जाया जाएगा, इस रणथम्भी माँ को दुखी करके?'

'तू भी घबराता है? मैं हूँ कि नहीं?'

'बापा, यदि माँ का कोप हुआ तो कौन बचाएगा?'

'मैं जानता हूँ कि उलटी कृपा होगी।'

'बापा, लेकिन इस समय नहीं,' सोनिया ने ज़िद की।

'अभी चलना पड़ेगा,' सज्जन ने हुक्म दिया, 'जा, नहला ला ऊँटनी को। अभी चाँद उगता है।'

सोनिया गूंगा बनकर खड़ा रहा।

'जाता है कि नहीं?' सज्जन ने आँखें निकालीं और तमाचा मारने को खड़ा हुआ। यह देखकर सोनिया मुँह चढ़ाकर अपनी ऊँटनी को तालाब पर ले गया।

सज्जन ने खा-पीकर पदमड़ी को तैयार किया, ढेबरों को बाँधा और यह देखा कि पानी पूरा पड़ जाएगा कि नहीं। इतने में सोनिया ऊँटनी ले आया।

'अरे भाई!' सज्जन ने ऊँट वालों से कहा, 'मेरी ऊँटनी और दो रुपये लेकर एक ऊँटनी देते हो?'

'नहीं,' एक ने निर्लज्जता से कहा।

: २ :

सुल्तान की प्रतिभा द्वारा शेष सेना जैसे-तैसे कुछ व्यवस्थित रही। दिवस में कुछ ही योजन चलना, खाने-पीने में कमी करना, सारे दिन प्रार्थनाएँ करना, भयंकर खुरासानी सवारों की सहायता से असन्तोषियों को डराना आदि उपायों से सेना छिन्न-भिन्न होने से बच गई। ऐसे कठिनाई के समय में सुलतान का वास्तविक व्यक्तित्व प्रदीप्त हो उठता था। वह किसी भी वस्तु से हताश नहीं होता था, किसी भी प्रकार की निराशा से उसकी आत्मश्रद्धा कम नहीं होती थी; किसी भी प्रकार की सम्पत्ति से उसके लक्ष्य में परिवर्तन नहीं होता था। रात-दिन ऊँट पर, घोड़े पर या पैदल वह सेना में चक्कर लगाता रहता था और किसीको मज़ाक से, किसीको उग्रता से तो किसीको धार्मिक प्रेरणा से उत्तेजित करता रहता था। वह जहाँ जाता वहीं अनाथ सनाथ हो जाते और अशक्तों में शक्ति आ जाती। मात्र हिन्दू सैनिकों में उत्साह नहीं था।

'जहाँ सूर्य नारायण रण चढ़ें वहाँ मनुष्य क्या कर सकता है?' ऐसा प्रश्न वे अपने से पूछते और निराशा से गरदन हिलाते। कुछ लूट के लोभ से, कुछ अपने निर्वीर्य राजाओं की आज्ञा से इस आक्रमण में सम्मिलित हुए थे, लेकिन आज उन्हें पता चला था कि वे मनुष्य से लड़ने नहीं जा रहे थे वरन् अपने देव के विरुद्ध लड़ने को तैयार हुए थे। उन्हें अपने धर्म का भान होने लगा, उनका असन्तोष बढ़ गया और उनकी घबराहट की सीमा न रही।

दूसरे दिन सवेरे सुलतान के तम्बू में मुख्य-मुख्य सरदारों की बैठक हुई। हरेक को कुछ-न-कुछ फरियाद करनी थी। हाथी चल नहीं सकते, घोड़े मृतप्राय हो गए हैं, पानी और चारा चुकने लगा है, हिन्दू हिम्मत हार बैठे हैं, मुस्लिम निरुत्साह हो गए हैं, पथ-प्रदर्शकों को रास्ता नहीं सूझता, पीछे राजपूत सेना प्रतीक्षा कर रही है—ऐसी-ऐसी अनेक फरियादें सुलतान ने तकिया पर पड़े-पड़े, मोटी भौंहों के नीचे की तीक्ष्ण दृष्टि से सबकी थाह लेते हुए सुनीं। अकेला मसूद ही उत्साह से उछलता हुआ बैठा था और हरेक बात का कुरान से दृष्टान्त देकर जवाब दे रहा था। इतने में बाहर से खबर आई कि दो आदमी सुलतान के

और पीछे की ऊँटनी को दो-चार सोटियाँ जमा दीं। उस समय ऐसा लगा, मानो ऊँटनी भी सोनिया की वृत्ति को ग्रहण कर चुकी थी। वह सोटी खाकर ज़िद के मारे बैठ गई।

'उतर सोनिया, देख क्या रहा है?' कहकर पदमड़ी को बिठाकर सज्जन नीचे उतरा और उस ऊँटनी को मारने लगा। बड़ी मुश्किल से वह फिर खड़ी हुई। सज्जन पदमड़ी पर बैठा और पहली ऊँटनी को जल्दी चलने के लिए उत्तेजित करने लगा।

सज्जन समझ गया कि यह ज़िद ऊँटनी की न होकर सोनिया की थी। ऊँटनी तो केवल मालिक की अनकही आज्ञा का ही पालन कर रही थी।

'सोनिया, तू पदमड़ी पर बैठ, मैं तेरी ऊँटनी पर बैठता हूँ। देखूँ कैसे नहीं चलती!'

'नहीं, नहीं बापू, यह चली,' कहकर सोनिया ने ऊँटनी को तेज़ी से दौड़ाया। सज्जन पीछे रह गया, परन्तु थोड़ी ही देर में उसे पकड़ लिया। सज्जन की ऊँटनी तेज़ हो गई थी, इसलिए सज्जन फिर आगे निकल गया। तुरन्त ही सोनिया की ऊँटनी धीमी पड़ गई।

'चल, जल्दी चल,' उसने पीछे देखकर कहा, लेकिन ऊँटनी आड़ी होकर खड़ी थी। सज्जन को अपने ऊपर काबू न रहा। उसने पीछे देखकर सोनिया को दो-चार डण्डे जमाए।

'हरामखोर, तू ही नहीं आना चाहता।'

'नहीं बापा, नहीं बापा,' कहकर सोनिया ने ऊँटनी को मारा। ऊँटनी कूदकर खड़ी हो गई और एकदम पीछे मुड़कर चारों पैरों से उछलती रणथम्भी माता की ओर उलटी दौड़ी। उसकी चाल पदमड़ी को भी थका देने वाली थी।

दूर जाने पर सोनिया और ऊँटनी एक छोटे उड़ते हुए काले धब्बे के समान दिखाई देते थे और सज्जन भौंहों को मिलाकर उस धब्बे को देख रहा था। पीछे लौटकर सोनिया को दण्ड देने का उसका मन तो हुआ पर उसने उसे रोक लिया।

'पदमड़ी बहू, बेटा, शंकर बाबा का काम अब अपने ही हाथ में है।'

आया। फिर सुलतान द्वारा पूछे गए सवालों और सामन्त द्वारा दिये गए जवाबों का उल्था करता गया।

'तू कहाँ से आया है?'

'झालोर और मारवाड़ के रास्ते पर से।'

'किसने भेजा है?'

'मुलतान के मुखिया ने।'

'क्या सन्देश लाया है?'

'मुझे कहा गया है कि वह सन्देश मैं केवल अमीर से ही कहूँ,' सामन्त ने सुलतान पर एकाग्र और स्वस्थ दृष्टि डालते हुए कहा।

'मुखिया कहाँ है?' तिलक ने पूछा।

'इन सबके सामने बताऊँ?'

'हाँ, जहाँपनाह का फरमान है।'

'मुखिया इस संसार को छोड़कर चला गया।'

'क्या?' एक नहीं अनेक सरदार मर्यादा छोड़कर बोल पड़े। सुलतान कुछ आगे आया और उसने क्षुब्ध स्वर में पूछा, 'कहाँ? कब? किसके हाथ से?'

'वह मरा झालोर के रास्ते में। आज बीस दिन हो गए। हिन्दू योद्धाओं के हाथों से,' सामन्त ने सक्षेप में उत्तर दिया।

'इसका क्या प्रमाण है कि तू सच कहता है?'

सामन्त ने म्यान में से मुखिया की हीरा-जड़ी कटार निकालकर पास खड़े मसूद को पकड़ा दी। 'यह रही उसकी कटार, यही मेरा प्रमाण है,' उसने कहा।

मसूद नीचे झुका तथा तिलक के पास आया और दोनों कटार की जाँच करने बैठे। दोनों ने एक साथ फैसला किया और कहा, 'जहाँपनाह, यह उसीका खंजर है और यह वही है, जिसे आपने उसे इनाम मे दिया था।' सुलतान स्तब्ध हो गया और वह किंकर्तव्यविमूढ़ बनकर, स्वस्थ और निडर सामन्त का मुख देखने लगे। कुछ देर तक कोई नहीं बोला।

'तू किस जाति का है?' सुलतान के कहने से तिलक ने

दूसरा और तीसरा दिन भी अच्छा बीता। पदमड़ी में रास्ता खोज निकालने की अद्भुत दृष्टि थी और थोड़े ही समय में विश्राम लेने का स्थान तो आ ही जाता था, जहां पानी और चारा दोनों चीजें मिल जाती थीं। चौथे दिन दोपहर को ऐसा लगा जैसे पदमड़ी थक गई हो। सूर्य की धूप अधिक प्रखर होती गई। रेत के बगूले चारों तरफ़ उड़ने लगे। रास्ते में छाया का नामोनिशान तक नहीं मिलता था। घड़ियाँ बीत गईं, पर कोई भी पक्षी उड़ता हुआ नहीं दिखाई दिया।

रेत में चारों ओर सूर्य की धूप चमक रही थी और सज्जन की आंखों में चकाचौंध पैदा कर रही थी। उसके शरीर पर पसीने की धारा बहने लगी, भट्टी जैसी लू चलने लगी और हृदय में अनेक संशय होने लगे। क्या यह रास्ता सीधा था? रास्ते में विश्राम-स्थल या पानी न मिला तो क्या होगा? लेकिन वह तो महादेवजी की आज्ञापालन करने आया था। चौहानों को सदैव महादेवजी का भरोसा था। वह म्लेच्छ को रोकने जा रहा था। उसमें उसे पीछे हटने की क्या आवश्यकता थी? 'जब मेरा भोलादेव बैठा है तब भय किसका है, पदमड़ी बहू?'

लेकिन आज पदमड़ी बेचैन थी और उसकी चाल में पहली जैसी स्फूर्ति न थी।

'पदमड़ी, देख, तू हार खा रही है!' सज्जन ने उससे कहा।

पदमड़ी ने फुरफुराहट की, लेकिन उसमें पहले जैसा उत्साह नहीं था। सज्जन ने उसे बिठाकर पानी पिलाया और उसकी गरदन से लिपटकर अपने शरीर द्वारा उसकी आंखों पर तब तक छाया की जब तक कि सूर्य अस्त होने को हुआ। सन्ध्या समय पदमड़ी कुछ ताजी हुई और जब सज्जन ने फिर कूच किया तब ठण्डी हवा चलने लगी थी और उसका उत्साह पूर्ववत् हो गया था। लेकिन रात अँधेरी थी इस कारण पदमड़ी बड़ी मंजिल तय न कर सकी और पीछे जब चन्द्रमा उदय हुआ तो कुछ रास्ता कट गया।

: २ :

पांचवें दिन जब से सूर्य निकला तभी से गरम हवा चलने लगी और जैसे ही दिन चढ़ा कि वह बवंडर में बदलने लगी। रेत के बगूले,

से परिपूर्ण करुण स्वर निकलने लगा। 'तिलक, इससे कह,' सुलतान ने जवाब दिया, 'कि ऐसा वीर मुलतान महमूद ने अपनी सारी उम्र में नहीं देखा। वह अकेला हमें रेगिस्तान में भटकाकर ले गया और आज मेरे दस हजार मृत योद्धाओं के बीच प्रतिकार के देवता के समान दृढ़ खड़ा हुआ है।'

'धन्य है, धन्य है!' नन्दिदत्त बड़बडाया और उसकी आंख से एक हर्ष और एक गर्व का बिन्दु गिर पड़ा।

'मेरे दादा को मारा, मेरे कुल को मारा, मेरे पिता को मारा,' सामन्त ने स्वस्थता से पूछा, 'मुझे कब मारता है?'

महमूद जैसा शूर है वैसे ही शूरों की कद्र भी करता है। 'जा, मैं तुझे छोड़ता हूँ। लेकिन छोकरे, अल्लाह तो मेरी तरफ़ है।'

इन शब्दों का अनुवाद सुनते ही घोघाबापा के वंशज की आँखों में क्रोध उतर आया। उसने उग्रता से कहा, 'अमीर, जब तक विश्वसंहारक मेरा देवाधिदेव बैठा है तब तक तुम्हारा बड़प्पन कैसा?'

जवाब में सुलतान हँसा, 'मसूद, इस छोकरे और इस बुड्ढे को ले जा। इनको बढ़िया-से-बढ़िया ऊँटनी दे और दस दिन का खाना तथा चारा-पानी दे। और इसे छोड दे ताकि यह जहाँ जाना चाहे वहाँ चला जाए।' और सरदारों की ओर मुड़कर बोला, 'जब तक मेरा अल्लाह मेरे साथ है तब तक ऐसे बहादुर दुश्मनों की तो मैं रोज लगन लगाता रहता हूँ।'

और एक भव्य अभिनय से अपने दुर्जेय गौरव को सिद्ध करके उसने मसूद से कड़ाई के साथ कहा, 'मसूद, इसका बाल भी बाँका करने वाले का सिर धड़ से अलग कर देना।'

मसूद सामन्त और नन्दिदत्त को बाहर ले आया और सुलतान सरदारों की ओर मुड़ा। वह ऐसा कच्चा न था कि इतने सुन्दर प्रसग को खो देता। 'मेरे मित्रो,' उसने प्रेमपूर्वक सबसे कहा, 'अल्लाह ने मुझे आज फिर से जिन्दगी देकर यह बताया है कि फ़तह हमेशा हमारी ही होगी। हमारे पीछे रावलसन और उसकी सेना है। यदि इस छोकरे की बात सही है तो आगे झालोर, मारवाड़ और गुजरात की फौज है।

दूसरा और तीसरा दिन भी अच्छा बीता। पदमड़ी में रास्ता खोज निकालने की अद्भुत दृष्टि थी और थोड़े ही समय में विश्राम लेने का स्थान तो आ ही जाता था, जहाँ पानी और चारा दोनों चीज़ें मिल जाती थीं। चौथे दिन दोपहर को ऐसा लगा जैसे पदमड़ी थक गई हो। सूर्य की धूप अधिक प्रखर होती गई। रेत के बगूले चारों तरफ़ उड़ने लगे। रास्ते में छाया का नामोनिशान तक नहीं मिलता था। घड़ियाँ बीत गईं, पर कोई भी पक्षी उड़ता हुआ नहीं दिखाई दिया।

रेत में चारों ओर सूर्य की धूप चमक रही थी और सज्जन की आँखों में चकाचौंध पैदा कर रही थी। उसके शरीर पर पसीने की धारा बहने लगी, भट्टी जैसी लू चलने लगी और हृदय में अनेक संशय होने लगे। क्या यह रास्ता सीधा था? रास्ते में विश्राम-स्थल या पानी न मिला तो क्या होगा? लेकिन वह तो महादेवजी की आज्ञापालन करने आया था। चौहानों को सदैव महादेवजी का भरोसा था। वह म्लेच्छ को रोकने जा रहा था। उसमें उसे पीछे हटने की क्या आवश्यकता थी? 'जब मेरा भोलादेव बैठा है तब भय किसका है, पदमड़ी बहू?'

लेकिन आज पदमड़ी बेचैन थी और उसकी चाल में पहली जैसी स्फूर्ति न थी।

'पदमड़ी, देख, तू हार खा रही है!' सज्जन ने उससे कहा।

पदमड़ी ने फुरफुराहट की, लेकिन उसमें पहले जैसा उत्साह नहीं था। सज्जन ने उसे बिठाकर पानी पिलाया और उसकी गरदन से लिपटकर अपने शरीर द्वारा उसकी आँखों पर तब तक छाया की जब तक कि सूर्य अस्त होने को हुआ। सन्ध्या समय पदमड़ी कुछ ताज़ी हुई और जब सज्जन ने फिर कूच किया तब ठण्डी हवा चलने लगी थी और उसका उत्साह पूर्ववत् हो गया था। लेकिन रात अँधेरी थी इस कारण पदमड़ी बड़ी मंज़िल तय न कर सकी और पीछे जब चन्द्रमा उदय हुआ तो कुछ रास्ता कट गया।

: २ :

पाँचवें दिन जब से सूर्य निकला तभी से गरम हवा चलने लगी और जैसे ही दिन चढ़ा कि वह बवंडर में बदलने लगी। रेत के बगूले,

अरजन हँसा।

'दुर्गपाल', युवक ने कहा, 'पागल मत बनो। गजनी का अमीर कौन है, इसका पता है? वह दावानल है। दस दिन में आ जाएगा और सब-कुछ जलाकर भस्म कर देगा। जैसे बने वैसे जल्दी जंगल में भाग जाओ।'

'छोकरे,' दुर्गपाल ने तिरस्कार से कहा, 'हम लोग दुर्गपाल हैं, तुम्हारे जैसे कायर नहीं हैं।'

युवक हँसा—कर्कशता से, बुरी तरह। दुर्गपाल अरजन को कँपकँपी आ गई। यह मनुष्य है या भूत?

'कायर? मैं?' युवक फिर हँसा। भयंकर आवाज में उसने प्रश्न किया, 'घोघाबापा का नाम सुना है?'

दुर्गपाल अरजन घोघाबापा का परम भक्त था। रेगिस्तान के सिरे पर रहने वाले इस चौकीदार ने उस राजा की अनेक दन्तकथाएँ सुनाते-सुनाते अपना जीवन बिताया था। वर्षों पहले मूलराज देव के समय में वह उनसे मिला था, इसलिए उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध होने का दावा भी करता था। अब तो दुर्गपाल का स्मरण-पट एकदम स्वच्छ हो गया। युवक घोघाबापा का चित्र उस पर ऐसा उतरा जैसा कि पचास वर्ष पहले देखा था।...और वह थर-थर काँपने लगा। यही वह भाल है, यही वे आँखें हैं, और यही वे मूँछें हैं। यह घोघाबापा का भूत! घोघाबापा! तुम भी, बापा!' हाथ जोड़कर दुर्गपाल ने कहा, 'बापा!'

युवक उसी प्रकार हँसा जैसे परलोकवासी म्लान मुख से हँसता है।

'घोघाबापा मारे गए गजनी के अमीर के हाथों, और वह चढ़ा आ रहा है चारों ओर प्रलय मचाता हुआ सोमनाथ भगवान् को तोड़ने। तुम मर जाओगे पर उसे रोक न सकोगे। जंगल में घुस जाओ और यदि जीते बचो तो पीछे से परेशान करना।'

'बापा, परन्तु तुम कहाँ जाते हो?'

'प्रभास, सोमनाथ की रक्षा करने, चलो जल्दी करो।'

दुर्गपाल को यह विश्वास हो गया था कि यह घोघाबापा का भूत था, इसलिए उससे अधिक बोलने की हिम्मत नहीं रही।

दी थी।

'भोलानाथ, जो तू करता है अच्छा करता है,' सज्जन बड़बड़ाया और लड़के को साथ न लाने की बुद्धिमानी पर आनन्दित होने के अतिरिक्त और कुछ न सोच सका। दो-तीन बार पदमड़ी पूर्व की ओर तेज़ी से दौड़ी तो उसे इस विचित्रता का रहस्य समझ में आया; उसे अपने पीछे क्षितिज से उत्तर और पश्चिम की ओर से रेत के वगूले उड़ते जान पड़े।

'अरे वाप रे! जीती रह पदमड़ी वहू, तूने तो मुझे जीता वचा लिया,' कहकर उसने पदमड़ी को थपथपाकर अपना प्रेम जताया।

जैसे-जैसे सूर्य ऊँचा चढ़ने लगा वैसे रेत के वगूले अधिकाधिक ऊँचे उड़ते दिखाई दिए और पदमड़ी जान लेकर पूर्व की ओर भागने लगी। सज्जन ने भी अपनी जान पदमड़ी को सौंप दी। ऊँटनी की तेज़ी के सिवाय इस पीछे चले आते तूफ़ान से वचने का और कोई दूसरा उपाय नहीं था। प्रभास से निकले आज वारहवाँ दिन था, तो भी थकी हुई ऊंटनी नये वल से भागने लगी। रेगिस्तान की जानकार होने के कारण वह उसके भय को भी अच्छी तरह जानती थी। जैसे वादल घिरते हैं वैसे ही उसके पीछे रेत के वगूले उड़ते, वढ़ते, आकाश में छाते, उसकी ओर चले आ रहे थे।

सज्जन का साहसी हृदय आशा खो वैठा। पदमड़ी कितना भागेगी, कहाँ भागेगी? आगे निःसीम रेत का ढेर, पीछे यमराज के समान आगे वढ़ती प्राण-लेवा आँधी—इन दोनों के वीच मृत्यु निश्चित जान पड़ी। सूर्य मध्याह्न में आया, सामने का चमकता हुआ रेत आँखों को अन्धा करने लगा, पवन ज्वालामय हुआ और इतना होने पर भी कुलीन पदमड़ी विना खाने-पीने और विश्राम की चिन्ता किये चौमासे के पानी की तरह आगे वढ़ने लगी।

पीछे देखा तो आँधी आगे ही वढ़ती चली आ रही थी। एक वार तो रेत के वड़े ववण्डर में फँसती हुई पदमड़ी दक्षिण की ओर भागी, लेकिन उधर भी मृत्यु सामने आती दिखाई दी।

सहसा चारों ओर का रेत सजीव-सा होकर उड़ने और चक्कर खाने

सर्वज्ञ मन्दिर में जाने के लिए तैयार हुए, खड़ाऊँ पहनी और जैसे ही एक पग रखा वैसे ही एक शिष्य वहाँ आया और बोला, 'गुरुदेव, कोई आया है।'

सर्वज्ञ के ले आने की आज्ञा देने से पहले ही वह आगन्तुक तेजी से भीतर आया। प्रेत जैसा विवर्ण, बड़ी और स्थिर आँखों से भयानक आगन्तुक पैरों पड़ा।

'नम: शिवाय,' उसने हाँपते हुए कहा।

'शिवाय नमः,' सर्वज्ञ ने आशीर्वाद दिया, 'उठ बेटा, कौन है ?'

आगन्तुक खड़ा हुआ। उसके कपाल पर भयंकर रेखाएँ थीं।

'गुरुदेव ! मुझे नहीं पहचानते ?' उसके शब्दों में आँसू थे। सर्वज्ञ ने पूँछ पहचानकर बिल्वपत्र और पात्र शिष्य के हाथ में दे दिये। 'कौन ? सज्जन चौहान का पुत्र ? यहाँ कहाँ से ?'

'गुरुदेव, मैं ही हूँ।' सामन्त ने सिसकी रोकते हुए काँपते होंठों से कहा। गंग सर्वज्ञ ने अपार ममता से बालक के कन्धे पर हाथ रखा और उसे मण्ड में ले आए।

'किसीको आने न देना,' सर्वज्ञ ने शिष्य को आज्ञा दी। उन्होंने सामन्त को ले जाकर बिठाया और सामने स्वयं बैठे। 'वत्स, सज्जन चौहान कहाँ है ? घोघाराणा कहाँ है ? तू लौट कैसे आया ?' उन्होंने आतुरता से पूछा।

'गुरुदेव,' सामन्त टूटी आवाज में बोलने लगा और उसकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। 'आपने कहा था कि जब तक [illegible]-राणा के कुल में एक भी वीर जीवित रहे तब तक उसके [illegible] लेना, गुरुदेव, मुझे छोड़कर उन सबने—' [illegible] ने कहा, '[illegible] का पालन किया ?'

'कैसे ?' उदास होकर गंग सर्वज्ञ ने [illegible]।

'घोघाबापा और उनका समस्त [illegible] के [illegible] गया। मेरे बापू—' सामन्त फिर रो [illegible] हजार योद्धाओं को रेगिस्तान में [illegible] सिसकने लगा और गंग सर्वज्ञ ने [illegible]

ो वह जीता न बचता।
ाज वह भी बहुत थक गया था, इसलिए वह पदमड़ी के पास
हो गया और सारी चिन्ता भोला शम्भु पर छोड़कर खुर्राटे भरने
।

: ३ :

सज्जन ने पहले तो यह अनुमान किया था कि उत्तर दिशा में सीधे
ते हुए घोघागढ़ अवश्य आएगा, लेकिन आँधी के कारण वह उस
मय कहाँ था इसका उसे तनिक भी ध्यान न रहा। ऐसे आवश्यक
ाम के समय उसने अपरिचित मार्ग से आने की मूर्खता क्यों की?
सपादलक्ष का रास्ता कौन-सा है? सुरसागर कहाँ है? और झालोर किस
ओर है?

अपने भोलानाथ में उसकी अचल श्रद्धा थी, इसलिए उसे इस बात का विश्वास था कि इसका परिणाम अवश्य सुन्दर निकलेगा। घोघा-बापा ने कितनी ही बार ऐसे संकटों को झेला था और अब पुत्र-परिवार से संवृत्त वे शान्त और गौरवमय, वृद्धावस्था के किनारे बैठे हुए, किये हुए पराक्रमों के कीर्तिगान गाते थे। वैसे ही वह स्वयं भी कभी घोघा-गढ़ में बैठकर अपने परिवार को इस पदमड़ी की यशोगाथा सुनाएगा और तब उस समय के सामान्य वीर इस बात पर विश्वास भी नहीं करेंगे कि कोई ऐसे पराक्रम भी दिखा सकता होगा। उसने गर्व से मूंछों पर हाथ फेरा। घोघाबापा के यौवन के पराक्रमों का वर्णन जैसे चारण करते थे, वैसा ही उसका आज का पराक्रम था।

सामन्त तो झालोर पहुँच चुका होगा; हमारे पहुँचने के आठ दिन बाद वह आएगा और इस पितृभक्त पुत्र का हृदय भी कितना ऊँच होगा। उसके बाद सामन्त की माँ के पास बैठकर बाप और बेटा एक दूसरे के प्रेम में मग्न बार-बार इन प्रसंगों को कहकर सुनाएँगे।

—और सामन्त की माँ भी सच्ची चौहान वधू थी। इससे क पराक्रम किया होता तो वह राज़ी न होती।

—और घोघाबापा का तो वह लाड़ला पौत्र था। वे सदैव करते थे कि सज्जन की उम्र में वे सज्जन जैसे ही लगते थे और वह

लेकर कल सवेरे पाटन जा। सोमदेव और मेहता के साथ मन्त्रणा कर। देख, वे क्या कहते हैं।'

'अच्छा, आज की रात यहीं विश्राम करूँगा और कल सवेरे चला जाऊँगा।'

'अच्छा तो फिर मिलना। मैं दोबारा स्नान कर लूँ; मुझे भगवान् पर बिल्वपत्र चढ़ाने जाना है।'

पिछले चार महीने में पड़े हुए दुःख और देखी हुई दुर्दशा ने सामन्त के सिर पर अनेक वर्षों का भार रख दिया था। उसने अपने पूज्य पूर्वजों, गुरुजनों और माताओं, भाइयों और बहनों को मरते, जलते, गिद्धों का भक्ष्य होते देखा। उसने अपने प्रिय पिता को भी देवों के लिए दुर्लभ मृत्यु को प्यार से गले लगाते देखा। समस्त विश्व में गर्वीले घोघाकुल में अकेला वह रह गया था। उसके लिए न घर था न बाहर, न स्वजन थे न शान्ति। वह भगवान् सोमनाथ की आज्ञा के लिए ही जी रहा था। म्लेच्छ-सिर को छेदने के अतिरिक्त उसके जीवन का अन्य कोई प्रयोजन न था। यदि ऐसा न होता तो सबके मरने पर अकेला जीवित कैसे रह सकता था।

जब वह सर्वज्ञ के यहाँ से निकला तब यही विचार कर रहा था। सर्वज्ञ की आत्म-श्रद्धा और दृढ़ता से उसकी श्रद्धा को भी बल मिला। आज और प्रभात के बीच क्या हो और क्या न हो? कौन कह सकता है कि जो प्रतापी सर्वज्ञ भूत और भविष्य को जानता था उसकी दृष्टि भ्रमपूर्ण थी?

वह मन्दिर की ओर मुड़ा और उसके विचारों में मानुषी तत्त्व आया। सोमनाथ के मन्दिर से ही यह उसका सम्बन्ध था। उसके देव, उसके बाबा के गुरुदेव और प्रिय नर्तकी ने उसको तथा उसके पिता को तिलक लगाकर कहा था कि 'विजय करके शीघ्र लौटना,' उसकी स्मृति, उसके शब्द उसे प्रतिदिन याद आते थे और उसके जीवन में परिव्याप्त हो रहे थे। यह तो इधर-उधर भटकता शरीर के प्राण लेने जाने वाला था। उसे अपने भाग्य में दोबारा भगवान् के मन्दिर में पग रखना भी नहीं दिखाई दिया। होनहार उसे यहाँ ले आई है तो वह क्यों

आता दिखाई दिया। उसके प्राणों को अब चिन्ता नहीं थी। गजनी का म्लेच्छ तो न जाने कहाँ होगा ? घोघाबापा से निपटना कोई सरल बात न थी। रास्ते में दूसरे राजाओं को भी वह चेताता जाएगा। भगवान् सोमनाथ से वैर करने वाला रेगिस्तान को पार करके कैसे आ सकता है !

जब रेगिस्तान में आये ग्यारहवाँ और प्रभास से चले अठारहवाँ दिन शुरू हुआ तब रेगिस्तान के बीच आने वाले पेड़ दिखाई देने लगे। उसे लगा कि वह सपादलक्ष की ओर जा रहा है। इस रास्ते जाते हुए पदमड़ी ने अस्वाभाविक और अकल्पनीय चीख मारी। सज्जन ने चारों ओर ध्यान से देखा तो एक के बाद एक तीन काले और छोटे बादल घिरते हुए दिखाई दिए। देखते-देखते पहले तो ऐसा लगा कि ये बादल न होकर काले और बड़े पक्षियों के झुण्ड थे, लेकिन क्षण-भर में ही जब हजारों गिद्धों के ये तीन समूह भयंकर चीख मारते उसे पार करके पूर्व की ओर चले गए तब उसके क्षोभ की सीमा न रही। उसका हृदय धड़कने लगा। उसने युद्ध-क्षेत्र में लड़ाई के दूसरे दिन इतने गिद्ध अवश्य देखे थे। उसे छोड़कर उसने कभी नहीं देखे थे। निश्चय ही क्या किसी निकट स्थान में युद्ध हो चुका है ? क्या गजनी का अमीर मुलतान और घोघा-गढ़ पार करके सपादलक्ष के सामने युद्ध कर चुका है ? दूर जाते हुए गिद्धों के व्यूह की चीखों की भयंकर प्रतिध्वनि उसके कान में पड़ी और उसे अपशकुन हुए।

'पदमड़ी वह, प्राण-लेवा युद्ध हो रहा है, समझी !'

पदमड़ी समझ गई; जिस दिशा में गिद्ध गये थे, उसी दिशा में वह भी तेजी से चलने लगी।

: ४ :

कुछ समय बीता और पदमड़ी ने फिर ऐसी चीख मारी, जिसमें भय का अर्थसूचक कम्पन था। 'क्या है ? क्या है पदमड़ी ? घबराती क्यों है ?' कहकर सज्जन ने उसे थपथपाया। कुछ देर बाद जब सड़ते हुए मुर्दे की दुर्गन्ध सज्जन की नाक में आई तो उसे उस चीख का कारण मालूम हुआ।

पदमड़ी एक टीले पर चढ़ी और रुककर थर-थर काँपने लगी।

'राख के सिवा और कुछ नहीं था। उनकी आँखें लाल सुर्ख थीं और वे कुछ अस्पष्ट मन्त्र पढ़ रहे थे।

जिस साधु ने दरवाजा खोला था उसने भीत में खुँसी हुई एक मशाल निकालकर सामन्त के आगे रखी और पूछा, 'तू कौन है ?'

'चौहान हूँ।'

'महाशक्ति का भक्त है ?'

'मैं भगवान् सोमनाथ और जगदम्बा महाशक्ति दोनों का भक्त हूँ।'

'यही, यही वह है जो मेरे स्वप्न में आया था,' कुण्डला ने कहा।

'तेरे हृदय में साहस है ?' दूसरे साधु ने पूछा।

'क्या करने का ?'

'जीते-जी महाशक्ति की दीक्षा लेने का।'

सामन्त ने चारों ओर देखा। कुण्डला उसके पास से हटकर किसी काम में लग गई थी। ऐसा मालूम पड़ता था मानो वह अपने कपड़े उतार रही हो। उसने मशाल द्वारा अस्थिर हो जाने वाले अन्धकार में आँगन के दूसरे कोने के एक दरवाजे से छायाकृतियाँ बाहर जाती हुई देखीं। आकृतियाँ मनुष्यों के शरीर की थीं।

त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर में ली जाने वाली जिन दीक्षाओं की कहानियाँ सामन्त ने सुनी थीं वे उसके मस्तिष्क में ताजी हो गईं। क्या इस मन्दिर की भयानक विधियों के लिए उसे दीक्षा मिल रही थी ? भगवन्! जब अमीर बिना रुके हुए इस मन्दिर का नाश करने चला आरहा था, जब उसका कर्तव्य पाटण की ओर दौड़ती ऊँटनी पर जाने का था, तब वह इस भयंकर पन्थ की दीक्षा लेने चला था!

'बोल, साहस है ?' उस साधु ने पूछा।

'साहस ? साहस नहीं है।'

तीनों साधु एकदम उसकी ओर बढ़े, 'क्या कहा ?'

'त्रिपुर-सुन्दरी की विधियों को पूरा करने के लिए मुझसे दीक्षा नहीं ली जाएगी। मैं इसके योग्य नहीं हूँ।'

'तो यहाँ किसलिए आया ? पापी, अधम!' एक साधु ने ——— की गरदन पकड़ ली। 'महामाया का कोप हुआ तो ?'

जानवर चबा गए थे। तालाब में केवल कीचड़ थी और उसमें चारों तरफ़ जानवरों के नहाने के चिह्न थे। कुएँ में नाम के लिए पानी था। वह विनाशक महासेना इस रास्ते से जाते हुए इस गाँव को श्मशान के समान बना गई थी।

निर्भीक सज्जन भी इस निर्जीव विनाशकता को देखकर काँप उठा। उसे जितना पानी मिल सका, उसे यन्त्र की भाँति निकाला; स्वयं नहाया, पदमड़ी को नहलाया; स्वयं तो न खा सका परन्तु जो पत्ते थे उन पर पदमड़ी को चरने के लिए छोड़ दिया। जब रात हुई तो इस रेतीले प्रदेश की भयंकर निर्जनता ने उसे घबरा दिया। उस भयाकुल ने केवल महादेवजी का नाम अपनी जीभ पर रखकर ही रात काटी।

दूसरे दिन सवेरे जब वह उसी मार्ग से जाने को तैयार हुआ, जिस पर शव पड़े थे, तो उसके मन में इस सबको छोड़कर किसी दूसरे रास्ते से भाग जाने का विचार आया। लेकिन यह भयंकर सेना कैसी औ किसकी है, इसका निश्चय कर लेने का मोह वह न छोड़ सका। घोघाग या सपादलक्ष का क्या हुआ होगा, इसका तो विचार तक करने व इसकी हिम्मत न हुई।

: ५ :

सज्जन चार-छः घड़ी ही आगे बढ़ा होगा कि सामने उड़ते हुए के बगूलों में से ऊँटनियाँ आती जान पड़ीं। पदमड़ी को पीछे मोड़ भागना था, लेकिन देखते-देखते वे ऊँटनियाँ पास आ गईं और म की हुंकार सुनाई दी। सज्जन ने भी हुंकार से जवाब दिया और प को रोक लिया।

ऊँटनियाँ सात थीं। पाँच पर बड़ी-बड़ी विकराल आँखों और वाले तथा अपरिचित शस्त्र और चमड़े की पोशाक पहनने वाले यवन बैठे थे। दो ऊँटनियों पर ऊँट वाले थे। इस टुकड़ी का नायक गोरा और जवान था। उसने कुछ कहा और उन सबने सज्जन लिया।

नायक की आज्ञा से एक ऊँट वाले ने सज्जन से पूछा, 'क्या रास्ते की तुझे खबर है?'

दरवाज़ा—वह दरवाज़ा जिसमें होकर वह सामन्त को अन्दर लाई थी—खटका। शिवराशि आये। हाथ से अवसर निकला जा रहा था; निकल गया तो क्या होगा?

उसने दरवाज़े में झाँककर देखा। शिवराशि और सिद्धेश्वर आ रहे थे। महामाया पर कब तक विश्वास किया जाए? वह स्वयं ही महामाया थी। उसने चीख मारी और अपने माथे पर इस प्रकार हाथ रखा, जैसे उसे चक्कर आ रहा हो। उसके साथ आने वाले साधुओं के हाथों को लम्बा करके सहारा देने से पहले ही वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

साधु यह मानकर कि कुण्डला में त्रिपुर-सुन्दरी उतरी है, सम्मानपूर्वक 'जय जगज्जननी' कहते हुए उसकी सार-सँभाल में लग गए।

शिवराशि के क्रोध की सीमा न थी। वह पैर ठोकता हुआ चौक में आया। उसके साथ उसका विश्वासपात्र सिद्धेश्वर भी था। जीवन में प्रथम बार आज वह गुरुदेव के प्रति श्रद्धा नहीं रख पा रहा था। उसे ऐसा लगा कि गुरुदेव ने आज जो कुछ किया है, उससे दसों दिशाएँ अपवित्र हो गई हैं। लकुलेश-मत के अधिष्ठाता, ज्ञान के समुद्र और रुद्र के अवतार माने जाने वाले गंग सर्वज्ञ ने आज धर्म का नाश किया था। चौला त्रिपुर-सुन्दरी के उत्सव के लिए हर प्रकार से उपयुक्त थी और आज सवेरे त्रिपुर-सुन्दरी उसके शरीर में उतरी भी थी तो भी उसकी पूजा करने की आज्ञा न दी थी।

चौला तो मूर्ख थी, बालक थी। त्रिपुर-सुन्दरी के लिए अपेक्षित वाममार्गीय विधियों से वह बहुत घबराती थी। गत एकादशी तक तो जब-जब उसे इस मन्दिर में लाने की सूचना दी जाती तब-तब उसकी माँ गंगा यह कहकर बात उड़ा देती थी कि वह बालिका है और इन विधियों में भाग लेने योग्य नहीं। परन्तु गत एकादशी को तो उसे भगवान् के मन्दिर में नृत्य करने का अधिकार प्राप्त हो चुका था। अब वह बालिका न थी और फिर आज तो उसके शरीर में जीती-जागती जगदम्बा उतरी थी। जिस अधिकार के लिए नर्तकियाँ मरी मिटती थीं, वह उसे बिना माँगे मिल गया था। वह सवेरे ही बेहोश हो गई थी और फिर यह इस प्रकार बोलने-चालने लगी थी मानो वह स्वयं भगवान् शम्भु

साथ सम्मानपूर्ण बातें करने लगा। लेकिन जब भी वह कोई बात पूछने लगता तभी ऊँट वाला म्लेच्छ नायक से पूछता और उसका जवाब टालने वाला ही मिलता।

अन्त में सज्जन ने एक युक्ति सोची। खा चुकने के बाद उसने कहा, 'अच्छा, अब मैं अपने काम पर जाता हूँ।'

'कहाँ जाना है ?' ऊँट वाले ने म्लेच्छ के साथ मन्त्रणा करके पूछा।

'गजनी के सुलतान के पास।'

म्लेच्छ हँस पड़े। 'उनसे तुम्हें क्या काम है ?'

'मैं आपसे कह नहीं सकता, लेकिन इससे उनका मार्ग सरल हो जाएगा।'

'तुम कौन हो ?'

'मैं रेगिस्तान का पथ-प्रदर्शक हूँ और जाते हुए बटोहियों को रास्ता बताना मेरा काम है।'

जब ऊँट वालों ने यह जवाब यवनों के नायक को समझाया तब यवनों ने बहुत देर तक आपस में बातें कीं और फिर ऊँट वालों को उत्तर दिया, 'हम तुम्हें सुल्तान महमूद के पास पहुँचा देंगे।'

सज्जन की युक्ति सफल हुई, परन्तु जिस भय की उसने कल्पना की थी वह सच निकला। सुलतान मुलतान, नांदोल, सपादलक्ष (अजमेर) से आगे बढ़ गया है। वहाँ के राजाओं का क्या हुआ ?—मर गए ? हार गए ? रास्ता दे बैठे ? घोघागढ़ उसके रास्ते में पड़ा कि नहीं ? यह निश्चय करना था, लेकिन यह प्रश्न पूछने का साहस उसे न हुआ।

: ६ :

सारे दिन दौड़ती ऊँटनियों पर ये लोग आगे बढ़ते गए और जब बिलकुल रात होने को आई तब उनको एक विशाल सेना की छावनी नजर पड़ी। यह केवल छावनी ही न थी, वरन् एक ऐसा महानगर था जैसा कि सज्जन ने कभी नहीं देखा था। स्थान-स्थान पर अलावों का अस्थिर प्रकाश चमक रहा था। हजारों मशालें इधर-से-उधर और उधर-से-इधर फिरती दीखती थीं। इस प्रकाश में जहाँ तक दृष्टि जमती थी वहाँ तक छावनी का विस्तार दिखाई देता था। वहाँ असंख्य मनुष्य,

: २ :

चौला अर्द्धमूर्च्छित थी। उसकी उनींदी आँखें मद-भरी थीं। उसके मुख पर विह्वलता थी। उसके आधे दबे गुलाबी होंठों में से थोड़ी-थोड़ी देर में ये शब्द निकल रहे थे, "मेरे शम्भु, मेरे नाथ!" ऐसी मूर्च्छा उसे अब थोड़ी-थोड़ी देर में आती थी। उस समय वह कल्पनालोक में भीलनी या पार्वती बनकर भगवान् शंकर के साथ कैलाश पर विहार कर रही थी। पास ही चिन्तातुर मुखमुद्रा में गंगा बैठी थी। पहले तो वह यह मानती थी कि चौला पागल होती जा रही है, परन्तु सर्वज्ञ ने उसे विश्वास दिला दिया था कि वह पागलपन नहीं था, वरन् शिव-समर्पण की पराकाष्ठा थी।

इसी बीच जल्दी में तथा उग्र बने हुए शिवराशि और सिद्धेश्वर आये। यह देखकर गंगा चौंकी।

'क्यों, क्या है?' गंगा ने घबराकर पूछा।

'चौला'—परन्तु इससे पहले कि वह कुछ बोले, दूर से गम्भीर शंख-नाद सुनाई दिया और इस आवाज़ के कान में पड़ते ही चौला बिछौने पर उठकर बैठ गई।

'मेरे नाथ का शंखनाद,' वह विह्वल होकर चारों ओर देखने लगी, 'माँ, माँ, मेरे नाथ बुलाते हैं। मुझे ले चल भगवान् के पास। नाथ, प्रभो, मैं आई—यह आई।'

शिवराशि हँसा। वस्तुतः चौला में महामाया उतरी दिखाई देती थी और उसने जिस अवसर का निश्चय किया था वह आ पहुँचा था। 'चौला, ठीक है, तुझे भगवान् बुलाते हैं। मैं तुझे लिवाने आया हूँ।'

चौला तत्काल उठी और अभिसारिका की-सी उत्सुकता से पास आई, 'राशिजी, सचमुच? तो मुझे ले चलो, ले चलो, मुझे मेरे स्वामी को बताओ, मेरे जटाधारी शम्भु को।' आधे दबे होंठ मिलन-लालसा को व्यक्त कर रहे थे। शिवराशि चौला के कन्धे पर हाथ रखकर उसे दरवाज़े की ओर ले जाने लगा।

गंगा ने बीच में आकर कहा, 'राशिजी, यह क्या करते हो? चौला को कहाँ ले जाते हो?'

'तुम्हारी ऊँटनी पीछे तुमको मिल जाएगी,' ऊँट वाले ने नायक की इच्छा उसे बता दी।

'चल मेरे साथ,' नायक ने सज्जन से कहा और वह उसके कथनानुसार पीछे-पीछे चलने लगा। दो आदमी उसके पीछे हो लिये। तीनों उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते जाते थे। उसे विश्वास था कि यदि उसने भागने या तलवार पर हाथ रखने का तनिक भी इरादा किया तो उसका सिर वहीं-का-वहीं धड़ से अलग हो जाएगा।

जिस ओर वे गये उस ओर एक मोटा, सफ़ेद चमड़े का तम्बू था और उसके चारों ओर नंगी तलवारों वाले सैनिकों की एक पंक्ति की बड़ी-सी बाढ़ लगा दी गई थी। उसके पीछे थोड़ी-थोड़ी दूर पर तीरन्दाज़ खड़े थे। इस बाढ़ में जाने के लिए एक ही रास्ता था, जिसमें सैनिकों की पंक्ति के बीच से जाना होता था। नायक उसे इसी रास्ते से ले गया। वह इतना प्रसिद्ध था कि उसे देखते ही सब नीचे झुककर सलाम करते थे। थोड़ी देर में वह तम्बू के आगे जाकर खड़ा हो गया और वहाँ खड़े एक सरदार ने दौड़कर अन्दर उसके आने की खबर दी।

अन्दर से कुछ जवाब आया, जिसे नायक ने अत्यन्त आदर से सलाम के साथ स्वीकार किया। दो राक्षस जैसे भयानक हब्शियों ने कनात को ऊँचा किया और वे तम्बू में घुस गए।

सज्जन ने अनजाने आँखें मलीं और उसे आज के देखे हुए भयानक और असम्भाव्य दृश्यों मे सबसे अद्भुत दृश्य दिखाई दिया। तीस मशालची—लकड़ी की मोटी दीवट की भाँति निश्चल—चाँदी से मढ़ी मशालों द्वारा उस खण्ड को प्रकाशित कर रहे थे। दरवाज़े में घुसते ही दोनों ओर दो-दो राक्षस जैसे हब्शी चौड़ी, अर्द्धचन्द्राकार तलवारें लिये, काले संगमरमर के पुतले के समान खड़े थे। बीच में सुगन्धित तेल वाली एक बड़ी बत्ती जल रही थी।

खण्ड के दूसरे सिरे पर बाघ और हरिण आदि जानवरों के चमड़े के गलीचे के ऊपर एक मोटे तकिये के सहारे, एक रौबदार आदमी अपनी लाल और भरी हुई बड़ी दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ बैठा था। उसकी लाल भरावदार भौंहों के नीचे बड़ी विकराल आँखें चमकती हुई

राशिजी अभी-अभी त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर में ले गए हैं। मेरी इस लड़की का क्या होगा?'

गंग सर्वज्ञ की स्वस्थता क्षण-भर को जाती रही। उनकी दृष्टि अनेक वर्षों के तप से विशुद्ध हो गई थी और जब वह छोटे थे तभी से उनको विश्वास हो गया था कि त्रिपुर-सुन्दरी की वाममार्गीय विधियों में अत्याचार और अधमता का अंश है। बहुत वर्ष हुए, उन्होंने इन विधियों का संशोधन करने का प्रयत्न किया था। पूर्ण इच्छा के बिना कोई इनमें दीक्षा न ले, दीक्षित हुए बिना इन्हें कोई देख न सके; स्वयं उनके या शिवराशि के बिना कोई इसका उत्सव न मना सके—इन नियमों को तो उन्होंने पहले ही से लागू कर दिया था। कितने ही वर्षों से तो उन्होंने स्वयं इन विधियों और उत्सवों में भाग लेना बन्द कर

गज़नी की अमीराई छीन ली थी। उसने अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति और अतुल शौर्य के बल पर सल्तनत पाई थी। जिसको वह हाथ लगाता वही शरण में आ जाता, जिसकी वह इच्छा करता वही उसको मिलता। अपने पिता से पथ का पथिक बनकर उसने हिन्द की अपार सम्पत्ति को लूटना शुरू किया। हारा-थका लाहौर तो सहज ही अधीन हो गया; क्षण-भर में मुलतान का पतन हो गया; हिन्दू राजा उसकी कृपा की याचना करने लगे। उसके प्रखर प्रताप के सामने अनेक बार ग्वालियर, कन्नौज, दिल्ली और सपादलक्ष की संयुक्त सेना को नीचा देखना पड़ा। धन के ढेर की भाँति नगरकोट उसने अपने हाथ में ले लिया। उसे मूर्ति-भंजक की अमर कीर्ति प्राप्त करने की लालसा हुई और वह इस्लाम की विजयी शमशीर बना। युग-युग से वैभव की गोद में, खेलने वाले मथुरा के मन्दिरों को उसने भस्मसात् कर दिया। देवों के मुकुटकुण्डल उसकी बेगमों की शोभा बढ़ाते थे। मूर्तिपूजक जिन पण्डितों को पूज्य मानते थे वे गज़नी में गुलाम के रूप में बेचे गए।

उसके शौर्य की सीमा नहीं थी। उसका हृदय उदार था, उसकी कल्पना कवि की थी। उसे कुछ ऐसा करना था, कुछ ऐसी रचना रचनी थी कि जिसका प्रकाश भावी युगों को प्रकाशित करता रहे। मुस्लिमों में श्रेष्ठ खलीफा उमर ने जो कुछ किया था वही करना था। इस्लाम का डंका जगत्-भर में बजाना था। इसके साथ ही वह अपनी ईरानी माता के कलात्मक संस्कारों का धनी था। उसको कविता का शौक था। स्थापत्य द्वारा उसे गज़नी का शृङ्गार करना था, समृद्धि से उसका सिंहासन चमकाना था। उसे दूसरों का दिल जीतना आता था; उसे वीरता की कद्र करना आता था। समस्त जातियों के लिए उसके हृदय में स्थान था—यदि वे उसके सामने न पड़ें तो। मूर्तिपूजा का विरोधी यह वीर मूर्तिपूजकों का प्रशंसक था। जिन राजपूतों का वह संहार करता था, उसके अडिग शौर्य को देखकर वह मुग्ध हो जाता था। उसने अनुपम कौशल के साथ महान् सेना का व्यूह खड़ा किया था, जिसमें काकेशस से लेकर राजपूताना तक के तलवार के धनी शामिल थे। वह प्रचण्ड शस्त्रों को उसी प्रकार चला सकता था जिस प्रकार कोई

'नहीं, नहीं। यह अपनी मरजी से आई,' राशि ने कहा।

'हाँ, हाँ, हाँ।' वृद्ध पुजारी ने आगे आकर समर्थन किया। उसके पास दो-तीन और बाबा भी आकर खड़े हो गए। उनके मुख पर गुरु के प्रति स्पष्ट विरोध झलक रहा था। एक-दो तो हाथ में चिमटा लिये थे। और उनकी खटखटाहट से सर्वज्ञ को डराने का प्रयत्न कर रहे थे।

शान्त और स्वस्थ सर्वज्ञ इन सबको म्लान वदन से देख रहे थे।

'तुम सबने मिलकर आज इस मन्दिर को भ्रष्ट किया है,' सर्वज्ञ ने शान्ति से कहा, 'आँखें हों तो देखो, चौला कितनी लज्जा से, कितने भय से तुम्हारी आकृतियाँ देख रही है। यह महामाया का मन्दिर है, दम्भियों का नहीं, अत्याचारियों का नहीं, विषय-लोलुपों का नहीं। जब तक तुम सब पूरा-पूरा प्रायश्चित्त नहीं करोगे तब तक यह मन्दिर आज से बन्द रहेगा।'

'यह मन्दिर बन्द रहेगा? कौन करेगा?' वृद्ध बाबा ने आगे आकर भयंकर आवाज में पूछा। उसका हाथ चिमटा उठाने के लिए तरस रहा था, यह भी स्पष्ट दिखाई देता था।

गुरुदेव खिलखिलाकर हँस पड़े, 'कौन करेगा? मैं स्वयं—[illegible] लकुलेश के सम्प्रदाय के अधिष्ठाता के अधिकार से।'

'ताकत है आपमें?' वृद्ध बाबा ने हाथ उठाया और [illegible] ही उसका हाथ पकड़ने दौड़ा।

'सामन्त, दूर हट', शान्ति से गुरुदेव ने कहा, '[illegible] चाहता है? ले यह मस्तक अपने गुरु का। अपनी [illegible]' कहकर गुरुदेव ने मस्तक झुका दिया।

वृद्ध बाबा की आँखें आकुल-व्याकुल हो [illegible] छूट गया और वह पृथ्वी पर पछाड़ खाकर [illegible] पगों में लोटकर सैकड़ों वर्ष से बन्द न हुए [illegible] गर्भद्वार को बन्द कर दिया।

'तुम्हारे पाप के संचय से [illegible] दानव के समान शरीर इस [illegible] जब तक प्रायश्चित्त से तुम [illegible]

कोई सवाल पूछा और अलउत्वी ने उसका जवाव दिया।

'कहाँ से आये ?'

'अनहिलवाड़ पाटण से।'

'कितने दिन पहले चले थे ?'

'पन्द्रह दिन पहले।'

'क्या ?' संवेदराय ने विस्मय से पूछा।

'हाँ।'

'किस रास्ते से ?'

'इसी रेगिस्तानी रास्ते से, जिसका मुझे पता है।'

'वीच में कौन-सा गढ़ आता है ?'

'गढ़ पर होकर आया जाए तो दो महीने लगें। मेरा रास्ता तो आवू पर्वत से सीधा अनहिलवाड़ जाने का है।'

'रास्ते में विश्राम-स्थल हैं ?'

'नहीं होते तो मैं अकेला कैसे आ पाता ?'

'इस समय हम कहाँ हैं ?'

'आप लोग प्रधान मार्ग से वहुत दूर हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि आप लोग उसे क्यों छोड़ आए।'

'प्रधान मार्ग कितनी दूर है ?'

'इस पूरी फौज को जाने में आठ-दस दिन तो सहज में लग जाएँगे और मेवाड़, झालोर, गुजरात तथा मालवा के राजा वीच में मिलेंगे सो अलग।'

'यह तुमने कैसे जाना ?'

'मैं सव जानता हूँ। सवा लाख राजपूत आपका मार्ग रोके खड़े हैं।'

'जिस रास्ते से तू आया है क्या वह हमें वताएगा ?' संवेदराय ने पूछा।

'हाँ, यदि मुझे मेरी ऊँटनी दे दो तो।'

'कहाँ है ?'

'वह ले गया है,' कहकर सज्जन ने मसूद की ओर संकेत किया।

इसके वाद संवेदराय और अलउत्वी सुलतान के पास गये और वड़ी

तक सोमनाथ की रक्षा करना प्रत्येक का परम मनोरथ हो गया; और बाणावली भीमदेव महाराज को इस मनोरथ को सिद्ध करने का साधन ठहराया गया। पाटण स्वधर्म-रक्षा और स्वाधीनता की अमर मूर्ति बना। एक वीर की आज्ञा, एक नगर का प्रेम और आक्रमण का विरोध करने के लिए एकाग्र चिन्ता—इन तीनों ने मिलकर गुजरात की एकता और पाटण की महत्ता को स्थापित किया।

भीम सबके बीच बिजली की तरह चमकता। किसी स्थान पर वह वीरता जगाता तो किसी स्थान पर भयंकर क्रोध से शिथिलता को दबाता। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में युयुत्सा की अग्नि सदैव प्रज्वलित रहती। कितनी ही बार वह घोड़े पर चढ़कर आसपास चक्कर लगाता और उत्साह की चिनगारी रख आता। बहुत बार सैनिकों की व्यूह-रचना में व्यस्त हो जाता। उसने गाँव-गाँव में ढिंढोरा पिटवा दिया था कि हर आदमी को यवनों का सामना करने पहुँचना है। इस निमन्त्रण से आकर्षित होकर नित्यप्रति योजनों दूर से शूरवीर समरांगण महोत्सव मनाने आ पहुँचते। इन सबको शस्त्र-सज्जित करने, उनको विविध आयुधों का उपयोग सिखाने, उनको टुकड़ियों में बाँटने, उनकी हर आवश्यकता-पूर्ति की योजनाएँ बनाने और कोट के कंगूरों को सुरक्षित रखने के काम में भीमदेव और विमल मन्त्री रात-दिन लगे रहते।

इस उत्साह की बातें घर-घर होने लगीं। उसकी प्रेरणा से घर-घर वीरों को विदा दी जाने लगी। उत्साहपूर्ण युवकों की छाती चौड़ी हो रही थी, वीरांगनाएँ भय से धड़कते हृदय से कुंकुम-केसर से तिलक करतीं। यवनों के आक्रमण को रोकने में तत्पर अप्रतिरथ भीम की दस्त-कथा सुनकर युद्धोत्साह का उदधि उछला और इस सागर के मन्थन के लिए वह सुमेरु पर्वत के समान हँसते हुए मुख और श्रद्धालु हृदय से बीच में घूमने लगा।

राजगढ़ की एक छोटी-सी कोठरी में दामोदर मेहता बैठे थे। कितने ही दिनों से उनकी आँखों में नींद नहीं आई थी। उनके पास अमीर की विजय-यात्रा की खबर आती थी और उनकी चिन्ता बढ़ती थी। उन्होंने सबसे पहले पाटण के वृद्धों, स्त्रियों और बालकों को पावागढ़

कोई सवाल पूछा और अलउत्बी ने उसका जवाब दिया।

'कहाँ से आये ?'

'अनहिलवाड़ पाटण से।'

'कितने दिन पहले चले थे ?'

'पन्द्रह दिन पहले।'

'क्या ?' संवेदराय ने विस्मय से पूछा।

'हाँ।'

'किस रास्ते से ?'

'इसी रेगिस्तानी रास्ते से, जिसका मुझे पता है।'

'बीच में कौन-सा गढ़ आता है ?'

'गढ़ पर होकर आया जाए तो दो महीने लगें। मेरा रास्ता तो आबू पर्वत से सीधा अनहिलवाड़ जाने का है।'

'रास्ते में विश्राम-स्थल हैं ?'

'नहीं होते तो मैं अकेला कैसे आ पाता ?'

'इस समय हम कहाँ हैं ?'

'आप लोग प्रधान मार्ग से बहुत दूर हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि आप लोग उसे क्यों छोड़ आए।'

'प्रधान मार्ग कितनी दूर है ?'

'इस पूरी फौज को जाने में आठ-दस दिन तो सहज में लग जाएँगे और मेवाड़, झालोर, गुजरात तथा मालवा के राजा बीच में मिलेंगे सो अलग।'

'यह तुमने कैसे जाना ?'

'मैं सब जानता हूँ। सवा लाख राजपूत आपका मार्ग रोके खड़े हैं।'

'जिस रास्ते से तू आया है क्या वह हमें बताएगा ?' संवेदराय ने पूछा।

'हाँ, यदि मुझे मेरी ऊँटनी दे दो तो।'

'कहाँ है ?'

'वह ले गया है,' कहकर सज्जन ने मसूद की ओर संकेत किया।

इसके बाद संवेदराय और अलउत्बी सुलतान के पास गये और बड़ी

गए। सैनिक तितर-बितर हो गए। घोघाबापा के भूत के साथ खड़े होने की हिम्मत किसी में न थी। युवक धीमे-धीमे उसके पीछे गया।

: ४ :

राजगढ़ के सभाभवन में सब लोग विचार करने के लिए इकट्ठे हुए थे। बीच में गद्दी पर स्वयं बाणावली बैठे थे—मूंछों पर ताव देते हुए। उनकी दाईं ओर जूनागढ़ के राय रत्नादित्य थे—अधेड़ उम्र के, विशाल-बाहु, नर-शार्दूल, जो पुराने वैर को भुलाकर मूलराजदेव के वंशज के दाएँ हाथ बने थे। उनके पास कच्छ के वृद्ध वीर बन्धुवर कमा लखाणी बैठे थे। उनकी सफेद भरी हुई दाढ़ी के बीच उनका झुर्रीदार मुंह अनेक दशकों के अनुभव की साक्षी दे रहा था। यद्यपि वे एक आँख से काने थे तथापि उनकी अच्छी आँख दूसरे आदमियों की दो आँखों की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण और दीर्घदर्शी थी। भीमदेव महाराज की बाईं ओर भरुच के राजाओं का वंशज दद्दा बैठा था। उसे पाटण की धाक के कारण ही यहाँ आना पड़ा था और कब वापस लौटना होता है, यही चिन्ता उसके मुख पर झलक रही थी। उसके पास अठारह वर्ष का उत्साही बालक और भीमदेव का परम भक्त त्रिलोचनपाल परमार प्रशंसा-मुग्ध नयनों से भीमदेव की ओर देखता हुआ बैठा था। भीमदेव के दोनों मन्त्री भी उसी के पास थोड़ी दूर पर बैठे थे और चारों ओर दूसरे मन्त्री और सेनापति बैठे थे।

इस समय एक ही विचारणीय प्रश्न था और वह यह कि आगे बढ़कर अमीर की सेना का मुकाबला किया जाए या तैयारी करके यहीं लड़ने के लिए ठहरा जाए।

'मैं तो निश्चय कर चुका हूँ कि आगे बढ़ना ही है। पहली चोट तो राणा की ही होगी,' भीमदेव ने कहा, 'अपनी सेना के आगे उसकी क्या गिनती है?'

दामोदर मेहता ने हँसकर सिर हिलाया, 'महाराज, जो इतनी-इतनी सेनाओं को हराकर आ रहा है, उसकी अवहेलना कैसे की जा सकती है?'

'लेकिन अपनी सेना को तो देखो। फिर उसके आने से पहले तो यह सफाई हो जाएगी। साथ ही वह थका हुआ है और हम ताजा हैं।'

ठा प्रकरण

सामन्त मित्रता जोड़ता है

: १ :

चौला की स्मृति की प्रेरणा से प्रफुल्ल सामन्त ने बहुत दिन पहले ही बाप को हराने का निश्चय कर लिया था। उसके बाल-हृदय को विश्वास था कि उस निश्चय को पूरा करने में तनिक भी बाधा नहीं आएगी। ऊँटनी के घुंघरुओं को बजाता हुआ वह आबू और चन्द्रावती को एक ओर छोड़, श्रीमाल में थोड़ी ही देर ठहर शीघ्रता से परमार की राजधानी झालोर जा पहुँचा। झालोर के वाक्पतिराज घोघाबापा के सम्बन्धी थे।

जब सामन्त झालोर की तलहटी के पास आया तब उसने वहाँ ऊँट-नियों का काफ़िला पड़ा देखा। उसे अपनी ऊँटनी से नीचे उतरता देख एक शस्त्र-सज्जित सुन्दर युवक सामने से आया। सामन्त को उसकी मुख-मुद्रा परिचित जान पड़ी, लेकिन उसे एकदम यह याद नहीं आया कि उसने उसे कहाँ और कब देखा था। 'कहाँ से आये हो?' आने वाले युवक ने मिठास से पूछा।

सामन्त की स्मरण-शक्ति तीव्र हुई। सोमनाथ के मन्दिर में चौला जब नृत्य कर रही थी तब यह मनुष्य वहाँ बैठा था। उसने तपाक जवाब दिया, 'जहाँ से आप आये हैं वहीं से।'

'पाटण से?' युवक ने साश्चर्य पूछा।

'नहीं, प्रभास से। आप गंग सर्वज्ञ और पाटण के भीमदेव के बैठे थे।'

'क्या आप वहाँ थे?'

राव, जो कुछ कहना हो, प्रसन्नता से कहो।'

'हाँ, अवश्य; आप समय पर आ पहुँचे हैं।'

'सबसे पहली बात तो मुझे यह कहनी है कि यदि युद्ध में अमीर का सामना करने का विचार हो तो छोड़ दो।' सामन्त के धीरे-से कहे हुए शब्दों ने सारी सभा को चैतन्य कर दिया। सब ध्यान और आश्चर्य से सुनने लगे। अभी तो उन्होंने दूसरा ही संकल्प किया था।

'क्या? मैं—पाटण का चालुक्य—प्रत्यक्ष लड़ाई न लड़ूँ?' ऐसा लगा मानो भीमदेव की क्रोधपूर्ण आँखें सामन्त को जलाकर भस्म करने के लिए बेचैन हों।

सामन्त शान्त बैठा था; केवल उसके मुख पर तिरस्कारयुक्त हास्य था। थोड़े ही दिन में जन्म-जन्म के दुःख का अनुभव करके वह इतनी छोटी-सी अवस्था में ही वृद्ध हो गया था। 'महाराज, क्षमा करो।' और उसके धीमे-से कहे हुए शब्दों को सुनने के लिए सब गरदन लम्बी करके उत्सुकता के साथ बैठ गए। 'ऐसी गर्व की बातें सुनते-सुनते मैं थक गया हूँ। चालुक्यराज, ऐसा लगता है कि क्षुद्र बुद्धि और पारस्परिक विरोध में मस्त अपने राजाओं को मारने के लिए ही भगवान् सोमनाथ ने इस अमीर को भेजा है।'

जो राजा थे वे क्रोध में और दूसरे आदमी आश्चर्य में आकर इस छोटे-से लड़के द्वारा कहे गए भयंकर शब्दों को सुन रहे थे। भीमदेव का हाथ तो जल्दी में तलवार की मूँठ पर चला गया। सामन्त की तीक्ष्ण दृष्टि भी भीमदेव के हाथ के साथ ही मूँठ पर पड़ी। सामन्त इस अधीरता को समझ गया है, इस बात को भीमदेव ने जान लिया और कुछ लज्जित होकर हाथ को मूँठ से हटा लिया।

'चालुक्यराज, गर्व में मस्त हम सब यह मानते हैं कि अमीर को कुचलना मामूली बात है। परन्तु जैसे अजगर के मुख में वनचर जा पड़ते हैं वैसे ही हम उसके मुख में चले जा रहे हैं। इसी गर्व में घोघा-बापा ने कुल का नाश कर लिया, बालमदेव ने पचास हजार योद्धा होम दिए और आप भी उसी आग में कूदने के लिए तैयार हैं

'क्या कहते हो?' राय रत्नादित्य ने कटाक्ष से कह

देखता रहा ।

रात को वाक्पतिराज गद्दी पर पड़े-पड़े पैर दबवा रहे थे । वृद्ध र विशालबाहु इस वीर की ओजपूर्ण आँखें सत्तर वर्ष की उम्र में भी जहीन नहीं हुई थीं । उसके पास सामन्त बैठा था, जिसकी पीठ पर क्पतिराज कभी-कभी प्रेम से हाथ फेरते थे । गद्दी के नीचे वणिक-न्त्री को जैसी नम्रता शोभा देती है वैसी ही नम्रता से विमल मन्त्री बैठे थे । आसपास पाँच-सात भाईबन्द बैठे थे ।

'बापू,' विमल कह रहा था, 'मैं गुरुदेव गंग सर्वज्ञ और अपने स्वामी का भेजा हुआ आ रहा हूँ । सामन्तसिंहजी भी इसी लिए आये हैं । आपसे आवश्यक काम है ।'

भाईबन्द और पैर दबाने वाले उठ गए ।

'क्या है ? कहो,' रावल ने कहा ।

'आपको मालूम है कि गज़नी का सुलतान सोमनाथ का मन्दिर तोड़ने आ रहा है ।'

'हा-हा-हा-हा,' वृद्ध राजा खिलखिलाकर हँस पड़े, 'यह बात तो मेरा पूरा राजगढ़ जानता है ।'

'कैसे ?' सामन्त ने पूछा । उसकी आँखें इस वृद्ध का हास्य देखकर चमक उठीं ।

'मुलतान का अजयपाल मुखिया आया था; वह म्लेच्छ का सन्देश लेकर अभी-अभी आया है ।'

'म्लेच्छ का सन्देश ?' सामन्त और विमल एक साथ बोल उठे ।

'तब तो यों कहो न कि बात तो मुझे तुमसे कहनी है । सुलतान मुलतान से मुझको चौथ भेजी है ।''

'चौथ ?'

'हाँ, मेरी मदद माँगी है; झालोर में होकर रास्ता माँगा है । स गिरि के चौहान से तो थर-थर काँपता है,' कहकर रावल ने मूँछों ताव दिया ।

'फिर ? क्या जो माँगा सो आपने दिया ?' विमल ने श्वास पूछा ।

अपने इष्टदेव की रक्षा कर सके ?'

'लेकिन काका, हम यह कैसे देख सकेंगे कि यह म्लेच्छ हमारे राज्यों में होकर जाए, हमारे देवधामों को नष्ट करे ? यह तो गौ-ब्राह्मणों का शत्रु है; यह तो हमारे देवों को नष्ट करने वाला हैं। इसे अपनी भूमि में से जाने का रास्ता कैसे दिया जा सकता है ?'

'इसी लिए तो मैंने कहा कि खबरदार यदि झालोर में पैर रखा तो !'

'दूसरे स्थान पर पैर रखकर जाए, महाराज,' विमल ने उत्तेजित करने के लिए कहा, 'तो भी आदमी तो आपके ही मारेगा और मन्दिर तो आपके ही नष्ट करेगा न ?'

'तू भी अपने दामोदर मेहता की पाठशाला में बैठा है। मैं ऐसी मीठी ज़बान पर मर जाऊँ, ऐसा नहीं हूँ।'

'और आप इस देवद्रोही म्लेच्छ को रोकने के लिए मदद नहीं करेंगे ?' सामन्त का क्रोध जागा, 'क्या वाक्‌पतिराज को यह शोभा देता है ?'

'छोकरे,' वाक्‌पतिराज ने कुछ तिरस्कार से कहा, 'मैं तेरे घोघा-बापा की तरह दूसरों की प्रशंसा का भूखा नहीं हूँ।'

'मामा,' अधीर सामन्त बोल उठा, 'घोघाबापा ने अपना सारा जीवन सबकी सहायता के लिए दौड़ते-दौड़ते बिताया है। उनके लिए अपना-पराया नहीं।'

'महाराज,' विमल ने ठण्डा पानी छिड़का, 'लेकिन मेरे स्वामी तो जो माँगो वही देने को तैयार हैं।'

'अब, अब क्यों ? उनको तो मालवा और आबूगढ़ जीतने हैं।'

'महाराज, लेकिन इस समय वे आपके हाथ में हैं। उनको देवधाम की रक्षा करनी है। आप जो माँगेंगे, उसे दिये बिना छुटकारा नहीं।'

'पहले आये होते तो दूसरी बात थी, लेकिन अब तो वाक्‌पतिराज का वचन नहीं टल सकता। म्लेच्छ को मार्ग न दूंगा तो तुझे मदद भी न करूँगा।'

'और यदि हमें मारकर म्लेच्छ आपको मारेगा तो ?'

'देख लिया उसका मुंह !'

के आक्रमण की बातें सुनाई देती वैसे-वैसे हृदय में आशा का संचार होता। बिना ऐसे किसी भूकम्प के महामाया की विजय असम्भव थी।

इतने में भीमदेव आये। मन्दिर तक आते-आते उन्होंने गुरुदेव से साथ जो बातें की थी उनके कुछ शब्द उसने सुने थे। सबको यहाँ से खम्भात जाना था। यदि गुरु न जायेंगे तो वह सबको यहाँ से ले जाएगा और खम्भात मे लकुलेश मत की ध्वजा फहराएगा। चौला उसके साथ ही रहेगी। और फिर···गुरु साथ नही रहेंगे। उसने यह भी तो कुछ-कुछ सुन लिया था कि भीमदेव और चौला एक रात को कहीं मिले थे। परन्तु वह कहाँ खम्भात जाने वाला था?

और जब उसने भीमदेव की अलिप्त दृष्टि को चौला के ऊपर पड़ते देखा तब उसे शान्ति मिली। इतने दिन के उपवास से तीव्र बनी हुई वृत्तियों की तृषा उसने चौला के स्वरूप और नृत्य को देखकर बुझाई। जब भीमदेव ने भयंकर कठोरता से नृत्य को बीच में ही रोक दिया तब उसके पुण्य-प्रकोप की सीमा नहीं रही। जब गुरुदेव की सम्मति से भीमदेव ने नृत्यविधि बन्द की तब इस महापाप को होते देखकर उसके रोंगटे खड़े हो गए। अब गुरु की अधोगति की सीमा नहीं रही थी।

जब गुरुदेव और भीमदेव मन्दिर से बाहर निकले तो वह भी साथ गया। सीढ़ियाँ उतरकर गुरु ने उसकी ओर देखा, 'शिवराशि, तू भी जाकर पारणा कर और पार्थिव का विसर्जन कर। इस नये आपद्-धर्म के आगे सब धर्म बदल जाने चाहिए। उसके बाद मेरे पास आना।'

शिवराशि ने प्रणाम किया और वह पार्थिव का विसर्जन करने गया। इस कर्तव्य को करने पर, उपवास छोड़ने से पहले उसे महामाया का स्मरण हुआ। जिस देवी के लिए उसको प्रायश्चित्त करना पड़ा था, उसके दर्शन किये बिना उपवास छोड़ना उसे अच्छा नहीं लगा। चौला की वासना ही दर्शनों के लिए प्रेरित कर रही थी, यह बात उसकी कल्पना में भी नहीं थी। लकुलेशमत के अधिष्ठाता पद की दूसरी सीढ़ी पर खड़े होकर अठारह दिन के उपवास से निर्मल हुई बुद्धि से प्रेरित वह महामाया की भक्ति में तल्लीन तत्त्वज्ञानी और तपस्वी सनातन विधि को सम्पन्न करने में लगा था।

घोघाबापा होते तो इसका सिर उड़ा देते,' सामन्त ने कहा।

'भाई, इस समय हम उनके मेहमान हैं। ऐसा नहीं कहना चाहिए।'

'मैं तो उसके मुँह पर कहता। वाक्पतिराज ऐसे वचन बोले? जान पड़ता है कि पृथ्वी रसातल जाने के लिए बैठी है।'

'निराश मत हो। कल फिर समझाऊँगा।'

'वह नहीं समझेगा, कभी नहीं समझेगा। उसे तो झालोर की पड़ी है; गौ-ब्राह्मण का नाश हो, सोमनाथ की ध्वजा गिरे, इसकी उसे कुछ चिन्ता नहीं है। उसे तो म्लेच्छ का धन लेकर दिये हुए वचन की चिन्ता है, कुल या धर्म की नहीं।'

'लेकिन चौहान, अकड़ने से क्या होगा? झालोर होकर म्लेच्छ न आयेगा तो कहाँ होकर आयेगा?'

'अरे, घोघाबापा रेगिस्तान में घुसने ही क्यों देंगे?'

'लेकिन मान लो कि आया तो मारवाड़ में होकर ही तो आयेगा और कहाँ होकर आयेगा?' विचारशील मन्त्री ने कहा।

'अरे वे कभी रास्ता न देंगे,' सामन्त ने कहा।

'मुझे यहाँ से मारवाड़ जाना चाहिए। क्या आप चलेंगे?'

'नहीं,' सामन्त ने कहा, 'सोमनाथ की आज्ञा है कि मैं घोघागढ़ जाऊँ और घोघाबापा को सावधान करूँ।'

'बापू, म्लेच्छ यदि घोघागढ़ जाने वाला होगा तो कभी का पहुँच गया होगा।'

'तो उसका कचूमर भी निकल गया होगा।'

'तब तो पीड़ा कम हुई,' विमल ने बढ़ावा देते हुए कहा, 'आपको नींद ख़ूब आती होगी?'

'नहीं भाई, मुझे आज नींद नहीं आयेगी। उसके शब्द मेरे कान में गूंजा ही करते हैं।'

'आप अभी बालक हैं। ऐसे अनुभव तो रोज होते हैं, इसलिए क्या हमें घबराना चाहिए? इसका उपाय सोचना चाहिए। क्या रात को आप आवेंगे?'

'कहाँ?' सामन्त ने चौंककर पूछा।

विचार करने वाला तो भोलानाथ है। तुम क्या करोगे?'

'गुरुदेव, हम भी यही निश्चय करके बैठे हैं। हम जीते-जी अपने भगवान् की एक भी ध्वजा को नहीं गिरने देंगे, लेकिन यदि हम न रहे तो?' राय ने कहा।

'कौन किसको रख सका है राय? तुम्हारा कहना व्यर्थ है। मेरे देव यहां से नहीं हटेंगे। जहां तुम्हारे जैसे बत्तीस लक्षणों से युक्त वीर प्राण होमने के लिए तत्पर हैं वहां पराजय की बात क्यों करते हो? लड़ो और विजय प्राप्त करो। भगवान् तुम्हारी सहायता करेंगे।'

'मैं जानता हूँ, मैं यह जानता हूँ,' भीमदेव ने कहा। 'मेरे अन्तर में भी यही आवाज उठ रही है। जब मेरा भोलानाथ त्रिशूल लिये बैठा है तब विजय भी हमारी ही है। लेकिन युद्ध के समय लिंग को ले जाया जा सकता है—'

'नहीं ले जाया जा सकता, मेरे भाई,' गुरुदेव ने कहा, 'यह तो सृजन-काल में यहीं प्रकट हुआ और प्रलय-काल में भी यहीं रहेगा।'

'तो फिर आप खम्भात जाइए। आपके ऊपर तो समस्त पाशुपत मत का आधार है।'

'वत्स,' गुरुदेव ने धीरे-से परन्तु दृढ़ता से उत्तर दिया, 'तुम मुझे कब पहचानोगे? मुझे यह गुरुपद प्रिय नहीं है और न मुझे लकुलेश मत का सर्वज्ञ-पद ही प्रिय है। मैं तो अपने भगवान् का दासानुदास हूँ। जहां वह, वहां मैं। इनसे पृथक् जीवन की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।'

'लेकिन यह भी कहीं तपस्वियों का काम है? यह तो हमारा काम है।'

'तपस्वियों का काम कहां नहीं है, भीमदेव?' गुरुदेव ने पूछा। 'जहां तपस्वी नहीं वहां पुण्य नहीं और जहां पुण्य नहीं वहां विजय नहीं।'

'लेकिन आप होंगे तो—'

'लेकिन इस बात को छोड़ो,' सर्वज्ञ ने कहा, 'सामन्त भी इसी हठ को पकड़े बैठा था, परन्तु मैंने तो अपना निश्चय कभी का कर लिया

'देख लिया। जिसे आवेश न आए वह भी कोई आदमी है!"

'मेहताजी हमारे महाराज से सदा कहते हैं—जिसे क्रोध आए वह राजा श्रेष्ठ है और जिसे क्रोध न आए वह मन्त्री श्रेष्ठ है।'

'तो क्या आपको क्रोध नहीं आता?'

'कभी-कभी आता है, इसीलिए तो मैं मेहताजी के मुकाबले का नहीं। यदि होता तो क्या रावल 'ना' कह सकता था?' विमल हँसा और सामन्त प्रेम से इस नये मित्र की ओर देखता रह गया। पहला विश्राम-स्थल आया और वे वहाँ रुके। वहाँ तलाश करने पर पता चला कि मुखिया ने दूसरे विश्राम-स्थल पर रुकने का विचार किया है। विमल को यह बात बहुत अच्छी लगी कि मुखिया झालोर से दूर चला गया।

थोड़ी देर में वे दूसरे विश्राम-स्थल पर जा पहुँचे। चन्द्रमा देर से निकला था। उसकी धुँधली चाँदनी में विश्राम-स्थल के ताड़ों के आगे ऊँटनियों को खड़ी देखकर विमल प्रसन्न हुआ। उसे मुलतान के मुखिया के साथ अपनी बुद्धि की परीक्षा करने का अवसर मिला था। उसकी जीत में पाटण और सोमनाथ महादेव दोनों की जीत थी। वह तेज़ी से विश्राम-स्थल पर पहुँचा और जाने के लिए तैयार मुखिया के काफ़िले को रोका।

'मुलतान के मुखिया के लिए मैं झालोर के राजा का सन्देशा लाया हूँ।'

जो वृद्ध और प्रचण्ड योद्धा ऊँटनी पर चढ़ने की तैयारी कर रहा था वह आगे आया। उसकी आँखों में शंका घर किये थी।

'तू कौन है? कहाँ से आया है?'

'मैं झालोर से आ रहा हूँ और यह कुँवर सामन्तसिंह चौहान रावल के भानजे होते हैं। आपसे मुझे कुछ व्यक्तिगत बातें करनी हैं,' कहकर विमल अपनी ऊँटनी से उतरकर सामने गया और सुन्दर ढंग से नमस्कार किया। 'आपको मेरा विश्वास नहीं होता?'

कठोरता के साथ शंकालु आँखों द्वारा मुखिया इस मिठबोले मन्त्री की ओर देखने लगा। विमल उसे दूसरे आदमियों से कुछ दूर ले गया

जब पौ फटने लगी तब तो विमल की अकुलाहट की सीमा न रही। उसे अन्तिम अवसर हाथ से जाता प्रतीत हुआ। मुखिया अपनी ऊँटनी पर ठण्डी हवा में झोंके खाता हुआ बैठा था। वह अब अधिक धीरज न रख सका। उसने अपनी ऊँटनी मुखिया की ऊँटनी के पास कर ली, पीछे मुड़कर अपने आदमियों को आँख मारी और शीघ्र तलवार निकाल-कर मुखिया पर वार किया।

विमल के आश्चर्य की सीमा न रही। मुखिया झोंके नहीं खा रहा था, वरन् खुली आँखों से उसकी ओर देख रहा था और तलवार की नोक विमल की छाती पर टिकी थी। विमल को ऐसा लगा जैसे कि यह बुड्ढा खूसट तैयार ही बैठा हो। इससे पहले कि तलवार की नोक उसकी छाती में घुसे, वह ऊँटनी से फिसल पड़ा। उसके बाद शीघ्र ही मुखिया ने भी अपनी ऊँटनी से छलाँग लगाई।

दोनों पक्ष एक-दूसरे को देखते रहे और विमल की तलवार के चमकते ही ऊँटनी पर बैठे सैनिक पास चलते हुए दुश्मन पर टूट पड़े। कुछ शमशीरें चमकीं, कुछ बाण छूटे, कुछ ऊँटनियाँ भड़ककर भागीं, कुछ चीख-पुकार मची और मार-काट शुरू हुई।

विमल खड़ा हुआ। मुखिया के तीन आदमियों ने उसे घेर लिया। सामन्त तलवार घुमाता हुआ अपनी ऊँटनी से बीच में कूद पड़ा। मुखिया के शरीर के आसपास तुमुल युद्ध होने लगा। सब वहाँ दौड़कर आ गए। मुखिया के आदमी मुखिया को बचाते, विमल और सामन्त के आदमी अपने-अपने मालिकों की सहायता करते। दो-चार क्षण चिनगारियाँ उड़ीं, चार-पाँच आदमी घायल हुए और गिरे। सुकुमार दिखाई देने वाला विमल अत्यन्त चपलता से वार करता और चौहान वीर सिंह के समान गर्जना करता, रक्त की धारा बहाता चारों ओर घूमता। मुखिया ने आँखें खोलीं और विमल को पास ही खड़ा होकर लड़ते देखा। उसकी आँखों में अँधेरा छा गया था, तो भी अद्भुत शक्ति संचित करके उसने पास पड़ी हुई तलवार उठाई और होंठ दबाकर एक हाथ के सहारे बैठ-कर उसे चलाने के लिए हाथ उठाया।

सामन्त की दृष्टि उस पर पड़ी। वह भयंकर गर्जना करके मुखिया

चौला की आँखों से फिर उपालम्भ के तीर छूटे, 'आप क्षत्रिय थे, इसीलिए आपने मेरा उद्धार किया था ?' वे आँखें पूछ रही थीं।

भीमदेव के हृदय के तार एकदम झनझना उठे, परन्तु ऐसा लगा कि यह समय प्रणय-वार्ता का नहीं है, इसलिए वे एकदम खड़े हो गए, 'अभी मुझे बहुत-सा काम है। मैं जाता हूँ।'

गंगा भी खड़ी हो गई, 'महाराज, कभी दर्शन देना।'

भीमदेव ठिठका। उसने अपने सामने उर्वशी को भी लज्जित करने वाली लावण्यमूर्ति को खड़े देखा और उसकी हिम्मत न हुई कि उसे दूर हटा दे।

'प्रभास में कल के बाद कदाचित् ही कोई स्त्री रहे। अतः कल से तुम दोनों को वहाँ आना पड़ेगा जहाँ गुरुदेव और मुझे रहना है। तुम्हीं को हमारी देखभाल करनी है।'

गंगा के हर्ष की सीमा न रही। 'जैसी कृपानाथ की मरज़ी,' उसने कहा।

चौला को तो दसों दिशाएँ नृत्य करती दिखाई दीं। भीमदेव की कर्तव्यपरायणता ने एक और नई बात की सूचना दी, 'कल सवेरे नर्तकियों के इस पूरे आवास में मेरे सैनिक अपना पड़ाव डालने वाले हैं।'

और उन आँखों से तीसरी बार उपालम्भ के तीर छूटे, 'इस सूचना के देने की ऐसी क्या जल्दी थी ?'

: ७ :

शिवराशि आधी रात के समय बिलकुल थक गया था। आज ही उसने उपवास छोड़ा था और आज ही यह सारा काम उसके ऊपर आ पड़ा। उसमें भी कल जाए या न जाए, यह प्रश्न उसके हृदय को मथे डालता था और वह उपवास द्वारा शुद्ध हुई वृत्ति से इस कथन का निराकरण करना चाहता था।

दोपहर तक एक पलड़े में भगवान् की सेवा और गुरु-भक्ति थी और दूसरे में थी गुरु की अनुपस्थिति में पाशुपत मत की विजय और जिस त्रिपुर-सुन्दरी उतरी थी, ऐसी चौला की निकटता। अब तो चौल

आक्रमणकारी देश की सेना जैसी थी। उसकी चाल से धरा काँपती थी, उसके दुन्दुभि-नाद से आकाश फटता था। विमल इस वर्णन को सुनकर दंग हो गया। कुछ देर तो वह उसे कल्पना की उड़ान समझकर हँसा, लेकिन उसके हृदय में व्याप्त भय अधिकाधिक गहरा धँसता गया।

घोड़ों, जानवरों और बकरियों-सहित, जितना हो सका उतना सामान लेकर। भागकर आते हुए समूह के मस्तिष्क में दिशा का कोई निश्चय नहीं था। बात धीरे-धीरे बढ़ने लगी। किसीने भयंकर गज़नी के अमीर की तीन आँखों, आठ हाथों और छः हाथ लम्बी तलवार की बात की; किसीने उसकी असंख्य सेना का सर्वांगपूर्ण वर्णन किया; किसीने उड़ते हाथी देखे थे; किसीने पंख वाले घोड़े देखे थे; किसीने काले, कच्चे आदमी को खा जाने वाले, दो-दो मुंह के राक्षस देखे थे। जहाँ अमीर जाता था वहाँ किसीने बादल घिरता देखा था। जब वह खड्ग निकालता था, तो किसीने आकाश से बिजली गिरती देखी थी।

सामन्त ने ठीक-ठीक बात का पता लगाने का बड़ा प्रयत्न किया, लेकिन ऐसा नहीं लगा कि कोई भी वास्तविक स्थिति को जानता है। लेकिन यह ज़रूर मालूम हुआ कि सुलतान सपादलक्ष तक आ गया है। इसका अर्थ यह कि या तो उसने घोघागढ़ पार कर लिया या फिर उसे एक ओर छोड़ दिया। उसके हृदय में भय का संचार होने लगा। चारों ओर से आने वाले समूह के हृदय में व्याप्त डर उसके हृदय में भी घर करने लगा था।

जैसे ही यह भय उसके हृदय में घुसा वैसे ही वह उत्साह के साथ आगे बढ़ने लगा। भम्भरिया के आगे उसका पिता उसकी बाट जोह रहा होगा; गंग सर्वज्ञ की आज्ञा के अनुसार उसे सोमनाथ भगवान् का आदेश घोघाबापा से कहना था। लेकिन उसकी समझ में यह नहीं आया कि क्या होगा, या क्या हो रहा होगा।

आठ दिन तक उसे भागते हुए लोग मिलते रहे। नवें दिन लोग कम हुए।

ग्यारहवें दिन चारों ओर निर्जनता व्याप्त हो गई। गाँव उजड़े पड़े हुए दिखाई दिए; विश्राम-स्थलों पर बटोही भी कम मिलने लगे। इस प्रदेश में भय सजीव होकर विचर रहा था। सामन्त का हृदय काँपने लगा, लेकिन वह होंठ दबाकर आगे बढ़ने लगा। यदि सामने से यम आता तब भी कोई चिन्ता न थी; वह स्वयं चौहान था।

दो दिन वह आगे बढ़ा। चारों ओर सन्नाटा था; वहाँ ऐसा सूनापन

'चौला, आज खबर आई है कि वह अमीर लूटता, गांव जलाता, स्त्री तथा ब्राह्मणों को मारता और गायों को काटता चला आता है। मेरा गुजरात श्मशान बन रहा है और मैं यहाँ बैठा उसके बचाने के लिए कुछ नहीं कर सकता।'

'वह कब आयेगा ?'

'कल या परसों।'

'अच्छा है,' चौला ने कहा, 'कि इस विपत्ति का शीघ्र अन्त हो।'

'चौला, हमारा भोलानाथ बैठा है न,' और भीम का मुख पीछे से थोड़ा खिन्न हो गया।

'महाराज, अब सो जाओ। बहुत समय हो गया। यह समय आपके शक्ति सचय करने का है।'

'ठीक है,' कहकर भीमदेव वहां से चले गए। जाते-जाते उन्होंने फिर चौला पर नज़र डाली। लौटने को मन हुआ, परन्तु पैर न उठे। और किरणावली के समान चौला जैसी आई थी वैसी ही अदृश्य हो गई। वीरा चावड़ा, जो दोनों से छिपकर चुपचाप यह सब देख रहा था, अपने मन में खूब हँसा।

: २ :

भीमदेव महाराज सोने गये, परन्तु उनको ठाक से नींद नहीं आई। थकान के मारे आँखें तो मिच गईं, परन्तु मस्तिष्क में गढ़ के कोट ऊँचे होते गए, बड़े-बड़े राक्षस गौ-ब्राह्मण की हत्या करते दिखाई दिए और वे स्वय बँधे और अकुलाते हुए एक स्थान पर पड़े दिखाई दिए। सब-कुछ जल रहा था, चारों ओर नाश का प्रसार था और वे हाथ या पैर नहीं हिला सकते थे। उनकी दृष्टि के सामने किरणों की बनी हुई एक बालिका तेजपूर्ण आँखों द्वारा उपालम्भ देती, असख्य घोड़ों की पक्तियाँ दौड़तीं; अगणित धनुषों से बिजली जैसे तीर छूटते, लेकिन वे वहीं-के-वहीं थे—और किरणों की बनी बालिका उपालम्भ देती। वे घबराकर, चौककर जागे; कुछ देर तक मस्तक स्वस्थ किया, उस चुम्बन का अविस्मृत स्वाद फिर से लिया और करवट बदलकर सो गए।

फिर स्वप्न आया। वह बालिका नृत्य कर रही थी

घोड़ों, जानवरों और बकरियों-सहित, जितना हो सका उतना सामान लेकर। भागकर आते हुए समूह के मस्तिष्क में दिशा का कोई निश्चय नहीं था। बात धीरे-धीरे बढ़ने लगी। किसीने भयंकर गजनी के अमीर की तीन आँखों, आठ हाथों और छः हाथ लम्बी तलवार की बात की; किसीने उसकी असंख्य सेना का सर्वांगपूर्ण वर्णन किया; किसीने उड़ते हाथी देखे थे; किसीने पंख वाले घोड़े देखे थे; किसीने काले, कच्चे आदमी को खा जाने वाले, दो-दो मुंह के राक्षस देखे थे। जहाँ अमीर आता था वहाँ किसीने बादल घिरता देखा था। जब वह खड्ग निकालता था, तो किसीने आकाश से बिजली गिरती देखी थी।

सामन्त ने ठीक-ठीक बात का पता लगाने का बड़ा प्रयत्न किया, लेकिन ऐसा नहीं लगा कि कोई भी वास्तविक स्थिति को जानता है। लेकिन यह ज़रूर मालूम हुआ कि सुलतान सपादलक्ष तक आ गया है। इसका अर्थ यह कि या तो उसने घोघागढ़ पार कर लिया या फिर उसे एक ओर छोड़ दिया। उसके हृदय में भय का संचार होने लगा। चारों ओर से आने वाले समूह के हृदय में व्याप्त डर उसके हृदय में भी घर करने लगा था।

जैसे ही यह भय उसके हृदय में घुसा वैसे ही वह उत्साह के साथ आगे बढ़ने लगा। भम्भरिया के आगे उसका पिता उसकी बाट जोह रहा होगा; गंग सर्वज्ञ की आज्ञा के अनुसार उसे सोमनाथ भगवान् का आदेश घोघाबापा से कहना था। लेकिन उसकी समझ में यह नहीं आया कि क्या होगा, या क्या हो रहा होगा।

आठ दिन तक उसे भागते हुए लोग मिलते रहे। नवें दिन लोग कम हुए।

ग्यारहवें दिन चारों ओर निर्जनता व्याप्त हो गई। गाँव उजड़े पड़े हुए दिखाई दिए; विश्राम-स्थलों पर बटोही भी कम मिलने लगे। इस प्रदेश में भय सजीव होकर विचर रहा था। सामन्त का हृदय काँपने लगा, लेकिन वह होंठ दबाकर आगे बढ़ने लगा। यदि सामने से यम आता तब भी कोई चिन्ता न थी; वह स्वयं चौहान था।

दो दिन वह आगे बढ़ा। चारों ओर सन्नाटा था; वहाँ ऐसा सूनापन

किनारे-किनारे ऐसी ही एक टुकड़ी चली आ रही थी।

'ये समुद्र की ओर के हमारे मार्ग को बन्द कर देना चाहती हैं।'

एक ओर किनारे पर होकर आती हुई सेना ऐसे आगे बढ़ रही थी जैसे कि वह यन्त्र हो। प्रभास गढ़ की खाई के उस छोर पर श्मशान था और वहाँ कालमुखों का वास था। गुरुदेव ने उनसे गढ में आने या सम्भात में जाने के लिए बड़ा अनुरोध किया था, परन्तु अपनी भयानक रीति-नीति में मस्त कालमुखों ने गुरुदेव की बात हँसकर टाल दी थी। कभी किसी युद्ध में उन्हें किसी ने नहीं छुआ था। किसी की ताकत ही नहीं थी। परन्तु अमीर के भयंकर घुड़सवारों को इस लोक या परलोक की परवाह नहीं थी। उन्होंने कालमुखों को ऐसे काट डाला जैसे माली घास काटता है। इस सम्प्रदाय के प्रति गुरुदेव की तनिक भी सहानुभूति नहीं थी। उन्होंने आह भरकर कहा, 'भोलानाथ, तू जो करे सो ठीक!'

इतने में महाराज ने देलवाड़े की ओर दृष्टि डाली और वे स्तब्ध हो गए। इस रास्ते से घुड़सवारों की एक बड़ी सेना हाथ में तीर-कमान लेकर बाहर निकली।

'राय और परमार, तुम समुद्र के रास्ते की जाँच करो। मैं इसे देखता हूँ।

राय और परमार अपनी जगह जाने के लिए रवाना हो गए और देलवाड़े के जगल के रास्ते से अमीर की सेना ऐसे निकली जैसे कोई बड़ी रेल आ रही हो। घुड़सवार पूरे जोश से दौड़े आ रहे थे—पाँच नहीं, पचास नहीं बल्कि हज़ारों, अभेद्य व्यूह में, भयंकर चमड़े की पोशाक में और चमकते शिरस्त्राणों में, भयंकर लम्बी और बड़ी-बड़ी कमानों पर तीर चढ़ाये हुए। उनके पीछे सैंकड़ों हाथी आये—साथ-साथ चलते हुए और ऐसा व्यूह बनाते हुए जैसे वे साक्षात् सजीव गढ़ हों। और फिर बड़े-बड़े यन्त्र आये—ऐसे यन्त्र जिनको भीमदेव ने न कभी देखा था और न जिनकी कल्पना ही की थी।

'महाराज!' विमल ने धीरे से कहा, 'सामन्त की बात ठीक थी। यह सेना नहीं है, यह तो पूरा देश उमड़ पड़ा है।'

'लेकिन भगवान् तो हमारे साथ हैं न!'

को घोंटे दे रही हैं।

वह बालक था। ऐसे अकेलेपन का उसने कभी अनुभव नहीं किया था। एक बार उसके मन में आया कि ज़ोर से चिल्ला उठे। एक बार उसने जैसे-तैसे डरते हुए हुंकार की। उसकी प्रतिध्वनि लौटकर उसके कानों से टकरा गई। उसने काँपते हृदय से चारों ओर देखा और सोमनाथ भगवान् का स्मरण करके उसने ऊँटनी आगे बढ़ाई। वह आगे नहीं बढ़ रहा था, वरन् हृदय में व्याप्त भय से दूर भाग रहा था।

एक बड़ा विश्राम-स्थल आया। वहाँ उसे किसीके मिलने की आशा हुई। भम्भरिया अब दूर न था, इसलिए सम्भव है कि उसके पिता भी वहाँ आ लगे हों। लेकिन क्या वे आये होंगे? आये हों और जल्दी से घोघाबापा के पास चले गए हों तो? तब तो वह अवश्य हारेगा और उसके बापा जीतेंगे। वहाँ उसके सभी नाते-रिश्तेदार बाट जोहते हुए बैठे होंगे और वे सब उसकी इस भयंकर यात्रा की कथा सुनकर गर्व का अनुभव करेंगे।

सब लोग गज़नी के म्लेच्छ से डरकर भाग रहे थे, पर वह था कहाँ? लोग मूर्ख थे। घोघाबापा को पार करके वह आ ही कहाँ से सकता है! भले ही वह स्वयं रावण ही क्यों न हो। और यदि घोघागढ़ पार कर लिया है तो उसका कुछ नामोनिशान तो हो।

ऐसे संकल्प-विकल्प करते हुए उसने विश्राम-स्थल के एक झोंपड़े के नीचे दोपहरी बिताई। उसने बचपन में कहानियाँ सुनी थीं, जिनमें किसी राक्षस के कोप से निर्जन बने हुए नगर आते थे। वह विश्राम-स्थल भी वैसा ही था। कुएँ में पानी था पर स्थिर; पुर था पर सूखा, अप्रयुक्त; और मन्दिर में माता थीं, पर कुछ दिन से पूजारहित; तीन झोंपड़े थे—सही-सलामत, पर निर्जन।

एक में चूल्हे पर पकाई हुई वस्तु पड़ी थी, लेकिन चूल्हे की लकड़ी कई दिन की बुझी हुई थी। देग में सूखी हुई खिचड़ी को चींटियों की पंक्ति लिये जा रही थी। किसी दैवी प्रकोप से वहाँ मनुष्य का संचार एकदम अदृश्य हो गया था।

थोड़ी देर में उसका भय दूर होने लगा और वह अपनी कायरता

साधु हाथ जोड़े बैठे थे। परन्तु उनके मुख और आवाज से धृष्टता टपक रही थी।

'गुरुदेव, जब तक महामाया का मन्दिर नहीं खुलता तब तक यह विपत्ति दूर नहीं होगी। अनादिकाल से यह कभी बन्द नहीं रहा,' हरदत्त ने चिमटे को कड़े हाथ में पकड़कर कहा। उसकी आँखें विकराल पशु के समान थीं।

'अब तो मैं स्वयं पूजा करता हूँ, वह बन्द नहीं है।' गुरुदेव ने कहा।

'परन्तु हम भक्तों के लिए महामाया के दर्शन कभी बन्द नहीं हुए,' हरदत्त ने कहा।

'मुझे तुम लोगों के कार्यों के कारण ही दर्शन बन्द करने पड़े हैं।'

'गुरुदेव,' हरदत्त ने धमकी-भरी आवाज में कहा, 'आज पचास वर्ष से मेरे कार्यों में किसी ने बाधा नहीं डाली; आज आपने डाली है और यह अमीर यहाँ पर चढ़ आया है। महामाया विधि का खण्डित होना कभी नहीं सह सकती।'

'हरदत्त, भगवान् लकुलेश की कृपा से मुझे भी विधियों का ज्ञान है। एक भी विधि खण्डित नहीं हुई।' गग सर्वज्ञ ने दृढ़ता से कहा।

'तो अमीर क्यों आ गया?' हरदत्त ने पूछा।

'देवों की पूजा के स्थान पर पुण्य धामों में अत्याचार आरम्भ हो गया, इसलिए।'

'इसका अर्थ है कि आप मन्दिर नहीं खोलेंगे?' एक साधु ने पूछा।

'नहीं; यदि मेरे कृत्यों से ही यह दैवी प्रकोप हुआ है तो मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि इसका फल मुझ अकेले को ही भोगना पड़े।'

'लेकिन यह तो हमें भोगना पड़ रहा है,' हरदत्त ने सर्वज्ञ की शान्ति से ऊबकर कहा। उसकी मुद्रा से प्रकट हो रहा था कि वह गुरु के साथ कुछ कर बैठेगा।

'तो यह मेरे कृत्यों का परिणाम नहीं होगा,' गुरुदेव ने शक्ति से कहा, 'मैं भी आज वर्षों से पाशुपत सम्प्रदाय का गुरुपद भोगता आ रहा हूँ। अभी तक मैं अपने धर्म से भ्रष्ट नहीं हुआ और इस परीक्षा के समय भी नहीं हूँगा। जब तक अमीर को महाराज खदेड़ नहीं

इतने में उनकी ऊँटनियाँ पास-पास आने लगीं।

'कहाँ से आया है?'

'झालोर से; क्यों, क्या बात है?' सामन्त ने इन प्रश्नों की झड़ी से ऊबकर कहा।

उन आने वालों ने सामन्त की पगड़ी का पेच पहचाना।

'चौहान, रास्ते में कहीं म्लेच्छ की सेना मिली?'

सामन्त चौंका, 'नहीं भाई, लेकिन आप कौन है?'

'हम घोरविटली से आ रहे हैं,' बड़े योद्धा ने कहा।

'तुमको उसकी सेना मिली ही नहीं? अजीब बात है! कहाँ गई?'

'मैं क्या जानूँ? रास्ते में उजड़े गाँव और सूने विश्राम-स्थल मिले हैं।'

'लेकिन म्लेच्छ गया कहाँ?' बड़े योद्धा ने छोटे से पूछा।

'आपको म्लेच्छ कहाँ मिला?' सामन्त ने पूछा।

'हमें?' बड़ा योद्धा क्रूरता से हँसा, 'कहीं नहीं मिला।'

'मुलतान से रवाना हो चुका?'

वे दोनों रसहीन कर्कश हँसी हँस रहे थे। सामन्त की समझ में उसका रहस्य नहीं आया। बड़ा योद्धा सामन्त के पास आकर उसे ममता से देखने लगा।

'भाई,' उसने प्रेम से, दयापूर्ण स्वर में कहा, 'घोघागढ़ किसलिए जाता है?'

'किसलिए?' गर्व से सामन्त हँसा, 'वह तो मेरा घर है। मैं तो घोघाबापा का प्रपौत्र हूँ। वहाँ न जाऊँ तो कहाँ जाऊँ?'

उन दोनों योद्धाओं ने एक-दूसरे पर ऐसी नजर डाली जो समझ में न आने वाली थी। फिर बड़ा योद्धा अपनी ऊँटनी को सामन्त की ऊँटनी के पास ले आया और उसके ऊपर प्रेम से हाथ रखा।

'चौहान, घोघागढ़ से कब के चले हो?'

'मैं? अरे मुझे तो तीन महीने होने आए।'

'बापू,' बड़े योद्धा ने सजल नयनों से सामन्त को देखकर कहा, 'तीन महीने में तो तीन युग बह गए। बापू, तुम तो हमारे साथ चलो।'

कि वहाँ राय कमा एक आँख से समुद्र की ओर ध्यान से देख रहा है। उसका मुख गम्भीर था।

'क्यों राय, क्या देखते हो ?' महाराज ने पूछा।

'वह देखा ?'

'क्या ?' महाराज ने क्षितिज पर दृष्टि डालते हुए पूछा, 'वह जो काले धब्बे जैसा है सो ?'

'हाँ,' लखाणी ने कहा, 'जहाज है।'

'मुझे ऐसा नहीं लगता।'

'मैं कच्छी हूँ; बचपन से समुद्र में घूमा हूँ। जहाज इस ओर आ रहे हैं,' कहकर उसने महाराज को दूर खींचा, 'यदि इस ओर आ गए तो हम मर गए।'

'क्यों ?'

'अमीर ने किनारे के दोनों ओर घुड़सवार रखे हैं। यदि अपनी कोई भी नौका उनके कब्ज़े में चली गई तो समुद्र का मार्ग बन्द हो जाएगा। कमा ने क्षितिज को फिर बारीकी से देखा, 'लगभग आठ जहाज हैं।'

'समुद्र का मार्ग तो खुला ही रहना चाहिए। क्या करें ?'

'एक उपाय है,' और कमा की एक आँख मिचने लगी। 'वहाँ जाकर जहाज रोकने चाहिए।'

'इससे क्या होगा ?' भीमदेव ने कहा, 'वहाँ भी हमें कुछ अच्छे योद्धा भेजने चाहिए जो ज़रूरत पड़ने पर नावों से ही लड़ सकें।'

कमा खिलखिलाकर हँसा। 'महाराज, यह तो आधे योजन तक डुबकी मारने का काम है। आप नहीं समझते।' एक अच्छे तैराक के अभिमान से कमा ने कहा।

'कैसे ?'

'मेरी सेना में थोड़े-से ऐसे आदमी हैं, जो मिस्र से चीन तक धावा मार आए हैं। उनको तैयार करता हूँ।'

'परन्तु वे समुद्र में रहकर लड़ सकेंगे ?'

'जहाज़ पर रहकर लड़ना तो हमारे बाप-दादों का काम है,' कमा ने कहा।

है। लो मैं चला, रात होने से पहले तो मैं भम्भरिया पहुँच जाऊँगा।'

'अरे भाई, यह नहीं होगा, नहीं होगा।'

'मुझे जाना ही चाहिए।'

'किसकी आज्ञा है ?' छोटे योद्धा ने पूछा।

'किसकी ?' राजाजी, भगवान् सोमनाथ की।'

'क्या ? क्या ?' बड़े योद्धा ने सामन्त की ऊँटनी को रोकने का प्रयत्न किया।

सामन्त को शंका हुई : ये राजपूत उसे रोकने की जिद क्यों कर रहे हैं ? कहीं धोखा तो नहीं है ? कहीं ये म्लेच्छ के दास तो नहीं हैं ?

'यह आज्ञा तो घोघावापा के लिए है, दूसरे के लिए नहीं,' कह-कर सामन्त ने हुंकार की और ऊँटनी हाँक दी। उसके हृदय में एकदम उत्साह आ गया था। जब घोघागढ़ उसके हाथ में था तब वह कैसे लौट जाता !

बड़े योद्धा की आँखों में आँसू छलछला आए। उसने लम्बी साँस लेकर छोटे योद्धा की ओर देखा। उसकी आँखों में भी आँसू थे। बहुत देर तक वे गूंगे की भाँति चुपचाप उत्साही सामन्त की ओर देखते रहे।

जब तक भम्भरिया दिखाई दिया तब तक सामन्त को रास्ते में कोई नहीं मिला। इसलिए समस्त वस्तु-स्थिति पर विचार करने का उसे पर्याप्त अवसर मिला। मुलतान तो म्लेच्छ के हाथ में था; सपादलक्ष गिरकर खँडहर हो चुका था; चौहानों का शिरोमणि वीर बालमदेव मारा गया था; म्लेच्छ घोरविटली छोड़कर रेगिस्तान के किसी रास्ते से आगे बढ़ गया; और रास्ते के गाँवों में भगदड़ मच गई। तो घोघागढ़ का क्या हुआ ? यह तो मुलतान से सपादलक्ष आने वाले रास्ते के बीच पड़ता है। क्या उसे भी म्लेच्छों ने धूल में मिला दिया ? या उसे छोड़-कर वह सीधा ही सपादलक्ष आया ? घोघावापा का क्या हुआ ? और उनके पिता का क्या हुआ ? सामन्त की छाती में ऐसी पीड़ा हुई जैसे कि घाव हो गया हो। लेकिन उसकी दृष्टि क्षितिज पर थी और उसकी जीभ सोमनाथ की रट लगा रही थी। ज्योतिस्वरूप महादेवजी की आज्ञा-पालन करने वाले उसे और उसके कुल को क्या होने वाला था ?

'महाराज,' धीमे से परन्तु उत्साह के साथ चौला बोली, 'कहाँ हो ?'

'मैं तेरी ही बाट देख रहा हूँ,' भीमदेव की आवाज आई।

दो काले धब्बे एक-दूसरे से लिपट गए—दो के एक हो गए, और एक प्रकार की आवाज स्पष्ट रूप में उस अन्धकार और शान्त वातावरण में राशिजी के कान में टकराई। उनको रोमांच हो आया; उनकी रग-रग में क्रोधाग्नि भभक उठी; उनके हृदय में ज्वालामुखी फूटा। उनकी आँखों के सामने ऐसा पाप हो रहा था जिसकी कल्पना भी कभी किसीने नहीं की होगी; भीमदेव के होठों ने जगज्जननी महामाया के होंठों का स्पर्श किया।

और देवेन्द्रदेव के क्रोध को इस दुष्ट चालुक्य के ऊपर गिरने का निमन्त्रण देकर तपस्वियों में श्रेष्ठ वे शिवराशि पुण्य-प्रकोप से जलते हुए अपने डेरे पर आये। इस अधम पापी को पल-भर भी जीने का अधिकार नहीं है।

के भीतर घुसा तो कोठरियाँ सूनी पड़ी थीं। एक चमगादड़ फड़-करती आई, उसके आसपास घूमी और उड़ गई—भयंकर ! और जैसा कि पिछला विश्राम-स्थल था वैसा ही यह गढ़ था; ी भयंकर राक्षस के प्रकोप के कारण चेतनाहीन। सब-कुछ जैसा वैसा ही था—प्राणी के स्पर्श की संजीवनी से रहित, झंकार निका-ने वाली अँगुली के अभाव में बेकार पड़े हुए वाद्य-यन्त्र की भाँति। ामन्त को यह निर्जनता भयंकर लगी। वह ऊँटनी से उतरकर उसके आगे-आगे चलने लगा।

दुर्गपाल का घर खुला पड़ा था। वह द्वार में जाकर खड़ा हुआ और चौंका। सन्नाटे में सामने ही एक भयंकर आवाज़ हो रही थी। एक मोटा चूहा दिन-दहाड़े निश्चिन्त होकर कुछ कुतर रहा था। निडर चूहा कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा और फिर पास के ही बिल में घुस गया। वह घबराता हुआ आगे बढ़ा, उसे दुर्गपाल को आवाज लगाने का भी होश न रहा।

घबराहट में वह कभी-कभी पीछे देखता, जैसे मारने वाला उसके पीछे ही आ रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर में वह अपनी या अपनी ऊँटनी की पग-ध्वनि से थर-थर काँपता और आगे चलने में अशक्त होकर खड़ा रह जाता। उसके हृदय की धड़कन हथौड़े की चोट के समान उसके मस्तिष्क में भयंकर प्रतिध्वनि पैदा करती।

एक बार पेड़ के पत्ते हिले और वह चौंका। डर के मारे वह चिल उठा, 'कौन है ?' जैसे वह जीवित ही घूरे में दब गया हो, वैसे आसपास के शून्य मकानों से प्रतिध्वनि आई, 'कौन है ?'

उसके हृदय में हिम जम गया। 'दुर्गपाल—दुर्गपाल—दुर्गपा की प्रतिध्वनि ने 'दुर्गपाल' शब्द के आन्दोलन से मानो गढ़ को दिया। उसने बाप को याद किया—यहीं तो वे उसकी बाट जोह थे। यहीं तो उसने उनकी गोद में छिपने की आशा रखी थी। ' बापा ! बापा !' उसने रोते-रोते पुकार लगाई। लेकिन प्रति फिर क्रूर विडम्बना की। 'बापा ! बापा ! बापा !' आवाज़ शू हो गई और वह ऊँटनी की नकेल छोड़कर भागा—मन्दिर

'हाँ, राशिजी, आपको तो तीनों कालों का ज्ञान है। क्या होगा?'

शिवराशि ने ऊपर देखकर क्षितिज पर दृष्टि डाली, 'महामाया को भ्रष्ट करने वाले कुत्ते की मौत मरेंगे।'

दद्दा प्रसन्नता से उछल पड़े। 'अमीर?' उन्होंने पूछा।

शिवराशि खड़े रहे और दद्दा की ओर उग्रता से देखा। दद्दा काँपे और हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

'नहीं,' उन्होंने धीरे-से कहा, 'भीम।'

दद्दा ऐसे स्तब्ध हो गए जैसे उन पर बिजली गिर पड़ी हो। उनका सिर घूमने लगा।

'भगवान् सोमनाथ की अर्द्धाङ्गना का शाप है।'

और राशिजी लम्बे-लम्बे डग भरते हुए वहाँ से चले गए।

दद्दा पैर उठाने में असमर्थ, उन्मत्त की भाँति इस भयकर आकृति को अन्धकार में लुप्त होते देखते रह गए।

: ३ :

परन्तु दद्दा को अधिक विचार करने का समय न था।

अरुणोदय के साथ ही अमीर की सेना में एकदम हलचल मच गई। घोड़े मशालचियों के साथ इधर-से-उधर दौड़ने लगे। काँपते हुए दद्दा ने कन्धे पर लटकाया हुआ शख फूंका। तुरन्त दरवाजों पर खड़े चौकीदारों ने भेरी का नाद किया। भीमदेव बिस्तर में उछलकर बैठ गए; कमल के नाल के समान हाथ की मृदुता देखे बिना ही बख्तर सजाया, शखनाद किया और कोट की ओर दौड़े। राय ने भी शस्त्र सज्जित कर, कोट पर आकर अपना रणसिंघा फूंका। परमार और विमल भी कोट पर आये और सब लोग मुख्य दरवाजे के उस कँगूरे पर जमा हुए जिस पर भीमदेव महाराज खड़े थे।

अमीर की सेना में अजीब चलाचली हो रही थी। भारी आवाज में, समझ में न आने वाली बोली में हुक्म दिए जाते, घोड़े हिनहिनाते, शस्त्रों की आवाज होती। दूर पर जगल के बिल्कुल पास, जहाँ अमीर डेरे-तम्बू डालकर पड़ा था, मशालें जल रही थीं। वहाँ से घोड़े छूट रहे थे और जैसे किसी महामन्त्र की चरखी घूमती है वैसे ही सारी सेना

ह उसकी ओर देखकर हँसती थी। एक सुकोमल हाथ से उसके
पर भस्म लगाती हुई वह दिखाई दी, मानो वह कोकिल-कण्ठ
ह रही हो, 'वीर, जल्दी लौटना।' लेकिन उसका माथा ठनक
था—पहले जितना नहीं, कुछ कम। एक हाथ उसको कुछ पिला
था। क्या उसीका ? हाँ। उस शान्तिदायी हाथ के बिना उसकी
कती रगों में कौन शान्ति पहुँचाता ? उसने हाथ पकड़ा—हाँ, वही
थ। उसने ज़ोर से हाथ पकड़ा। इस जन्म में—जन्म-जन्म में—वह
थ कभी नहीं छूटेगा। दूसरा हाथ उसके कपाल पर फिरा, कितनी
दुता से! उसने आँखें खोलने का प्रयत्न किया, परन्तु वह निष्फल
ाया। उसे उसका सुकुमार, सुडौल और तेजस्वी मुख दुबारा देखना
था, लेकिन बड़ी अजीब-सी बात थी कि जब वह उसे देखने का प्रयत्न
करता, तब उसके बदले उसे एक दाढ़ीवाला बुड्ढा मुँह दिखाई देता।
यह उसका मुख नहीं था, किसी वृद्ध और परिचित पुरुष का था।
उसने उस सुकुमार मुख को फिर देखने का प्रयत्न किया, परन्तु उसकी
आँखों में अभी एक वृद्ध और सूखे-से आदमी का मुँह आता रहा।
स्नेहसिक्त छोटी आँखें उसको देख रही थीं। उनमें आँसू छलछला
रहे थे।

उसने प्रयत्न करके आँखें खोलीं, मुँह पहचाना। उसने बचपन में
उसे देखा था। इस मुख से उसने गायत्री सीखी थी, उस हाथ से उसने
कलम पकड़ना सीखा था। किसका ? उसे याद आया—वह
था राजगुरु नन्दिदत्त का।

'राजगुरु,' वह बोला और बैठना चाहा, परन्तु उसकी कमर फटी ज
रही थी, इसलिए वह एकदम नहीं बैठ सका। नन्दिदत्त ने उसे सहा
दिया और वह भयाकुल चारों ओर देखने लगा।

यही भम्भरिया गढ़ था, जिसमें वह आया था; यही शिव-मनि
था, जिसमें उसने बाण के टुकड़े पड़े हुए देखे थे। वृद्ध राजगुरु उ
ओर देख रहा था। इसके अतिरिक्त सब-कुछ वैसा ही निश्चेष्ट था

'वत्स, शान्त हो। बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। अभी से ऐसा
... कैसे काम चलेगा ?'

दूर पर एक विचित्र ध्वनि वाला रणसिंघा बजा। उसके बाद स्थान-स्थान पर रणसिंघे बजे। यवन-सेना के बीच मार्ग हुआ और अमीर अपनी छावनी से बाहर निकला। पचास डके वाले घोड़े दोनों ओर चले और उनके बीच निशान वाले पच्चीस-तीस घोड़े बढ़े। उनमें सबसे आगे हरी पगडी और लाल तथा बड़ी दाढ़ी से शोभित प्रचण्डकाय अमीर काले घोड़े पर आ रहा था। उसके आसपास छठ के चन्द्रमा के समान स्वर्ण की आकृति वाले निशान लिये घुड़सवार ठुमुक रहे थे।

चारों तरफ फैले हुए इस आसुरी प्राबल्य को देखकर भीम की रगों मे क्रोधाग्नि की लपटें दौडने लगी। उसके मस्तिष्क में जैसे हथौड़ों की चोटें पड़ने लगी। एक ही छलांग मे वह वीरा द्वारा तैयार किये घोड़े पर सवार हो गया और रकाबों पर खड़े होकर आसपास खड़े योद्धाओं पर दृष्टि डाली।

'मेरी, पाटण की और भगवान् सोमनाथ की लाज तुम्हारे हाथ है। वीरा, स्वर्ग के द्वार खुलने ही वाले है। एक-एक क्षत्रिय वीर हजारों यवनों को मारेगा। जो पैर पीछे हटाए वह क्षत्रिय का जाया नही।'

और राय रत्नादित्य भी हर्षातिरेक मे अपने घोड़े पर उछला और तलवार निकालकर बोला, 'भीमदेव महाराज की जय!'

आसपास खड़े योद्धाओ ने घोषणा को दुहराया। भीमदेव महाराज ज़रा रुके, हंसे और फिर तलवार चमकाकर भयंकर आवाज़ मे जयध्वनि की, 'जय सोमनाथ!' सैनिको ने उसे दुहराया और उसकी प्रतिध्वनि अमीर के कानों मे ऐसे पड़ी जैसे कहीं गड़गड़ाहट हो रही हो।

अमीर दाढ़ी पर हाथ रखकर इस गढ की ओर देखता रहा। अपने विश्व-विजय के क्रम में उसने ऐसे अनेक गढ़ों पर आक्रमण किया था, परन्तु यह धाम उन सबसे श्रेष्ठ था। यहाँ आने के लिए उसे अज्ञात रेगिस्तान को पार करना पड़ा और अपूर्व साहस दिखाना पड़ा था। इस समय उसकी प्रचण्ड सेना तैयार थी; सम्मुख भयकर प्रतिज्ञा लेकर छोटी-सी क्षत्रिय-सेना खड़ी थी। क्षण-भर के लिए उसके मन में दया का सचार हुआ। 'हज़ारों राजपूत सेनाएँ कट गईं, तो यह भी कट जाएगी। अल्लाह और उसके पैगम्बर आली की उस पर मेहरबानी थी।

बात की। बापा को विश्वास था कि तुम दोनों उनके कुल को तारने वाले हो।'

'फिर ?'

'फिर कुछ दिन में पता चला कि गजनी का अमीर असंख्य सेना लेकर भगवान् सोमनाथ को तोड़ने के लिए आ रहा है। हम इस बात को सुनकर खूब हँसे,' राजगुरु ने निःश्वास छोड़ा।

घोघाबापा ने मूंछों पर ताव दिया और अट्टहास किया, 'आ तो सही, मेरे बेटे ! लोहकोट में भीमपाल बैठा है और मुलतान में अजयसिंह की आन है। रेगिस्तान के मुंह पर मैं हूँ और सपादलक्ष में है मेरा वीर बालमदेव। आ तो सही, तुझे भी स्वाद चखाऊँ।'

'फिर ?' सामन्त ने पूछा।

'कुछ दिन बीते और दुखद समाचार मिले। जयपाल के पुत्र भीमपाल ने अपनी कीर्ति पर पानी फेर दिया। उस कायर ने म्लेच्छ को मार्ग दे दिया; अपने को बचाकर प्रतिष्ठा को बेच दिया।' वृद्ध ने गर्दन घुमाई। सामन्त भी चुप बैठा था। अपने को बचाकर प्रतिष्ठा को बेचने वाले एक-दो उदाहरण उसने भी देखे थे।

'और फिर,' नन्दिदत्त आगे बढ़ा, 'मुलतान ने म्लेच्छ का स्वागत किया। सूर्य और चन्द्र के वंशज मुख में तिनका लेकर उसकी शरण गये। दिन-रात गजनी के अमीर ने मुलतान में मौज की। राजपूत गौ-ब्राह्मण की रक्षा छोड़कर भगवान् से द्रोह करने उसके साथ हो लिये। म्लेच्छ ने बापा को सन्देश भेजा।'

'क्या ?'

'हम सब बैठे थे राजगढ़ में, म्लेच्छ की बातें सुनने। जब से मुलतान में म्लेच्छ आया था तब से घोघाबापा ने बोलना बन्द कर दिया था। तुझे पता है कि जब उनको क्रोध आता था तब वे कैसे लगते थे। उनकी आँखें बिजली की तरह चमकने लगीं। उनके होंठ लोहे के चिमटे की तरह बन्द हो गए और उनकी मूंछें क्रोध में खड़ी हो गईं। जब उनको ऐसा गुस्सा आता था तब उनसे मेरे सिवाय कोई बोल भी नहीं सकता था। उस समय मुझसे भी कुछ नहीं बोला गया।'

कमरबन्द था, जिसमें मणि-जटित तलवार लटक रही थी। छ: आदमी भरे हुए तरकश लेकर पीछे दौड़ते थे और उनके अविश्रान्त हाथों के लिए बाण जुटाते थे। हाथ उनका शकुन वाला था; जहाँ उठता वहाँ कोई-न-कोई धराशायी अवश्य होता।

और मन्दिर के शिखर की एक ऊँची अटारी पर गंगा और चौला, भयभीत होकर एक-दूसरे से लिपटी, इस कलगी पर टकटकी लगाए बैठी थीं। 'ओ गया'—'ओ-ओ'—'ओ मेरे बाप,' 'ओ भगवान्' आदि शब्द दोनों के मुख से निकल जाते थे। कलगी दृष्टि से ओझल होती तो चौला घबराकर गंगा की गोद में छिप जाती। कलगी के उछलने के साथ ही उसका हृदय उछलता और बाणावली के बाणों के छूटने के साथ ही उसके पग बैठे-बैठे भी नृत्य करते। उसके प्राण उसकी आँखों द्वारा इस कलगी पर टिके थे। वे कलगी के गिरने के साथ ही निकल जाने को तैयार थे। इतने में पीछे से गुरुदेव आये। कुछ समय से वे भी महाराज का शौर्य देख रहे थे।

'गुरुदेव,' चौला ने नमस्कार करके पूछा, 'महाराज रुद्र के अवतार हैं न?'

गुरुदेव हँसे, 'हाँ बेटा, हैं। इसमें सन्देह क्या है?' और वे त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा करने चले गए।

: ५ :

गुरुदेव जब पूजा करने गये तब उनके हृदय में कुछ शान्ति थी। उन्होंने भीमदेव के शौर्य की बातें तो बहुत-सी सुनी थीं, परन्तु आँखों ने उसे आज ही देखा था। वह ऐसा अद्भुत है, इस बात की उन्हें कल्पना भी नहीं थी। फिर उन्होंने दोनों सेनाओं के बल का अनुमान भी लगाया था। अमीर की सेना का जितना अनुमान लगाया था, उससे वह बहुत बड़ी थी; परन्तु भीमदेव का बल भी जितना समझा गया था, उसकी अपेक्षा कई गुना अधिक था। उन्हें यह स्पष्ट दिखाई दिया कि यह सब भोलानाथ की कृपा थी।

जब वे त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर में गये तब उन्हें अचम्भा किसीने बाहर के दरवाजे के ताले तोड़ डाले थे। वह यह मानक

'तिलक ने जवाब दिया, "जी हाँ।" और सालार मसूद मूँछों पर ताव देता रहा। जैसे आकाश के फटने पर बिजली गिरती है, वैसे ही कूदकर खड़े हुए घोघाबापा की आवाज़ गढ़ को हिलाने लगी, "जा, अपने मालिक से जाकर कहना कि जब तक घोघाबापा की एक भी रक्त की बूंद शेष है तब तक वह रेगिस्तान में पैर रखे तो सही।" और जैसे वज्राघात से पहाड़ टूटता है वैसे ही घोघाबापा ने एक लात मारकर हीरे-मोती के थाल को द्वार के बाहर फेंक दिया।'

'धन्य है बापा,' सामन्त ने कहा।

'धन्य ? अरे, उस क्षण घोघाबापा रुद्र के अवतार थे। उनकी आँखों में सहस्र सूर्य प्रकट हुए थे, उनके स्वर में रुद्रों की हुंकार थी, उनकी भुजाओं में परशुराम का शौर्य था। बापा बिना एक शब्द बोले वहाँ से चले गए और वे सन्धि की भेंट लाने वाले उतरे हुए चेहरे से एक-दूसरे को देखने लगे।'

: ५ :

'पन्द्रह दिन तक हमने तैयारी की—गढ़ को सँभाला, हथियार तैयार किये, चारणों के गान सुने। तिलक करके सूर्यवंशी राजा तैयार हुए। नाना प्रकार के वाद्य-यन्त्र बजने लगे। चौहान वधुओं ने पतियों को उत्साहित किया। मैं शतचण्डी का पाठ करने लगा।

'एक दिन हम गढ़ पर खड़े टकटकी लगाए देख रहे थे और गज़नी की सेना क्षितिज पर से आती ऐसी दिखाई दे रही थी जैसे शेषनाग सरसराता हुआ चला आता है। मैं तो भयाकुल हो गया; सेना ऐसी होती है, इसकी तो मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। मैंने घोघाबापा की ओर देखा। उनकी आँखें विकराल बन गई थीं, उनका दायाँ हाथ कटार के साथ खेल रहा था, "बापा, मैंने यह नहीं सोचा था कि यह सेना इतनी बड़ी होगी।"

'घोघाबापा खिलखिलाकर हँसे, "नन्दिदत्त, जिसके साथ त्रिशूलधारी है उसका बाल-बाँका करने वाला कौन है ?" कहकर वह कुछ देर तक आती हुई सेना को देखते रहे और फिर एकदम मुड़कर मेरा हाथ पकड़ा, "ब्रह्मदेव, तू हमारा कुलगुरु है, तेरे आशीर्वाद से तेज प्रकाशित होता है।

में तनिक भी कसर न रखी। उसके अधीन सैनिकों ने भी अथक परिश्रम किया और बहुतों ने तो भगवान् की सेवा में प्राण भी दे दिए। परन्तु इतना होते हुए भी कछुए खाई पार करके इस ओर सीढ़ियाँ लगाने लगे। घुड़सवार पानी में उतरकर कछुओं की मदद को दौड़े। हाथी उस किनारे पर आ लगे और उनके ऊपर खड़े धनुर्धर कोट पर खड़े सैनिकों में भगदड़ मचाने लगे। सौभाग्य से दुश्मन ने मुख्य हमला कोट के बीच के दरवाज़े पर किया था और अमीर तथा उसके सेनापतियों का ध्यान उसी पर था, इसलिए जूनागढ़ी दरवाज़े पर मिली हुई सुविधा से वे लाभ न उठा सके।

'जा, जा,' परमार ने विश्वासी नायक से कहा, 'महाराज और राय से कह आ कि आदमी भेजें, नहीं तो जूनागढ़ी दरवाज़ा दोपहर के बाद फतह कर लिया जाएगा।'

'अच्छा बापू,' कहकर नायक घोड़ा दौड़ाता महाराज और राय से सन्देश कहने गया।

जब भीमदेव महाराज को यह खबर मिली तब दोनों दलों ने बीच के दरवाज़े पर बैठकर खेल-सा खेलना शुरू कर दिया था। आक्रमण का ज़ोर कम हो गया था। पट्टणियों की विनाशकता भी कम हो गई थी।

नये घुड़सवारों का भरती होना बन्द हो गया। नये कछुए आते हुए रुके। तीन सौ के लगभग खाई में हलचल मचा रहे थे और ऊपर से पट्टणी पत्थरों के प्रहार से उनके प्राण ले रहे थे। परन्तु अभी तक कोट पर सीढ़ी लगाने का सौभाग्य किसीको नहीं मिला था।

'विमल, तू यहाँ का ध्यान रखना, मैं जूनागढ़ी दरवाज़े पर जाता हूँ, वहाँ परमार कठिनाई में है। अपने आधे बाणावली मेरे साथ चलें, लेकिन दुश्मन को बिना खबर दिये।' यह बताने के लिए कि वे स्वयं वहाँ हैं उन्होंने अपनी पाग विमल के सिर पर रखी और उसका टोप स्वयं पहना तथा परमार की सहायता के लिए दौड़े।

राय ने भी द्वारका दरवाज़े पर रंग बाँध रखा था। उसकी सावधानी से और उसके सोरठी तीरन्दाज़ों की विनाशक निशानेबाज़ी से

लगें और सोमनाथ भ्रष्ट करने के मनसूबे तो मन-के-मन में ही रह जाएँ। पूरी रात उसकी सेना में दौड़-धूप होती दिखाई दी; मशालें दौड़ीं, कुछ घोड़े दौड़े, कुछ डंके बजे और पौ फटने पर शेषनाग के समान यह प्रचण्ड सेना गढ़ की बगल में होकर रेगिस्तान में आगे बढ़ने लगी। यवन ने हार खाई; घोघागढ़ रहा सदैव की भाँति दुर्धर्ष और दुर्जेय। हमारे कण्ठ में से निकली "हर हर महादेव" की विजय-ध्वनि वर्षा-ऋतु की गर्जना की भाँति यवन-सेना को भयभीत बनाने लगी।

: ६ :

'घोघाबापा के क्रोध की सीमा न रही। उनका हाथ तलवार की मूंठ पर फिर रहा था, उनकी मूंछें क्रोध में फरफराती और आँखें चमकती थीं मानो वे भूखे और भूले हुए बाघ की हों और उन्होंने गर्जना की, "कायर, मेरे हाथ से छूटना चाहता है!" हमने उनके मन की बात समझ ली, उनको तो पीछे की यवन-सेना का संहार करना था। रानियाँ काँप उठीं। चौहान वीरों का साहस न हुआ। हम थे गिने-चुने, यवन थे शतसहस्र। महादेवजी को बचाने की अपेक्षा यम के मुख में जाना! मेरी कल्पना रुक गई। मैं चुप होकर शिवकवच का पाठ करने लगा।

'घोघाबापा फिर बोले—नव्वे वर्ष के परम गौरवान्वित वार्धक्य की शोभा से सबको मात करते हुए, मानो उन्हें भगवान् सोमनाथ ने ही प्रेरित किया हो, "मैंने नव्वे वर्ष तक सोमनाथ की पूजा की है; सत्तर वर्ष मैं रेगिस्तान का स्वामी रहा हूँ; मेरी आज्ञा के बिना पक्षी भी यहाँ से आगे नहीं गया और मैं म्लेच्छ को मार्ग दे दूँ, सोमनाथ को भ्रष्ट करने के लिए? कुलकलंको! रहो यहाँ और भोगो अपनी कायरता द्वारा उपार्जित कीर्ति को। मैंने जीवन-भर सोमनाथ की जय बोली है और जब तक मैं जीता रहूँगा सदैव सोमनाथ की जय रहेगी।"

'—और दुर्गपाल ने लड़खड़ाती जीभ से हाथ जोड़कर कहा, "बापा, दुश्मन इतने अधिक हैं कि हम चपेट में पिस जाएँगे।" और बात सच थी। लेकिन घोघाबापा अकड़ गए। उनका शीश गगन को छूने लगा, मुझे लगा कि अब वे दुर्गपाल पर प्रहार करेंगे।

'बापा सिंह की भाँति गरजे, "मूर्ख, रिपु अधिक हैं और हम थोड़े,

समान दीप्तिमान चौहान वीर, जगमगाते वागे, केसरिया पाग और चमकते खड्गों से वैरियों को अन्धा बनाते, घुंघरू वाले घोड़ों और ऊँटों को नचाते गढ़ से उतरे। और सबसे पहले चार गज आगे-आगे उतर रहे थे चौहान-शिरोमणि बापा। गढ़ से मैं वृद्ध आँखों से इस विजय-यात्रा को देख रहा था। रेगिस्तान का राज्य अपनी आन की रक्षा के लिए समस्त कुल का बलिदान दे रहा था। धन्य है, घोघाबापा, धन्य है! देवों ने चन्दन-वृष्टि की; घोघागढ़ केसरिया छींटों से शोभित हो रहा था। जब चन्दन के छींटे पड़े तो घोघाबापा ने मुड़कर मेरी ओर देखा। वर्षों के गौरव से युक्त उनका भव्य मुख मेरी ओर, अपने गुरु की ओर, आत्मसन्तोषपूर्ण मृदु हास्य से देख रहा था। वे मुझे पूछ रहे थे, "मैं जिया हूँ और मैं ही मरता हूँ, क्या यह बात नहीं है?" मैंने गद्‌गद कण्ठ से उत्तर दिया, "धन्य है, घोघाराणा, धन्य है!"

'नीचे यवन-सेना स्तब्ध बनी देख रही थी और शीघ्र ही इस दिव्य दर्शन से मुग्ध होकर "धन्य-धन्य" कहने लगी। पहले कोई इस बात को नहीं समझ सका कि घोघाबापा चली जाने वाली सेना से मिलने क्यों दौड़ रहे थे। बाद में उन्होंने समझा—काल के समान चौहान वीर मरने या मारने बढ़े आ रहे थे। यवन-सेना में "अल्ला हो अकबर" की गर्जना हुई। हरी पगड़ी और लाल दाढ़ी से पहचाने जाने वाला अमीर हाथी पर झूमता हुआ आज्ञा दे रहा था। सेना ने लाखों शस्त्रों द्वारा चौहान वीरों का स्वागत किया। घोघाबापा को जोश आ गया। जैसे कोई तैराक समुद्र की तरंगों को चारों ओर फेंकता आगे बढ़ता है वैसे ही घोघाबापा आगे बढ़े। उनकी गर्जना गढ़ तक सुनाई देती थी। जहाँ उनका हाथ फिरता था, मनुष्य-समूह में भगदड़ मच जाती थी। उनकी केसरिया पाग इस भीड़ में भी चमकती-चमकती आगे बढ़ी—फिर अदृष्ट हुई, फिर चमकी···' और नन्दिदत्त रो पड़ा। सामन्त तो पागल की तरह देख ही रहा था।

'—और चमकी—और गिरी। हजारों दुश्मनों की तलवारें उनकी मृत्यु-शैया पर छत्र की तरह तनी थीं। अवसान हुआ, घोघाबापा कैलाशवासी हुए, उनका जरी का झण्डा झुका। मुझे अपना कर्तव्य-पालन करना

ने कहा और विचार करते-करते मूँछों पर ताव देने लगे, 'मुझे लगता है कि संध्या होने पर यहाँ थोड़े-बहुत आदमी रखने पड़ेंगे।'

'अच्छी बात है; मैं अभी थोड़े-से आदमी भेज देता हूँ।'

'महाराज, आप तो सवेरे से थक गए हैं और मुझे विशेष श्रम करना नहीं पड़ा है। अभी सब ओर शान्ति भी है, इससे जरा थकान उतार लें तो अच्छा हो। न जाने रात को क्या हो?'

भीमदेव महाराज कोट से नीचे उतरे तो देखा कि एक ओर कितने ही साधु मरे हुए सैनिकों के शवों को इकट्ठा कर रहे थे। गुरुदेव अन्तर-कोट के मन्दिरों में घूम रहे थे और घायल सैनिकों की देख-भाल कर रहे थे। जिन गंग सर्वज्ञ की चरण-रज को राजा अपने मस्तक पर चढ़ाते थे वे ही आज एक सामान्य वैद्य की भाँति पीड़ितों का दुःख दूर करने में लगे थे। दीपा कोठारी जो कोई आता था उसे खिलाने-पिलाने में लगा था। इस समस्त व्यवस्था को देखते, किसीको कुछ और किसीको कुछ प्रोत्साहन देते और बीच में मिलने वालों का अभिनन्दन स्वीकार करते महाराज अपने डेरे की ओर आये।

परकोटे में मन्दिर के आगे हरदत्त मिला। वह भीमदेव महाराज के सामने खड़ा रहा और माथे पर चिमटा रखकर बोला, 'तेरे सिर पर मौत घूम रही है, महामाया को भ्रष्ट करने वाले!' भीमदेव महाराज ने पहले तो तलवार खींची, परन्तु फिर निःशस्त्र बाबा को देखकर हँसते हुए चले गए। हरदत्त अपने रास्ते चला गया।

जब महाराज अपने डेरे पर आये तो उनके पगों में स्फूर्ति थी। अन्दर आकर उन्होंने चारों ओर आशा-भरी दृष्टि डाली। वीरा समझ गया, 'महाराज, यह पागल लड़की है। वह अटारी है न? उसी में माँ के साथ बैठी सारे दिन आपको देखा करती है।'

'वीरा, यदि सारा संसार ही ऐसा पागल हो तो कितना अच्छा हो? मैंने उसे एक बार अपनी ओर देखते हुए देखा था।'

'अब तो उसे आपके अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं,' वीरा ने मज़ाक किया।

'जरा ठहर तो सही, तुझे भी नहीं सूझेगा।'

भागा और अपने सोमनाथ के लिंग पर अपने सिर को दे मारा। मुझे वहीं प्राण छोड़ने की इच्छा हुई, परन्तु बापा ने मुझे वचन से बाँध दिया था। तुझसे और तेरे बाप से मुझे सारी बात कहनी थी। दयानिधि, उसी क्षण मुझे क्यों न उठा लिया?' नन्दिदत्त चबूतरे पर सिर पटककर रोने लगा।

कुछ देर में स्वस्थ होने पर नन्दिदत्त ने बात आगे चलाई, 'भाई, फिर मैं गढ़ पर वापस गया और नीचे देखा तो सात घड़ी में तो घोघा-बापा के वीरों का नामोनिशान भी नहीं रहा था। एक-एक वीर कल्पनातीत पराक्रम दिखाकर शम्भु की शरण गया था और यवनों की एक टुकड़ी गढ़ पर चढ़ने की तैयारी कर रही थी।

'मुझे लगा कि मेरा भी समय आ गया। फिर मुझे अपने गढ़ की उस कोठरी की याद आई, जिसमें से बाहर निकलकर भाग जाने का रास्ता है और मैं उसमें जा घुसा। यवन नाचते-कूदते, "अल्ला हो अकबर" पुकारते आये। उनका ख़याल था कि अन्दर से कोई बचाव करेगा—लेकिन द्वार खुले थे। वे इस डर से कि कहीं छिपे हुए सैनिक बाण न छोड़ दें, धीमे-धीमे आये; लेकिन गढ़ की निर्जन गलियों को देखकर आश्चर्य में पड़ गए। वे पुकार लगाते चारों दिशाओं में फैल गए और मन्दिर के चौक में घुसे। मैंने छेद में से देखा कि उन्होंने जलती चिता देखी, छः सौ वीरांगनाओं के शव देखे और वे मुट्ठी बाँधकर भागे। लेकिन दो आदमी नहीं डरे। वे मन्दिर में घुसे; एक ने शिखर पर चढ़कर ध्वजा तोड़ी, दूसरे नराधम ने मेरे देव का लिंग तोड़ा। भगवान्, भगवान्! यह देखने के लिए मुझे क्यों बचाया?' और फिर राजगुरु रो पड़े।

'फिर वे चले। सर्पाकार सेना भी निकल गई। कांपता, बिलखता, केवल कर्तव्य के लिए प्राणों को सँभालता मैं बाहर निकला। भाई, अपना घोघागढ़, मेरे घोघाबापा का कीर्तिस्तम्भ श्मशान बन गया था। जो प्राणों के समान था वह भस्म हो गया था, लेकिन—लेकिन' नन्दिदत्त का कण्ठ रुँधने लगा, 'लेकिन मुझे अपने बापा का दाह-संस्कार करना था। भगवान् के लिए मरने का अधिकार उनका, मरने वाले को मोक्ष

मन में आया कि इस परिचित वृद्ध के मुख पर एक तमाचा परन्तु हाथ ने उसका कहना नहीं माना।

'चल बेटा, चल,' जैसे साँप को मन्त्र से वश में करते हैं गुरुदेव ने कहा। 'बेटा चल,' इन शब्दों में कुछ अधिकार की थी। शिवराशि ने एक बार प्रयत्न किया, परन्तु वर्षों की आदत इस सौम्य तथा स्नेहपूर्ण आवाज़ की मोहिनी से वह बच न सका। उ चारों ओर उग्र और शस्त्र-सज्जित योद्धाओं को देखा। उसने फिर गुरु की निर्भय आँखों को देखा और अनुभव किया कि यह योजना व्य ही नहीं की गई है।

'चल,' कहकर गुरुदेव ने उसके कन्धे पर हाथ रखा और शिवराशि भीतर से कुछ-न-कुछ करने के विचारों में डूबा पालतू जानवर की भाँति पीछे-पीछे चल दिया।

दोनों अदृष्ट हो गए और राय की 'भीमदेव महाराज की जय' की गर्जना ने मौन भंग कर दिया। सब स्वप्न में जागे हुए व्यक्ति की भाँति बोलने लगे। घोषणा हुई और मृदंग तथा शंख की ध्वनि के साथ सबने आज्ञा ली।

'मेरे वीरो, प्रसन्न होकर न बैठना। अभी हमें अपने कैलाशवासी वीरों का दाह-संस्कार करना है। पीछे खा-पीकर सबको अपनी-अपनी जगह तैयार रहना है। इस बात को कौन कह सकता है कि दुश्मन के क्या-क्या प्रपंच हो सकते हैं?'

और वहाँ से चलकर सबने द्वारिका दरवाज़े पर अपने साथियों का दाह-संस्कार किया। तीन हज़ार दो सौ वीरों ने वीरगति पाई थी। लगभग डेढ़ हज़ार दूसरे वीर घायल पड़े थे। सबको सन्तोष इतना ही था कि एक-एक गुजराती ने कम-से-कम पाँच-पाँच, सात-सात यवनों को मारा था।

रात को भीमदेव महाराज और राय फिर कोट पर चक्कर लगा कर, नीचे की सारी व्यवस्था देख आए और आगामी कल की तैयारी को देखकर अपने डेरे की ओर चले आए।

'महाराज,' राय ने कहा, 'मैं कुछ देर आराम करके फिर

के समान शुष्क, निर्निमेष और उन्मत्त नयनों से पृथ्वी की ओर देख
हा था।

'बेटा,' नन्दिदत्त ने आकर कहा, 'अब क्या सोचता है ?'

'मैं !' क्रूर और रसहीन हँसी हँसते हुए इस सहसा वृद्ध हो जाने वाले बालक ने कहा, 'मैं क्या सोचूंगा ? मैं अपने पिता की खोज में जाता हूं। और आप ?'

'तू ले चले तो तेरे साथ मैं भी चलूं। तू मिल गया तो मेरा जीना सार्थक हो गया। अब तो यदि शरीर रहा तो प्रभास जाकर सोमनाथ के चरणों में प्राण-त्याग करना है।'

'तो चलो। हमारे मार्ग समान ही हैं। सोमनाथ जाने से पहले तो अमीर मिलेगा। वह नहीं या मैं नहीं।'

और दो घड़ी ठहरकर सामन्त नन्दिदत्त को लेकर भम्भरिया से बाप और यवन-सेना की खोज में चला, लेकिन जिस रास्ते से आया था उससे नहीं। उसके पिता ने कहा था कि वह रणयम्भी माता के मन्दि
से सीधा रेगिस्तान में होकर भम्भरिया आयेंगे, इसलिए उसने उ
रास्ते पर खोजने का निश्चय किया। नन्दिदत्त ने भी समर्थन किय
जब वह बालक था तब घोघाबापा उसके पिता को लेकर इस रास्
सोमनाथ का लिंग लेकर आये थे। जब रास्ता था तो सज्जन चौ
क्यों नहीं आये ? दोनों की कल्पनाओं के सामने एक ही भयंकर
उपस्थित हुआ।

आपका स्वागत करने के लिए बैठी हूँ।'

'अरे, तुझे खोजते-खोजते मेरी आँखें थक गई।'

'खड़े रहिए शिवजी, मैं आपकी पूजा करने के लिए चन्दन और फूल लाई हूँ। आपने आज त्रिपुरासुर को हराया है, इसलिए बिना पूजा के काम नही चल सकता।' कहकर वह महाराज के हाथों से छूटकर नीचे उतरी।

'चौला, यह हार एक के लिए नही दो के लिए है,' कहकर भीमदेव ने चौला की गरदन में भी अपना हार डाल दिया। दोनों खूब हँसे।

'भोलानाथ, प्रसन्न होओ! भगवान् प्रसन्न होओ! और यह भी बताओ कि सदैव ऐसे ही रहोगे न?' चौला ने कहा, 'पार्वती और परमेश्वर।' इसके बाद चौला भीमदेव के हाथों में समा गई। अद्भुत रात्रि थी। चन्द्रमा भी अमृत-वर्षा कर रहा था। चौला आँख मीचकर अपने भगवान् की शरण में गई। उसने ऐसे सुख की कभी कल्पना नहीं की थी। वह जन्म से नर्तकी थी, भक्ति-भाव से पुष्ट बन गई थी। वह दोनो हाथ महाराज के गले मे डाले लटकी रही। भीमदेव की शिराओं मे भी हलचल मची। उसे अधर उठाकर वे अपने कमरे मे लाए और किवाड बन्द कर लिए।

हाथ मे नगी तलवार लेकर जीने पर बैठा नन्दी, चन्द्रमा की ओर एक आँख मीचकर देखता हुआ मूँछों-ही-मूँछो मे हँस रहा था।

: ४ :

राय को जो चिन्ता हुई थी, वह अनुचित नहीं थी। महाराज गये और शीघ्र उनके कान मे कुछ आवाज पड़ी। समुद्र के किनारे ऐसे स्थान पर कुछ ठोका-पीटी और पानी मे गिरने की आवाज हो रही थी, जिन पर उनकी दृष्टि नही पहुँचती थी। दूर किनारे पर ऐसी आवाज सुनाई दे रही थी जैसे कोई नाव पानी मे उतारी [illegible] या कोई तैर रहा है।

चन्द्रमा के प्रकाश मे भी वे कुछ न देख सके, परन्तु उन्होंने [illegible] समय भिन्न-भिन्न कँगूरो पर रखवाली [illegible] सेनापतियों को [illegible] भेजकर खबर कराई और बिना [illegible] के उन्होंने रात में एक हजार धनुर्धर इकट्ठे कर [illegible] इस तरह, जहाँ चौ

पदमड़ी को पकड़कर सज्जन स्वस्थ और अडिग खड़ा था—इसी रास्ते पर अनहिलवाड़ है। लेकिन उस पर से सबकी श्रद्धा उठने लगी थी। अकेला सालार मसूद ही श्रद्धावान् था। सायंकालीन वायु बहने लगी और रेत उड़ना शुरू हुआ। हाथी बैठकर हाँपने लगे। तेज़ घोड़े तड़पने लगे। ऊँटनियाँ पीछे लौटने लगीं। आदमी पानी-पानी चिल्लाने लगे।

सुलतान ने सेना को रोककर मसूद को हुक्म दिया कि वह सज्जन और कुछ अन्य पथ-प्रदर्शकों को लेकर एक दिन की मंज़िल आगे जाय, बाकी सेना तीन टुकड़ियों में कुछ अन्तर से आगे बढ़े और जो निर्बल हों वे घोड़े और हाथियों के साथ अन्तिम टुकड़ी में सबसे पीछे आयें। यह हुक्म सज्जन को अच्छा नहीं लगा, परन्तु और कोई चारा न था। वह पश्चिम की ओर घिरते बादलों को देखकर प्रार्थना करने लगा, 'भगवान् रुद्र ! आपकी आँधियाँ कहाँ चली गईं ? किसलिए विलम्ब कर रहे हो ?'

सज्जन सालार मसूद के साथ चलने लगा, लेकिन वह घड़ी-दो-घड़ी भी आगे नहीं गया था कि रेत के बवण्डर उठने लगे। एक-दो बार तो वे ऊँटनी को रोककर जैसे-तैसे लपेट में आने से बचे। पथ-प्रदर्शकों की बात सच जान पड़ी। सामन्त अडिग था, पर मसूद विचलित होने लगा।

पदमड़ी वह समझ गई थी। सभी ऊँटनियाँ आगे जाने में घबरातीं, परन्तु वह तो झूमती हुई आगे-ही-आगे दिखाई देती थी। सज्जन दूसरे पथ-प्रदर्शकों को कायर बताता और कहता, 'जब मेरी ऊँटनी चल रही है तब तुम्हारी ऊँटनियों के पेट में क्या दर्द होता है ?'

लेकिन पश्चिम दिशा में अधिकाधिक रेत उड़ता दिखाई दिया। मसूद गरदन निकालकर सज्जन की ओर देखने लगा, परन्तु वह तो ज्यों-का-त्यों था—स्वस्थ और हँसमुख।

'यह क्या ?' मसूद चिल्लाया।

'यह तूफ़ान अभी खतम हो जाएगा।'

हवा गरम होने लगी, रेत के चक्कर खाते स्तम्भ वायुवेग से दौड़ते हुए दिखाई दिए।

'फिर तो काम सरल हो गया। दुर्लभसेन ने सवेरे आनन्द से राज्य करना आरम्भ किया, दोपहर को नन्दिदत्त नामक ब्राह्मण घोघावापा के भूत से घबराकर दुर्लभसेन की शरण मे गया; दूसरे दिन आसपास के भयभीत ग्रामीणों ने भूत से घबराकर पाटण की शरण ली। भूत की कथा से पाटण के वीर कॉंपने लगे; महाराज दुर्लभसेन दरवाज़े बन्द करके भीतर बैठ गए।'

राय खिलखिलाकर हँस पडे, 'फिर ?'

'तीसरी रात को वृद्ध नन्दिदत्त को भूत आता हुआ दिखाई दिया। योद्धा घबराकर घर में घुस गए; नन्दिदत्त ने गढ के दरवाज़े वाले चामुण्डेश्वर के मन्दिर में भूत को भगाने के लिए यज्ञ आरम्भ किया। बाहर से आये हुए ग्रामीण वहाँ एकत्रित हो गए।'

'फिर क्या हुआ ?'

'फिर ठीक आधी रात के समय गढ के किवाड़ खटके। सब लोग थर-थर कॉंपने लगे। घोघावापा का भूत अकेला अन्दर आना चाहता था। 'ना' कहने की किसीकी हिम्मत न हुई। दुर्गपाल ने दरवाज़ा खोला। भूत अन्दर आया, नन्दिदत्त ने भूत की आवभगत की। ग्रामीण शस्त्र-सज्जित योद्धा बने और उन्होने राजगढ को अपने अधिकार में ले लिया। भूत ने ढिंढोरा पिटवाया कि पाटण पर घोघावापा के भूत ने कब्ज़ा कर लिया है और वहाँ मरे हुए आदमियो को छोडकर दूसरा कोई नही रह सकता। जो यवन वहाँ थे उनको ठण्डा कर दिया गया। जो राजपूत सामने आये वे भी मौत के घाट उतार दिये गए। जो शरण में आये उन्हे साथ ले लिया गया।'

'और दुर्लभसेन का क्या हुआ ?'

'वह तो घोघावापा के चरणों में गिर पड़ा और उसने राज्य की अभिलाषा छोडने की शपथ ले ली। पीछे उसे और उसके दो-चार सेवकों को जगल में खदेड़ दिया गया।'

'शाबाश, शाबाश, चौहान ! फिर क्या हुआ ?'

'लूला मेहता को पाटण सौंपकर भीमदेव महाराज के नाम पर सेना तैयार की जाने लगी। मेहताजी भी खम्भात से सेना लेकर आये। जो

था। जब घोघावापा यह जानेंगे तो उसके पैरों की पूजा होने
ी। जब तक आकाश में सूर्य तपेगा तब तक, युग-युग तक, जहाँ
ं भी वीरता की पूजा होगी वहाँ पराक्रम का वर्णन किया जाएगा तो
का—चौहान शिरोमणि सज्जन का—जिसने अकेले ही यवनों से
मनाथ के मन्दिर को बचा लिया।

आँधी का तेज उसे अन्धा बनाने लगा। पदमड़ी अधीर हो रही
थी—क्या यहीं खड़े रहकर मरना है? और उसकी आँखों ने देखा
लम्बी दाढ़ी और हरी पागवाला विकराल अमीर, आँधी में दबती और
रेगिस्तान में तड़पती यवन-सेना, और सेना के असंख्य शवों पर चक्कर
लगाता गिद्धों का झुण्ड।

वह हँसा और नीचे झुककर पदमड़ी की गरदन से लिपट गया और
उससे मिलकर प्रेम से उसका चुम्बन लिया। 'पदमड़ी,' उसने प्रेम से
कहा, 'वहू, लौट पीछे, मेरी लाडली, भगवान् सोमनाथ की, त्रिभुवन के
स्वामी की बन तू तीसरी आँख।' कहकर वह ऊँटनी को लौटाकर वायु-
वेग से आँधी के सामने चल दिया।

मसूद और पथ-प्रदर्शक जान लेकर भाग रहे थे, रास्ते में दो ऊंट-
नियाँ फिसलकर गिर पड़ीं और उन पर बैठे हुए पथ-प्रदर्शक पीछे रह
गए। मसूद को पीछे जाने की तनिक भी इच्छा न थी। उसे तो जाक
सेना को पीछे भागने की आज्ञा देनी थी। उसने सेना के पिछले भ
को आते देखा। उसने इसकी आज्ञा सुनी और सब जितना हो स
उतनी जल्दी भागने लगे।

मसूद नई और ताज़ी ऊँटनी पर बैठकर आगे बढ़ा और थोड़ी
आगे चलकर दूसरे भाग को पीछे लौटने की सूचना दी। उसके
सुलतान स्वयं था। उसे उसने पाँच पल में सब बात समझा दी।
लेकर भागने के सिवाय दूसरा रास्ता न था। उस महान् वि
क्षण-भर में ही भयंकर प्रसंग में निहित खतरे का विचार किया
तुरन्त ऊँटनी को हाँका, साथ में बड़े-बड़े सरदार लिये, ड
निशान लिये और सेना की व्यवस्था करने के लिए चारों ओ
लगा। जहाँ उसका निशान दिखाई देता, वहाँ हिम्मत लौट अ

'भगवान् लकुलेश !'

'हाँ, अभी-अभी उन्होंने—शंकर के अवतार ने—मुझे दर्शन दिये हैं,' उन्होंने कहा। शिवराशि ने ससम्मान उच्चारण किया, 'यह सारा स्थान घोरतम पापाचार से दूषित है।'

'यह तो मैं जानता हूँ।'

'और इस पाशुपत मत के आद्य प्रणेता ने मुझसे कहा, 'ये धर्म और सम्प्रदाय से द्वेष करने वाले सब-के-सब कुत्ते की मौत मरने वाले हैं। ये पाप के मन्दिर जलकर भस्म हो जाएँगे, इन पर गिद्ध मँडराएँगे।' और इन तपस्वियों में श्रेष्ठ ने मुझसे कहा, 'इस पापाचारियों के धाम को छोड़कर तू ऐसी जगह जा, जहाँ इसकी छाया का भी स्पर्श न हो सके और कोई नया तीर्थधाम खोजकर संसार को सिखा—पाशुपत धर्म की विजय; और प्रतिष्ठा कर भगवान् सोमनाथ और महामाया त्रिपुर-सुन्दरी की नवीन भक्ति की, उसी प्रकार जैसा कि मैं पहले कर चुका हूँ।'

कुछ दिन से राशिजी के भीतर होने वाले परिवर्तन को सिद्धेश्वर घबराहट के साथ देखा करता था। अब वे कमज़ोर खिलौने न थे, उनमें तेज, आत्म-श्रद्धा और किसी दैवी पुरुष जैसा भयकर व्यक्तित्व आ गया था।

'गुरुदेव,' जब से राशि ने गंग सर्वज्ञ से गुरुपद छीन लिया था तब से सिद्धेश्वर ने यह पद अपने गुरु को दे दिया था, 'मैंने तो जब अमीर की सेना देखी तभी समझ लिया था कि यहाँ रहने में कोई सार नहीं। और गुरुदेव, अरे गग सर्वज्ञ से आप कहे तो अभी खम्भात जाने की व्यवस्था कर दें। राव कमा लखाणी समुद्र में नावो में बैठे हैं।'

छेड़े हुए बाघ के समान शिवराशि सिद्धेश्वर की ओर घूरने लगे, 'इस पापी की सहायता लेकर जाने की अपेक्षा मुझे आत्म-शुद्धि में रहना अधिक अच्छा लगता है।'

'लेकिन फिर जाएँगे कैसे ?'

'मुझे जान बचाने के लिए नहीं जाना। मुझे तो भगवान् लकुलेश की आज्ञा के अधीन होना है और भगवती महामाया, दिव्य, प्रकाश

हुए और भी आगे आये।

पदमड़ी ऐसी दौड़ रही थी जैसी कि वह कभी नहीं दौड़ी थी। उसके पगों में विद्युत् की गति थी। वह भी समझती थी कि आज वह पार्थिव नहीं थी, दैवी थी।

इस प्रकार सूर्यदेवता ऊँटनी पर चढ़े आगे आ रहे थे। पीछे से जलते हुए रेत के कणों के गोले भयंकर सरसराहट करते बढ़ रहे थे और प्रचण्ड घोषणा सुनाई देती थी, "जय सोमनाथ!"

वे आगे बढ़े—वहाँ, जहाँ हज़ारों सैनिक औंधे मुँह पड़े हुए थे। पंखवाली पदमड़ी वहू चामुण्डा के व्याघ्र से भी विकराल उस देव-विनाशिनी सेना के ऊपर चढ़ी आ रही थी और अपने पैरों से खोपड़ियों का चूरा करती जा रही थी। वह आगे बढ़ी जाती और पीछे तप्त रेती के बगूले उनको जलाते निकल जाते, उनसे लिपट जाते, उन्हें ढक देते। उसे आँधी की सरसराहट से भी अधिक सज्जन की गर्जन सुनाई देती, "जय सोमनाथ!"

एक रेत के टीले पर खड़े होकर सुलतान महमूद ने आँधी पर चढ़कर आते हुए इस राजपूत को देखा।

'यह कौन ? क्या शैतान है ?" सुलतान महमूद ने पूछा।

'नहीं, यह तो घोघावापा का लड़का है।'

'क्या ?' कहकर वीरश्रेष्ठ गज़नी का अमीर मुग्ध हो गया। उसने कम्पित काया और भयग्रस्त हृदय से अपनी सेना के एक भाग को आँधी में अदृष्ट होते हुए देखा, उसने एक आह भरी, 'अल्लाह की मेहरबानी है कि तीन भाग किये; दो तो बच गए।' कहकर उसने ऊँटनी से उतरकर पश्चिम की ओर मुँह करके, घुटने टेककर अल्लाह और पैगम्बर का आभार माना।

आँधी क्षण-भर में सेना के एक भाग को दबाकर, निष्प्राण बनाकर टीले के आगे रुक गई। जब रुक गई तब सबके ऊपर चार-चार हाथ रेत का ढेर पड़ा था और उसमें सज्जन और पदमड़ी वहू ने एक-दूसरे की गरदन से लिपटकर अनन्त शान्ति पाई थी।

ले गया।

'महाराज, समय कम है और काम बहुत। मैंने सारी स्थिति राय को समझा दी है, पूछ लेना। पाटण में आपकी आन बनी हुई है। दामोदर मेहता लश्कर लेकर अमीर के पीछे पडे हैं। मारवाड और उज्जैन की सेनाएँ भी दो-चार दिन मे आ मिलेंगी। मैं खम्भात से नावें लाया हूँ। उनमें अनाज और शस्त्र हैं।'

'क्या कहता है ? शाबाश सामन्त, शाबाश !'

'अब मैं शीघ्र वापस जा रहा हूँ। कल फिर आऊँगा।'

'सामन्त, तू मनुष्य नही देवता है।

'वास्तव मे मैं मनुष्य नही, क्योकि यदि मनुष्य होता तो इतने दुःख से न जाने कब का मर गया होता।'

'ऐसा मत कह, तू मेरा दायाँ हाथ है।'

'अब मैं एक बात अपनी भी कहता हूँ,' सामन्त ने कड़ाई के साथ कहा।

'क्या ?' और भीमदेव आश्चर्यचकित होकर पीछे हट गए। सामन्त उग्र और भयकर हो गया। उसके हाथ में खजर खेलने लगा।

'क्या चौला का मोह क्षणिक है—थकी हुई रात का विश्राम-मात्र है या और कुछ ?' और उस प्रश्न के भीतर के निश्चित सकल्प ने भीमदेव के साहसी हृदय को भयभीत बना दिया।

'किसीने कहा ?'

'यह जन्म और वृत्ति से नर्तकी है। अवसर बीत जाने पर यह पाटण के चालुक्य के घर मे कैसे रह सकेगी ?'

भीमदेव समझे और हँसे, 'सामन्त, तेरा भय व्यर्थ है। चौला मेरे जीवन का सर्वस्व है। मैं इसे कभी नही भुला सकता।'

'यह गुरुदेव की पुत्री है, मेरी धर्म-बहन है। इसलिए यदि आज की रात के बाद यह पाटण की पत्नी न हो सके तो हम इसी समय फैसला कर लें,' कहकर सामन्त ने खंजर निकालकर भीमदेव की नंगी छाती पर रख दिया। सामन्त दृढ, भयकर और क्रोधित था।

भीमदेव खिलखिलाकर हँस पडे, 'चौहान, मुझे यदा सुन्दर थे

हुए और भी आगे आये।

पदमड़ी ऐसी दौड़ रही थी जैसी कि वह कभी नहीं दौड़ी थी। उसके पगों में विद्युत् की गति थी। वह भी समझती थी कि आज वह पार्थिव नहीं थी, दैवी थी।

इस प्रकार सूर्यदेवता ऊँटनी पर चढ़े आगे आ रहे थे। पीछे से जलते हुए रेत के कणों के गोले भयंकर सरसराहट करते बढ़ रहे थे और प्रचण्ड घोषणा सुनाई देती थी, "जय सोमनाथ !"

वे आगे बढ़े—वहाँ, जहाँ हज़ारों सैनिक औंधे मुंह पड़े हुए थे। पंखवाली पदमड़ी वहू चामुण्डा के व्याघ्र से भी विकराल उस देव-विनाशिनी सेना के ऊपर चढ़ी आ रही थी और अपने पैरों से खोपड़ियों का चूरा करती जा रही थी। वह आगे बढ़ी जाती और पीछे तप्त रेती के बगूले उनको जलाते निकल जाते, उनसे लिपट जाते, उन्हें ढक देते। उसे आंधी की सरसराहट से भी अधिक सज्जन की गर्जन सुनाई देती, "जय सोमनाथ !"

एक रेत के टीले पर खड़े होकर सुलतान महमूद ने आँधी पर चढ़कर आते हुए इस राजपूत को देखा।

'यह कौन ? क्या शैतान है ?" सुलतान महमूद ने पूछा।

'नहीं, यह तो घोघाबापा का लड़का है।'

'क्या ?' कहकर वीरश्रेष्ठ गज़नी का अमीर मुग्ध हो गया। उसने कम्पित काया और भयग्रस्त हृदय से अपनी सेना के एक भाग को आंधी में अदृष्ट होते हुए देखा, उसने एक आह भरी, 'अल्लाह की मेहरबानी है कि तीन भाग किये; दो तो बच गए।' कहकर उसने ऊँटनी से उतरकर पश्चिम की ओर मुंह करके, घुटने टेककर अल्लाह और पैगम्बर का आभार माना।

आंधी क्षण-भर में सेना के एक भाग को दबाकर, निष्प्राण बनाकर टीले के आगे रुक गई। जब रुक गई तब सबके ऊपर चार-चार हाथ रेत का ढेर पड़ा था और उसमें सज्जन और पदमड़ी वहू ने एक-दूसरे की गरदन से लिपटकर अनन्त शान्ति पाई थी।

सोलहवाँ प्रकरण

दूसरे दिन

: १ :

सूर्योदय हुआ। राजपूत सेना सुसज्जित होकर कोट पर खड़ी हुई। लेकिन अमीर की सेना ने अभी कोई धावा नहीं बोला था। द्वारिका दरवाज़े और जूनागढ़ी दरवाज़े के सामने थोड़ी-सी टुकड़ियाँ थी, इसलिए उधर से कुछ भय नहीं था। जो कुछ जमाव था वह मुख्य दरवाज़े के सामने ही था। आक्रमण का रूप क्या होगा, यह कहा नहीं जा सकता था।

महाराज ने सारी सेना को मुख्य दरवाज़े के आसपास खड़े होने की आज्ञा दी थी।

अमीर काल की भाँति अपने शिविर से बाहर निक[illegible] स्थान-स्थान पर घूम आया। अन्त में उसने हुक्म दिया [illegible] नरसिंघे फूंके गए और घुड़सवारों की दो फौजें, बीच में [illegible] छोड़कर, खाई की ओर बढ़ीं।

हुक्म दिया गया और सैकड़ों सैनिक [illegible] लेकर मध्यद्वार के सामने खाई की ओर दौड़े [illegible] आये; वैसे ही दोनों ओर की घुड़सवार फौजें [illegible] साथ हो ली। यह खाई के ऊपर पुल बाँधने [illegible]।

भीमदेव ने सब धनुर्धारी सेना मध्यद्वा[illegible] एक पंक्ति घुड़सवारों को थका रही थी [illegible] बढ़इयों को बेध रही थी। आका[illegible] सोमनाथ' की घोषणाओं से गूँज रहा [illegible]

परन्तु दुश्मन का यह हमला [illegible]।

मुखिया का सन्देश लेकर आये हैं। यह खबर सुनते ही सबके मुख पर अलग-अलग भाव छा गए। जो आशावान थे वे हर्षित हुए और जो हताश थे उन्होंने लम्बी आह भरी। सुलतान ने बैठकर आज्ञा दी, 'उनको अन्दर लाओ।' मसूद सोत्साह उठा और नवागन्तुकों को बुलाने गया। सब चुपचाप नई खबर की राह देखते हुए दरवाज़े की ओर देखने लगे।

थोड़ी देर में मसूद सामन्त और नन्दिदत्त को ले आया। ये दोनों रेगिस्तान में गुजरात का संक्षिप्त रास्ता खोजते और सुलतान का सुराग लगाते इस जगह आ निकले और उन्होंने यवन-सेना का पड़ाव देखा। नन्दिदत्त ने सामन्त से भाग जाने का संकेत किया, परन्तु उसने भयंकर दृढ़ता से इस सम्मति की अवहेलना की और उसने सीधे पड़ाव की ओर आकर स्वयं सुलतान से मिलने की इच्छा प्रकट का। पहले तो चौकीदार चौंके, क्योंकि उन्होंने कभी यह नहीं सुना था कि भटकते हुए हिन्दू बटोहियों ने सुलतान से मिलने की इच्छा प्रकट की हो। अन्त में सामन्त ने कहा कि वह स्वयं झालोर से मुलतान के मुखिया का सन्देश लेकर आया है। इस बात को चौकीदारों ने नायक से कहा, नायक ने अपने ऊपरवाले हाकिम से कहा और इस प्रकार अधिकारियों की परम्परा द्वारा वह इस समय यहाँ उपस्थित था।

इक्कीस वर्ष का सामन्त इस समय भयंकर दिखाई दे रहा था। उसकी आँखें स्थिर और उन्मादिनी हो गई थीं। मुख की सुकुमारता अदृश्य हो गई थी और उस पर दुःख की अनाकर्षक रेखाएँ पड़ गई थीं। थोड़े दिन के हृदय-मन्थन द्वारा उसने जो विष निकाला था वह उसकी दृष्टि में, उसके मुख पर और उसकी आवाज़ में व्याप्त था। उसकी जीभ भाग्य से ही कभी खुलती और वह भी वाक्यबाण छोड़ने के लिए ही। उसके पीछे वृद्ध नन्दिदत्त मन्द स्वर से शिवकवच का पाठ करता, नीची निगाह किये चला आता था। उसने सामन्त से अलग न होने का संकल्प कर लिया था।

वह आया तो सब ध्यानपूर्वक खबर सुनने के लिए सीधे होकर बैठ गए। सुलतान ने भारी आवाज़ में हुक्म दिया, 'मसूद, इसे यहाँ ला। तिलक, इससे सवाल पूछ, कहाँ से आया है?' तिलक उठकर आगे

था। विमल मन्त्री ने तो जितने बाण छोड़े थे उतने ही प्राण भी लिये थे।

अमीर के सैनिक पुल पर आये, यह देखकर पचास गुजराती वीर 'जय सोमनाथ' की पुकार लगाकर ऊपर से कूदे और पुल तोड़ने वालों में जो बचे थे, उनकी ढाल बन गए।

हाथों-हाथ युद्ध हुआ। मरते हुओं की चीखें कानों को फाड़ने लगीं। लाशें निरन्तर खाई में गिरने लगीं।

क्षण-भर के लिए दोनों सेनाओं का भविष्य अनिश्चित-सा लगा। कुछ देर बाद पुल की रस्सी टूटी; आग बीच में आ गई; साँकलें कट गईं; पुल डगमगाया और उसका जो भाग दरवाज़े से लगा हुआ था वह अलग होकर पानी में गिर गया।

कोट के ऊपर से भीमदेव ने 'जय सोमनाथ' की गर्जना की। हज़ारों वीरों ने भी उस गर्जना को दुहराया।

: २ :

शिवराशि सवेरे से तब तक गणपति के मन्दिर में बैठे थे। उनका चित्त न तो शंकर की ओर था और न गणपति की ओर, वरन् सामने की दीवार के पास पड़े पत्थर की ओर था। उनकी राक्षसी, आनन्द से पूर्ण आँखों के सम्मुख प्रभास का विनाश खड़ा हो गया।

उन्होंने सिद्धेश्वर को समुद्र में गोता मारते देखा। अपने उस विश्वासी शिष्य को, जो किसी दिन उनका उत्तराधिकारी होगा, उन्होंने तैरते देखा। उन्होंने उसे चाँदनी में, शान्त समुद्र की लहरों को अपनी बलिष्ठ भुजाओं से चीरते हुए और अमीर के किसी नायक से बातें करते हुए देखा। वह नायक उसे अमीर के पास ले जा रहा था, इसे भी उन्होंने देखा।

उन्होंने देखा कि वह पाशुपत मत के सन्धि-विग्रहक की हैसियत से गर्व का अनुभव करता हुआ अमीर के आगे गया है। अमीर नीचे झुककर इस प्रतापी तपस्वी के प्रतिनिधि के पैर धो रहा था। उसके बाद सिद्धेश्वर ने अमीर से वचन माँगा। घबराये हुए अमीर ने वह दिया। सिद्धेश्वर ने उसे संकटेश्वर महादेव की बावड़ी बताई।

शिवराशि खिलखिलाकर हँसा।

'राजपूत ।'

'मुखिया ने कटार देते समय क्या सन्देश कहा था ?'

'कहूँ ? अभी ? इन सबके सामने ?'

'हाँ, हाँ, हाँ,' सुलतान ने अकड़कर कहा, 'बोल !'

सामन्त ने सुलतान के ऊपर अपनी निश्चल आँखें ठहराकर धीमी हारक ध्वनि में कहा, 'आपने मुखिया को झालोर और मारवाड़ को रिश्वत देने भेजा था ।'

बैठे हुए सब लोग यह देखने के लिए बेचैन थे कि इस धृष्ट युवक की वाणी सुनकर सुलतान पर क्या प्रभाव पड़ता है । सामन्त तो बहुत दिन पहले से भय और क्षोभ के उस पार—जहाँ मृत्यु का डर न था वहाँ—पहुँच चुका था ।

'फिर ?'

'झालोर और मारवाड़ ने रिश्वत लेने से इनकार कर दिया । यही नहीं, वरन् उन दोनों की सेनाएँ गुजरात की सेना के साथ मिलकर आपसे युद्ध करने के लिए तैयार खड़ी हैं ।' मन्द स्वर में स्पष्टता के साथ सामन्त ने कहा और उसका प्रतिशब्द सबके हृदय में तलवार की नोक की तरह चुभकर रह गया ।

सुलतान बेचैन होकर एक कदम आगे बढ़ा । उसने हरेक के मुख पर चारों ओर फैले हुए भय की रेखाएँ देखीं और आँखें मींच लीं ।

सामन्त ने स्थिर स्वर में आगे कहा, 'मरते समय मुखिया ने मुझसे यह सन्देश देने के लिए कहा था कि यदि प्राण और कीर्ति प्यारी हो तो जहाँ से आये हो वहीं वापस लौट जाओ ।'

कुछ देर अपार शान्ति व्याप्त रही । घिरता हुआ भय सबको मूक बनाने लगा । सबसे पहले इस स्थिति से सुलतान जागा और बोल उठ 'या अल्लाह !' हरेक आदमी मूढ़ बन गया था, सामन्त को छोड़कर उसने व्यापक दृष्टि से सबके क्षोभ को देखा और पलक मारते-मा उसने हाथ में रखा हुआ खंजर म्यान से निकाला और कोई कुछ सो इसके पहले ही उसने छलांग मारी । वह दिङ्मूढ़ मसूद और तिलक छोड़कर सुलतान पर टूटा । खंजर चमका, सुलतान के गले में लगा

गगा चीखकर उससे लिपट गई। गौरवशाली गुरुदेव अपनी अवस्था के अनुकूल तेजी से दौड़ रहे थे।

'माँ, यह क्या है ? देख तो सही। जूनागढी दरवाजे के नीचे कुछ छप-छप हो रही है।' चौला ने कहा।

'अरे वे कछुए तो खाई में कूद पड़े और महाराज अभी तक वहाँ पहुँचे ही नही।'

कछुए पानी में थे। किनारे के घुड़सवार तीर छोड़ रहे थे। दद्दा के थोड़े-से आदमी जैसे-तैसे जवाब दे रहे थे और बुरी तरह मर रहे थे।

अन्त में दद्दा ने शिवराशि को हटाया और गढ़ को चेतावनी देने के लिए रणसिंघा बजाया।

भीमदेव, राय और विमल सेना के साथ कोट पर दौड़ते हुए आये। दद्दा पागल की तरह अपने बाल नोच रहा था। उसमे तीर चढ़ाने की भी शक्ति न थी।

'माँ, महाराज पहुँच गए ! पहुँच गए !' चौला ने हर्ष से ताली बजाई।

ऊपर से भीमदेव के धनुर्धर बाण छोड़ने लगे। सामने से पाँच हजार घुड़सवार खाई में कूदे। पीछे काले घोड़े पर बैठा हुआ अमीर यहाँ-से-वहाँ और वहाँ-से-यहाँ फिर रहा था।

चारों ओर से यवन-सेना जूनागढी दरवाजे के सामने इकट्ठी हो रही थी।

राजपूत सेना दरवाजे पर पहुँच गई।

भीमदेव ने दद्दा की गरदन पकड़ ली, 'चालबाज ! हरामखोर !' कहकर उसे जोर से खाई मे फेंक दिया।

राय ने आदमियों का व्यूह बनाया। विमल मन्त्री पत्थर लाने की व्यवस्था करने लगा।

'जय सोमनाथ' और 'अल्ला हो अकबर' की पुकारें मिलकर चारों ओर प्रतिध्वनित होने लगी।

'माँ ! माँ ! ओ माँ ! ओ मेरी माँ !' चौला चीख उठी।

कोट पर लड़ती हुई राजपूत सेना को पता तक न चला और जू

नन्दिदत्त ने गरदन ऊपर उठाई। उसने तिलक को कभी का पहचान लिया था। 'घोघाराणा!' मसूद ने दंग होकर पूछा, 'उसके एक लड़के ने तो परसों हमारे हज़ारों आदमियों को मार डाला।'

इस विदेशी भाषा में कही हुई बात को सामन्त ने नहीं समझा, परन्तु घोघाराणा का नाम और तिलक द्वारा नन्दिदत्त के विषय में कही हुई बात सुनकर उसकी समझ में कुछ-कुछ आ गया। 'घोघाबापा!' उसने गर्वपूर्ण स्वर में कहा, 'हाँ, मैं उनका प्रपौत्र! अपनी तलवार चला; मुझे भी मेरे पितरों में भेज दे।' जो सामन्त की भाषा समझते थे वे गर्वपूर्ण वचन सुनकर और उसके निश्चल, सुन्दर और जोश-भरे रूप को देखकर मुग्ध हो गए। मसूद होंठ दबाए तलवार की मूठ पर हाथ रखे सुलतान से सामन्त को कत्ल करने की आज्ञा माँगने लगा। तिलक ने सामन्त के शब्दों को सुलतान को समझाया।

सुलतान ने जन्म से वीरता की भूमि पर जो नायक-पद प्राप्त किया था वह कुछ वैसे ही नहीं प्राप्त किया था। संकट के समय की परीक्षा करने, हृदय को वश में करने और महान् प्रसंगों पर महान् बनने की कला उसके लिए सहज-साध्य थी। वह हँसते हुए मुख और प्रशंसा-भीने नेत्रों से आगे आया, एक हाथ से मसूद और तिलक को पीछे हटाया और दाएँ हाथ को सामन्त के कन्धे पर रखकर उसकी ओर देखने लगा।

फिर सब अवाक् होकर देखने लगे।

'तिलक, इस घोघाराणा के वंशज से कह कि घोघाराणा के कुल ने अपने शौर्य से अबुल कासिम महमूद की कीर्ति को भी फीका कर दिया है। घोघाराणा ने मेरे मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा प्रकट करने पर भी मेरे हज़ारों आदमियों को काट डाला। परसों घोघाराणा के लड़के ने आँधी के वेग से चढ़ाई करके मेरी समस्त सेना को अस्त-व्यस्त कर डाला और आज तूने अद्भुत साहस से मेरे प्राण लेने का प्रयत्न किया।'

तिलक ने इसका अनुवाद किया और सामन्त ने उत्सुकता से पूछा, 'घोघाराणा का लड़का! कहाँ है? कहाँ है? वह तो मेरे पिता—' और जो अब तक अपने को सँभाले था उसके कण्ठ से स्नेह और वेदना

गए। अधखुले किवाड़ों के भीतर से किसी घायल और मरते हुए व्यक्ति की परिचित आवाज़ आई, 'पानी ! पानी !'

वे अन्दर गये। दीपा कोठारी की अन्तिम घड़ी थी।

'कोठारी भाई !'

'कौन, गुरुदेव ? मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ महाराज कि इस समय आपके सामने मेरी मृत्यु हो रही है। पानी !'

'ठहर, ले आता हूँ,' कहकर गुरुदेव ने उसके सूखते हुए मुख में पानी डाला, 'तू कहाँ घायल हुआ ?'

'जब पुल पर युद्ध हो रहा था तब मैं अन्दर पत्थर जमा कर रहा था। वहाँ से मैं यह देखने आ रहा था कि खाना तैयार है या नहीं। आते समय मुझे गणपति के मन्दिर से निकलते हुए राशिजी और थोड़े-से यवन-सैनिक मिले। जब मैंने उनसे पूछा तो एक ने मुझे खंजर मार दिया और इस रास्ते पर फेंक दिया। तब से न तो जिया जाता है न मरा जाता है।'

'कोठारी, हम लोगों पर भगवान् की कुदृष्टि है।'

'महाराज ?'

'पता नहीं। या तो कहीं लड़ रहे होंगे या कैलाशवासी हो गए होंगे। भोलानाथ जो करे सो ठीक।'

'गुरुदेव, लेकिन यह क्या ?'

'भोलानाथ की इच्छा के अधीन हो। कोठारी, पृथ्वी पर प्रलयकाल छा रहा है।'

'गुरुदेव !' उसे हिचकियाँ आने लगीं।

'कोठारी, नमः शिवाय, नमः शिवाय, नमः शिवाय, नमः शिवाय !'

कोठारी ने गुरुदेव के हाथों में प्राण छोड़ दिए।

उसकी आँखें बन्द करके गुरुदेव वहाँ से चले। यवनों के आने का रहस्य उनकी समझ में आ गया। साथ ही अन्दर जाने का मार्ग भी सूझ गया। अन्तरकोट के दरवाज़े के सामने वाले आँगन में जो मारुती का मन्दिर था उसके नीचे से सुरंग जाती थी। सुरंग में हवा ज[illegible]

इस मन्दिर की दीवार में झरोखा था और छत में छेद

तुम्हें जो अच्छी लगे उसी सेना के साथ लड़ लो । मैं तो जहाँ तक जाने की सोच चुका हूँ वहाँ तक जाऊँगा ही—बुतपरस्तों (मूर्ति-पूजकों) के देव को तोड़ने । तुममें से कोई भी नहीं आयेगा तो भी मैं अकेला ही जाऊँगा । इच्छा हो तो मेरे साथ आओ, न हो तो दूसरे रास्ते चले जाओ । बोलो, क्या चाहते हो ?'

अन्तिम घड़ी में वातावरण बदल गया था । इस प्रश्न का उत्तर उस समय एक ही हो सकता था; और उत्साहाधिक्य में सरदारों ने सुलतान के चरण स्पर्श करके अपना उत्तर दे दिया ।

और इस भव्य परिवर्तन को देखकर सुलतान के मुख पर हास्य खेलने लगा ।

हो जा।'

'सर्वज्ञ, मेरे मरने के लिए अग्नि की आवश्यकता नहीं है। मेरी चिन्ता न करो।'

एक साधु से, जो वहाँ घबराकर गिर पड़ा था, गुरुदेव ने लकड़ियाँ मँगाईं और अपने हाथ से चिता बनाई। गंगा ने चौला के शरीर पर चन्दन का लेप किया।

चौला के आँसू सूख गए थे। वह यंत्रवत् गुरुदेव की आज्ञा का पालन करती जाती थी। वह भोलानाथ के पास गई, उनके पैर लगी और उसके बाद बेहोश पड़े हुए भीमदेव के पास आई।

वह महाराज के मस्तक से लहू से चिपके बालों को हटाकर बड़ी देर तक उनके मुख की ओर देखती रही।

वह स्वयं भी शव जैसी हो गई थी। उसका मुख विवर्ण और आँखें काँच के समान निर्जीव हो गई थीं।

उसने महाराज के पैरों की धूल माथे पर लगाई, गंगा के पैर छुए और गुरुदेव को प्रणाम किया। गुरुदेव स्वस्थ और शान्त हो गए थे। उन्होंने आग देने के लिए लकड़ियाँ सुलगाईं।

विमल मन्त्री बाहर से हाँफते हुए आये। उनके भी एक-दो घाव लगे थे।

'गुरुदेव, ठहरिए! यहाँ से चले जाइए! अन्तरकोट अभी गिरता है। उसके बाद परकोटे के गिरने में देर नहीं लगेगी।'

'परकोटे के गिरने में तनिक भी देर नहीं लगेगी। मैं चौला को अग्नि-प्रवेश करा दूँ। उसके बाद मैं अमीर से मिलने को तैयार हूँ।'

'अरे, लेकिन यह क्या? महाराज गये?'

'नहीं, जीवित हैं; परन्तु केवल घड़ी-दो-घड़ी के लिए।'

विमल ने होंठ पीसे। यह रोने का समय न था।

'लेकिन गुरुदेव, आप चले जाइए।'

'मैंने तो पहले ही कह दिया था कि जहाँ मेरा भोलानाथ वहाँ मैं—'

विमल मन्त्री ने आह भरी और नीचे झुककर अपने स्वामी
स्कार किया।

और तीर सँभालने लगा। खड़-खड़—खड़-खड़—खड़-खड़।

दुर्गपाल ने गढ़ पर जाकर रेगिस्तान की ओर देखा। तारों के धुँधले प्रकाश में साफ़ दिखाई नहीं देता था, परन्तु आवाज़ अधिकाधिक स्पष्ट सुनाई देती थी। तीक्ष्ण और अनिमेष नेत्रों से वृद्ध दुर्गपाल अन्धकार को भेदने का प्रयत्न कर रहा था। जंगल में से ऐसी आवाज़ आ रही थी जैसी श्मशान-भूमि में रोने वाले आदमियों की आती है। तारे जुगनुओं की भाँति उड़ते दिखाई दिए। थोड़ी देर में तीन छायाएँ आती हुई दिखाई दीं। दूर से पास आती हुई वे ऐसी लगती थीं मानो वे श्मशान में ऊँटनियों के प्रेत हों। दुर्गपाल काँपा। उसने आवाज़ देकर अपने आदमियों को उठाया। जब वे अपार्थिव प्रतीत होती ऊँटनियाँ पास आईं तब गढ़ के ऊपर आठ तीरन्दाज़ निशाना लगाए तैयार अवश्य खड़े थे, पर उनके हाथ काँप रहे थे।

'कौन है?'

'मैं प्रभास पाटण जाता हूँ, ज़रूरी काम है,' एक गहन गम्भीर ध्वनि सुनाई दी।

'क्या नाम है?'

'चौहान हूँ। गढ़ खोलो और नई ऊँटनी दो', बोलने वाले ने अधिकार से किन्तु अधीरतापूर्ण स्वर में कहा। दुर्गपाल ने तुरन्त दुर्ग के द्वार खोले और एक आदमी पहली ऊँटनी से उतरकर अन्दर आया। दुर्गपाल अकेला होने के कारण घबरा रहा था और उसे अब भी ऊँटनियाँ मात्र छाया जैसी दिखाई दे रही थीं।

'इस समय जल्दी में क्यों आये?' दुर्गपाल अरजन ने पूछा, लेकिन वह रुका। उसके रोंगटे खड़े हो गए। युवक सूखा-सा था और ऐसा विवर्ण था मानो चिता से उठा हुआ उसका प्रेत हो। उसकी स्थिर और तेजपूर्ण आँखें भयानक थीं।

'तीन अच्छी ऊँटनियाँ दो, मुझे प्रभास पाटण जाना है। और तुम गढ़ छोड़कर चले जाओ।'

'मैं गढ़ छोड़कर चला जाऊँ? क्या हाथ में चूड़ियाँ पहनी हैं? क्या वह जो गज़नी का अमीर आ रहा है उसकी धाक से?' दुर्गपाल

'नहीं,' हाथ के अभिनय से गुरुदेव अमीर का भाव समझ गए। 'यवन,' उन्होंने बिना तनिक भी हटे शान्ति से कहा, 'मेरा भोलानाथ और मैं, दोनों साथ हैं—विनाश में भी सनातन, अनादि और अनन्त।'

वह हँसा।

अमीर बातें करना नहीं चाहता था। उसने एक छलांग मारी। उसके हाथ में उसकी तलवार चमकी।···

गुरुदेव का शीश, धड़ से अलग, बाहर लोटने लगा।

एक छलांग मारकर अमीर गर्भद्वार में पहुँचा, एक लम्बी साँस ली, पास ही खड़े एक योद्धा से लोहे की गदा ली और घुमाकर मारी—

सृष्टि के आरम्भ में निर्मित भगवान् सोमनाथ के लिंग के तीन टुकड़े हो गए।

: ७ :

कृष्णपक्ष की द्वितिया का चन्द्रमा आकाश में चढ़ा। आधी रात हुई। शवों से भरे प्रभास पर गिद्ध आने लगे। कहीं मरते हुओं की चीखें सुनाई दे जाती थीं। चारों ओर दुर्गन्ध आ रही थी।

परकोटे के आगे पड़े हुए मुर्दों और घायलों में से बिखरी जटाओं वाला एक पुरुष उठा। उसके चलने का कोई ठिकाना न था। उसे आँखों से कुछ दिखाई नहीं देता था।

वह मुर्दों के बीच होकर लड़खड़ाता हुआ सभामण्डप में पहुँचा और गर्भद्वार के आगे जाकर नमस्कार किया।

वह भीतर वहाँ गया, जहाँ भगवान् का लिंग था।

उसने हाथ से टटोला, पर लिंग न मिला।

उसने आँख फाड़कर उसकी खोज की।

जैसे वह नींद में हो ऐसे अन्त में उसके हाथ में पत्थर के टुकड़े आए।

अन्धे की तरह उसने लिंग को खोजा।

वह काँपता हुआ उठा और गर्भद्वार से बाहर आया।

उसके पैरों से कुछ टकराया। उसे उसने हाथ में लिया और लेकर वहाँ आया, जहाँ चाँदनी पड़ रही थी।

उसने उसे ऊँचा किया—देखा—वे आँखें पहचानीं;

ऊँटनियाँ शीघ्र निकाल दीं और वह युवक तथा उसके साथी उड़ती हुई ऊँटनियों पर अन्धकार में अदृश्य हो गए।

दुर्गपाल अरजन कांपते शरीर से बहुत देर तक देखता रहा।

'बापा,' उसके लड़के ने दुर्गपाल से पूछा, 'यह कौन थे?'

दुर्गपाल को फिर कँपकँपी आ गई।

'बेटा, घोघाबापा आये हैं, सोमनाथ भगवान् को बचाने।'

'घोघाबापा!'

'हाँ। हूबहू वैसे ही जैसे कि पचास वर्ष पहले थे।'

लड़के ने चिन्ता से बाप की ओर देखा; बापा कहीं पागल तो नहीं हो गए हैं!

अरजन ने पुत्र के मुख के भाव देखे।

'यम के घर से लौटकर आये हैं। चल, भाग चलें। यह तो सोमनाथ बापा ने ही पहले से चेतावनी दी है।'

: २ :

मारवाड़ से पाटण जाने वाले सीधे रास्ते पर जो-जो गाँव पड़ते थे उनमें यह बात हवा की तरह फैल गई। गज़नी का अमीर आ रहा है, यह बात उड़ती-उड़ती चली आती थी। मारवाड़ के जो यात्री यदा-कदा आते थे वे भी अमीर की सेना के सम्बन्ध में मनमानी बातें करते थे। कुछ लोगों की ऐसी मान्यता थी कि अमीर आ रहा है। बहुत-से लोग ऐसा कहने वालों का मजाक उड़ाते हुए कहते, 'किसकी माँ ने धौंसा खाया है, जो भगवान् पर आक्रमण करे?' लेकिन अब तो अन्य ही प्रकार की बातें उड़ रही थीं। कारण, दुर्गपाल अरजन के आदमी लौट आए थे। रेगिस्तान का सम्राट्, घोघाबापा मारा गया और वह भूत बनकर दुर्गपाल को चेताने गया था कि भाग जाओ नहीं तो प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे। घोघाबापा का भूत ऊँटनी पर बैठकर सोमनाथ की रक्षा करने जा रहा था।

किसीने दुर्गपाल के ही मुँह से इस भूत की बात सुनी थी। दुर्गपाल रास्ते में जाने वाली बारात को मिला था और वह स्वयं बारात में था। वहीं पर उसने दुर्गपाल की बात सुन ली थी। मूलराज देव के समय में

कोई फल उसे नहीं मिला। साहस की दिवाली मनाने पर भी उसके हाथ में राख और नाक में गन्ध रही, और कुछ नहीं।

अमीर भागा; पाटण की फौज उसके पीछे पड़ी थी। रास्ते में स्वयं महाराज और राव तथा कमा लखाणी उसे खूब सता रहे थे।

दिवाली आ पहुँची और सबसे अच्छी खबर आई। महाराज ने अमीर को कच्छ के बाहर कर दिया था और वे अब पाटण आने वाले थे।

गाँव-गाँव से हर्षनाद करते हुए लोग खम्भात आ पहुँचे। खम्भात में घर-घर दीप जले। राजगढ़ में डका-निशान बजे। 'भीमदेव महाराज की जय' से राजगढ़ गूँजने लगा।

ग्रामीण चौला रानी के दर्शन करने आये, परन्तु चौला मे तनिक भी चेतना न आई। उसके शरीर के भीतर का कलक दिन-दिन बढ रहा था और जैसे-जैसे वह बढ रहा था वैसे-ही-वैसे उसके प्राण अधिकाधिक अधमता में डूबते जा रहे थे। अश्रुधारा बहती रहती—निरन्तर। आँखें निस्तेज और रोगी हो गईं। वैद्यक उसके लिए व्यर्थ हो गई।

इसके बाद गगनराशि महाराज को बुलाने के लिए पाटण गया और उसके जीवन को सँभालने वाली जो एक साँकल थी वह भी अदृष्ट हो गई।

धीरे-धीरे उसका सम्मान बढ गया। अब वह विजयी बाणावली की पत्नी थी। जिस राजगढ में वह रहती थी वह अब नये ही रग मे रग गया। दास-दासियो की दौड़-धूप होने लगी। उसे गीत और वाद्य से रिझाने के प्रयत्न होने लगे। वह इन सबसे निर्लिप्त थी। न तो उसमे उत्साह आया और न उसके आँसू ही बन्द हुए।

एक दिन विमल मन्त्री उसकी खबर लेने आये—महाराज के भेजे हुए। महाराज पाटण आये, भरत-खण्ड के राजाओ ने उनकी वीरता को अर्घ्य दिया। राज्य उनके सामन्त हुए। अनेक सेनाओं ने उनकी कीर्ति का गान किया, पाटण का गढ नया होने लगा और महाराज ने सोमनाथ पाटण को फिर से बनवाकर भगवान् की स्थापना की आज्ञा दी। इस काम को करने के लिए गगन सर्वज्ञ—कारण, अब उनके

गया और हरेक गांव के लोगों के कानों में घोघाबापा की तीन
यों के पैरों की आहट पड़ने लगी। क्षितिज में कुछ भी हिलता
देखकर लोगों को घोघाबापा के भूत की झलक मिलने लगी।
के साथ ही घोघाबापा की दन्तकथाएं भी बढ़ने लगीं।

: ३ :

प्रभास पाटण में पूज्यपाद गंग सर्वज्ञ पूजा-पाठ समाप्त करके अपने
धाम से भगवान् के मन्दिर में विल्वपत्र चढ़ाने जा रहे थे। उनका तेजस्वी
और गौरवशाली मुख सदा की भाँति शान्त और स्वस्थ था। उनके एक
हाथ में पंचपात्र और आचमनी थी, दूसरे हाथ में अपने हाथ से तोड़े हुए
विल्वपत्र थे।

प्रभास में गजनी के म्लेच्छ की सेना की चढ़ाई की बातें थोड़ी-सी
आती तो थीं, परन्तु ऐसी नहीं, जो हलचल पैदा कर दें। कुछ योद्धा दूर
की हाँकते और कहते कि म्लेच्छ मुलतान में मारा गया; रेगिस्तान में
सो गया। जब तक भगवान् बैठे हैं तब तक किसकी मजाल है कि
सौराष्ट्र में आये? और भीमदेव सोलंकी तो म्लेच्छ को काट डालने के
लिए तैयार ही था। और क्या चाहिए था?

दामोदर की बात से सर्वज्ञ के हृदय में क्षण-भर के लिए क्षोभ का
संचार हो गया था, परन्तु कोई खास खबर नहीं थी, इससे उसे भी भ
न लगा। एक अफवाह तो यह थी कि म्लेच्छ की सेना रेगिस्तान में बि
पानी के तड़पकर मर गई। भगवान् से लड़ाई लड़ने वालों की और
गति हो सकती है?

और इतना विचार भी वे यदि करते थे तो अपने अन्तर में
भगवान् के आसपास तो अनादि और अनन्त जैसा शान्त और नि
वातावरण था। वह सृजन के समय उत्पन्न हुआ था और प्र
समय नष्ट होने वाला था। इस शान्ति और शक्ति की अन
म्लेच्छ जैसे क्षणिक बुद्बुदों से क्या अन्तर पड़ सकता है? पूज
रुद्री होती, नर्तकियां नृत्य करतीं, आरती होती, भावुक भवि
सूर्य उदय और अस्त होता—और भगवान् सोमनाथ की ध्वजा
... नृत्य करती।

तू अस्वस्थ है। तेरी तबीयत अच्छी नहीं थी तो तुझे पाटण बुला लेता। लेकिन अभी तुझसे यात्रा की थकान सही न जाएगी। चौला, पिछला वर्ष तो विचित्र था। स्मरण है प्रिये, जब हमने विवाह किया तब दुःख के दिन थे। और कहाँ आज का दिन! मैंने अमीर को भी खूब छकाया। और चौला, तुझे खबर है कि सपादलक्ष, मारवाड़ और स्थानक ने मुझे कर दिया है? पाटण अब अत्यन्त सुन्दर बनेगा। और मैंने तेरे लिए एक बहुत ही सुन्दर महल बनवाया है। जब तू आये तब देखना। चौला, मैंने तेरे लिए देश-देश से आभूषण मँगाए हैं।'

भीमदेव महाराज की उत्साहपूर्ण वाग्धारा बहती गई और चौला बड़ी-बड़ी फीकी आँखें भीमदेव पर ठहराकर ऐसे बैठी रही जैसे वह धारा तरल हिम की हो और इसने उसके अंग-प्रत्यंग में पीड़ा उत्पन्न कर दी हो।

'चौला, पन्द्रह दिन में तुझे मुक्ति मिल जाएगी। पुत्र हो तो बहुत अच्छा है। मेरे भाग्य में यही कमी है। फिर तू आना, मैं तुझे लिवाने आऊँगा। न होगा तो विमल को भेज दूँगा। उसके हृदय में बड़ा प्रेम है। हो सकता है कि मैं उस समय मालवा के भोज पर चढ़ाई करूँ। वह बहुत गड़बड़ करता रहता है। उसे भी इसका स्वाद चखाना है।'

और भोले तथा प्रेम-विह्वल भीमदेव को इसका भान भी नहीं हुआ कि इस प्रकार के शब्द उसकी प्रियतमा के अन्तर में घाव कर रहे हैं।

इसके बाद प्रेमातुर होकर महाराज पास आये, चौला के मुख को दोनों हाथों में लिया और उसे चूम लिया।

चौला को सारा संसार हिलता हुआ जान पड़ा। वह मुख और पसीने की गन्ध, वह काढ़ी हुई सुवासित दाढ़ी का सुहाना स्पर्श और वह बड़ी-बड़ी आँखों की विलास-लालसा उसे पराई, अपरिचित और अप्रिय जान पड़ी। वह आँखें मींचे, थर-थर काँपती हुई इस दुलार को सहन कर रही थी।

'अरे भोलानाथ, मुझे इस प्रकार भटकती छोड़कर कहाँ गया? क्यों भुला दिया, मेरे नाथ?' उसने मानसिक व्यथा को व्यक्त किया।

'और चौला,' भीमदेव महाराज कह रहे थे, 'वह सामन्त चौहान

'बेटा, रो मत। भगवान् की आज्ञा पालन करने वाले को परलोक में कैलाश मिलता है। और तू—'

'मैं गज़नी के अमीर के प्राण लेने उसकी सेना में गया। नंगी कटार से उसको मारने टूटा, पर पकड़ा गया। देव की आज्ञा पालन न कर सका। मैं अभागा···अपने कुल में मैं ही एक अभागा रह गया। म्लेच्छ ने मेरे प्राण भी नहीं लिये। मुझे छोड़ दिया।'

'बेटा, जब तक भगवान् त्रिशूलपाणि तेरी रक्षा करते हैं तब तक इस म्लेच्छ की क्या मजाल है जो तुझे मार सके? शान्त हो, शान्त और निश्चिन्त होकर बातें कर। ले, पानी पी।'

आँसुओं की धारा को रोककर सामन्त ने जैसे-जैसे आप-बीती कह सुनाई और वह ज्यों-ज्यों विगत कहता गया त्यों-त्यों सर्वज्ञ के शान्त और गम्भीर मस्तिष्क में उसकी श्वास के साथ 'ओम् नमः शिवाय' की ध्वनि उठती गई।

'और अब गजनी का अमीर कहाँ तक आ गया है?'

'गुरुदेव, पाँच-सात दिन में आबू के पास आ जाएगा। पाँच-दस दिन की देर भी हो सकती है।'

'भीमदेव सोलंकी उसकी बाट देखता हुआ पाटण में बैठा है। उससे पार पाना मुश्किल है।' सर्वज्ञ ने इस प्रकार कहा जैसे वह अपने हृदय से ही कह रहे हों।

'गुरुदेव, यह तो मूर्खता है।'

'क्या?'

'अमीर का मुकाबला करना। यह···'

'मतलब?'

'गुरुदेव, किसीको अमीर और अमीर की शक्ति का ध्यान नहीं है। वह भले ही राक्षस हो, परन्तु उसमें मनुष्यों को वश में करने की शक्ति है। उसके पास कार्तिकेय जैसी युद्ध-कला है। उसकी सेना समुद्र जैसी अगाध है। पाटण तो यों ही गिरकर ढेर हो जाएगा।'

'लड़के, क्या तुझे भगवान् पिनाकपाणि की कृपा में विश्वास है?'

'विश्वास है,' सामन्त ने कहा, 'लेकिन इन आपके वीरों की बुद्धि में

उसके दुख का पार न रहता।

दो महीने बाद विमल मन्त्री उसे पाटण ले जाने के लिए आये। मना तो किया नही जा सकता था, इसलिए वह तैयार हुई। उसने पालकी मे पड़े-पडे धीरे-धीरे पाटण का रास्ता तय किया।

अन्त मे वह गुजरात की राजधानी में पहुँची और राजगढ़ के अन्त.-पुर में रही। रानी उदयमती आकर मिल गई—नुकीली नाकवाली, रूपवती, कुलीन राजपूतानी—भीमदेव के अनुकूल अर्धाङ्गिनी। दास-दासियो की दौड़-धूप होने लगी। चौला रानी की व्यवस्था करने के लिए राजगढ मे हलचल मच गई।

चौला की तबीयत कुछ सुधर गई थी, परन्तु इस वैभवपूर्ण राज-प्रासाद में उसे खम्भात के बराबर भी आराम नही मिला। खम्भात में सामने ही समुद्र था, उसके उस किनारे पर भगवान् विराजते थे। वहाँ के राजमहल मे थोडे आदमी थे, न इतना आडम्बर था और न दास-दासियो के झुण्ड।

पहले दिन आते ही उसे लगा—पता नही किस प्रकार—कि बाहर के इस सब प्रकार के सम्मान के होते हुए भी उसे पराया और अधम समझा जा रहा था।

बात भी ठीक है, दाँत पीसकर उसने विचार किया, मैं न तो राज-कन्या हूँ और न राजपूतानी—मै तो अपने देव की नर्तकी हूँ। मुझे यहाँ क्या अधिकार है?

और उसके रोते हुए हृदय पर असह्य प्रहार होने लगे।

भीमदेव महाराज ने आज अत्यधिक उत्साह से अपने कार्य को समाप्त किया। उनकी रगों मे नये सगीत के आलाप गूंज रहे थे। उसकी कल्पना उस भयकर और रमणीय रात्रि के चित्र खड़े कर रही थी। वह छत, वह चाँदनी, वह सेज—सकीर्ण, छोटी और अव्यवस्थित, सामन्त की बातचीत, लग्नविधि, और उन सबके ऊपर राज करती हुई चन्द्र-किरणो से बनी उछलती, कल्लोलती और रस से आप्लावित चौला! इन विचारों में डूबे महाराज अन्तःपुर मे आये।

चौला बैठी हुई अपने नृत्य के कपडो मे मोती गूँथ रही थी। उस

'दूसरा उपाय नहीं है।'

'और सृष्टि के आरम्भ में प्रकट होने वाले, शत-शत ज्वालाओं से सुशोभित, प्रलय-समुद्र के अग्नि-समूह के समान तेजस्वी, क्षय और वृद्धि से रहित, अनिर्वचनीय और अव्यय, जगत् के मूलरूप इस ज्योतिर्लिङ्ग को स्थान-भ्रष्ट कर दूं—?' सर्वज्ञ ऐसे बोलते चले गए मानो वे शिव-पुराण का पाठ कर रहे हों। सामन्त इस विचारधारा को समझने में असमर्थ होने के कारण देखता रह गया।...'और मैं, साक्षात् शंकर के अवतार लकुलेश मत का अधिष्ठाता, और शंकर की कृपा से उसका दासानुदास, स्वयं चन्द्रमा के हाथों द्वारा निर्मित, इस मन्दिर को छोड़-कर भाग जाऊँ?'

'गुरुदेव!'

सर्वज्ञ ने अँगुली ऊँची करके उसे बोलने से रोका। थोड़ी देर तक वे आँखें मीचे बैठे रहे और सामन्त उनके मुख की ओर देखता रहा।

सर्वज्ञ ने आँखें खोलीं। उनके प्रफुल्ल नेत्रों में दैवी तेज था।

'बेटा, भगवान् का ज्योतिर्लिङ्ग प्रलय-काल में भी नहीं हटेगा और जहाँ लिङ्ग है वहाँ मैं हूँ। म्लेच्छ को जो कुछ करना हो करे।'

सामन्त थर-थर काँपने लगा। उसकी आँखों के आगे उसके कुल-देवता के टुकड़े तैरने लगे। परन्तु इस महात्मा के निर्णय के आगे भावी की निश्चितता भी शिथिल होती जान पड़ी।

'परन्तु...'

'इसमें शंका या विचार को स्थान नहीं है। यदि देव और म्लेच्छ के बीच कोई माई का लाल खड़ा नहीं रहेगा तो मैं खड़ा रहूँगा। देखना है, क्या होता है? पिनाकपाणि के प्राबल्य को कौन रोक सकेगा? यदि इस वृद्ध के भाग्य में ही प्राचीन काल के मुनियों द्वारा किये गए परा-क्रम लिखे हों तो तुम क्या करोगे?'

इस तेज के पुञ्ज से सामन्त क्या कह सकता था!

'तो भीमदेव की सेना को तो यहाँ बुला लो, पाटण में तो वह बात-की-बात में कुचल जाएगा।'

'युद्ध के व्यूहों में पड़ना मेरा काम नहीं है। मैं पत्र देता हूँ। उसे

न अपने खारे जीवन में मीठे पानी की बूंद जीभ पर रख ले ?

वह धीमे-धीमे मन्दिर में आया और चारों ओर नज़र डाली। उसे आशा थी कि वह मुख, वह हास्य और वह अंग-लालित्य वहाँ कहीं-न-कहीं होगा, परन्तु उसकी आशा पूरी नहीं हुई। भारी हृदय से उसने भगवान् के चरण स्पर्श किये, बिल्वपत्र चढ़ाया और रोती आँखों से प्रार्थना की। इतने दिन के दुःख और परिश्रम का प्रभाव आज दिखाई दिया। उसने सर्वज्ञ से सब-कुछ कह दिया, इसलिए उसका बोझ उतर गया। थोड़े दिन पहले वह अकेला, भयाकुल चित्त से निर्जन अरण्य में भटका था; उसका दृश्य उसके आसपास आ खड़ा हुआ। वह असहाय, अकेला बेचैन हो रहा था। वह चल न सका। वह सभामण्डप के एक कोने में जा बैठा और घुटनों पर सिर रखकर दहाड़ मारकर रोने लगा।

वह एक के बाद एक प्रिय स्वजनों का स्मरण करने लगा। उसके घोघाबापा बहादुर और उसकी गौरवशाली दन्तकथा के देव, उसके पिता समीर को भी अकेले थकाने वाले रेगिस्तान के राही, उसकी माँ देवी के समान देदीप्यमान—उनके शव का जला हुआ हाथ उसने देखा था। उसकी चार बरस की छोटी बहन, जो फूल की कली के समान सुकुमार थी—उसका भी आधा जला हुआ पैर उसने देखा।···यह—वह—सभी भयंकर दृश्य उसीके कर्मों के फल थे।

उसकी आँखों से दहकते हुए अंगारों के समान अश्रुबिन्दु झरने लगे। फटती हुई छाती से सिसकियाँ उठने लगीं।

वह कितनी देर तक रोता रहा, इसका उसे खयाल भी नहीं रहा। अन्त में एक स्त्री के मधुर स्वर ने उसे उद्वेग—मूर्च्छा—से जगाया। एक पच्चीस वर्ष की नर्तकी उसकी ओर दयापूर्ण दृष्टि से देख रही थी।

'नायक, रोते किसलिए हो ? शंकर जो कुछ करते हैं अच्छे के लिए ही करते हैं।'

सामन्त को इस मुख के देखने से एक आघात-सा लगा। यह भी नर्तकी थी और वह भी नर्तकी ? परन्तु वह काजल से भरी, विषय की प्यासी आँखें थीं और उसकी कल्पना के आगे थीं उस बालिका की निर्दोष आँखें।

रिझाती, और प्रणय-विह्वल अभिसारिका के समान बिल्वपत्र से अपने प्रभु की पूजा करती ।

यह उनका वास्तविक जगत् था—जहाँ वह जागती थी और जगत् सोता था; जहाँ जगत् जागता वहाँ वह यन्त्रवत् खाती-पीती और बन्धन की बात करती तथा दिन-रात अपने कपड़ों को भरा करती । उन कपड़ों पर मोती और माणिक की अद्भुत कारीगरी करने के अतिरिक्त उसके जीवन में और कोई आनन्द की बात नहीं थी ।

दास-दासियों ने इस महादेवी के पागलपन में रस लेना छोड़ दिया । वे यह निश्चय नहीं कर सके कि वह पागल है या नहीं, लेकिन इतना अवश्य है कि सब उसे देखकर डरते थे । वह जहाँ जाती वहाँ से मृत्यु-लोक की ऊष्मा चली जाती । वह जिस स्थान को छोड़कर जाती उस पर कुछ देर के लिए सबको कँपकँपी आ जाती ।

जब सन्ध्या होती और भगवान् की आरती हो रही होती तब चोला मानो चौंककर जागती और उसे जगत् का भान होता । वह अत्यधिक उत्साह से जिन वस्त्रों को तैयार करती थी उन्हें अपनी खाट पर फैलाती और बड़ी देर तक उन्हें देखा करती ।

उसके हृदय में किसी समय इन वस्त्रों को पहनकर अपने प्रियतम को रिझाने और उनसे क्षमा माँगने की आशा उत्पन्न होती रहती ।

उसे वह प्रबोधिनी एकादशी याद आती, जबकि उसने नृत्य द्वारा भोला शम्भु को वश में किया था ।

किसी दिन फिर वह गण सर्वज्ञ की उपस्थिति में भगवान् को आत्म-समर्पण करेगी ।

कुछ देर वह देखती रहती और यदि दूर पर कहीं कोई शख फूंका जाता या बैलों की घंटियाँ बज उठतीं तो उसका हृदय उछलने लगता । तब वह फिर उत्साही बालिका हो जाती । वह चारों ओर देखती, ठिठकती और यदि कुछ नहीं सुनाई देता तो बड़ी देर तक राह देखती और अन्त में रो पड़ती ।

'वह नहीं आयेंगे, नाथ नहीं आयेंगे' ऐसे असम्बद्ध वाक्य बोलने लगती, गिर पड़ती, बाल नोचती और सिसक उठती । उसके अंग-अंग

क्या यह सच बात है ? क्या स्वयं पार्वती ने उसे उद्धारक माना है ? क्या गजनी का अमीर उसीके हाथों मारा जाएगा ? उसका उद्वेग-पूर्ण हृदय उछलने लगा। क्या वही शम्भु के इस भव्य मन्दिर का त्राता है ?

'तुम कौन हो ?'

'मैं हूँ कुण्डला, देवदासी। चल !'

सामन्त उठा और नर्तकी के पीछे चल दिया। धीरे-धीरे उसका मन स्वस्थ होता गया और वह उस नर्तकी के भरे हुए, विलाससूचक अंगों को देखने लगा। यह उस छोटी-सी नर्तकी से कितनी भिन्न थी ! उसके अंगों से शिव-भक्ति की निर्मलता झरती थी जबकि यह स्थूल विलास में मग्न देवदासी थी। सामन्त के हृदय में आशा के अंकुर बढ़ने लगे थे। क्या सोमनाथ के इस सुमेरु पर्वत के समान प्रासाद की रक्षा उसके ही हाथों होनी थी ? इस नर्तकी ने सच कहा है या केवल बात बनाई है ? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। घोघाबापा के समस्त कुल में वह अकेला जीवित ही क्यों रहता ?

सामन्त नर्तकी के पीछे चला। बगल के दरवाज़े में होकर वह नर्तकियों के वर्ग में आया। इस नई, अपरिचित परिस्थिति को देखकर सामन्त पल-भर को अपना उद्वेग और निराशा दोनों भूल गया। वह अगम्य महाशक्ति त्रिपुर-सुन्दरी के रहस्यमय मन्दिर में जगज्जननी महा-माया का बुलाया हुआ जा रहा था।

कुण्डला ने आगे जाकर एक छोटे-से दरवाज़े की कुण्डी खटखटाई। थोड़ी देर में किसीने अन्दर से दरवाज़ा खोला।

'कौन ?'

'मैं हूं कुण्डला।'

'वह मिला ?' उसने पूछा। अर्द्धनिद्रित अवस्था की आवाज़ थी।

'हाँ।'

'ला।'

उस आदमी ने दरवाजा खोला और कुण्डला तथा सामन्त भीतर दाखिल हुए। वहाँ एक आँगन में तीन साधु बैठे थे, जिनके शरीर पर

९६।

मृदंग बजता है और सब खड़े होते हैं। गगन सर्वज्ञ खड़ाऊँ पहने, कौपीन धारण किए, व्याघ्रचर्म बाँधे और काली जटाओं को तनिक क्षोभ से निहारते हुए आते हैं। उनमें गुरुदेव के चलने और बोलने की कुछ झलक दिखती है।

वे सबके 'नमः शिवाय' को स्वीकार करते, मन्दिर में जाकर पल-भर ध्यान करते हैं, बिल्वपत्र चढ़ाते और घण्टा बजाते हैं।

जो रत्नजटित आरती काश्मीर के राजा ने भगवान् के चरणों में भेंट की थी उसे गगन सर्वज्ञ अपने हाथ में लेते हैं।

सब एक साथ आरती गाते हैं।

इसके बाद वे 'जय सोमनाथ' की घोषणा करते हैं और सभामण्डप में बैठे हुए महारथी उसे दुहराते हैं। आकाश में धीरे से फैलती गर्जना की भाँति यह घोषणा परकोटे में, उसके बाहर और नगर में फैलती है। नगाड़े बजते हैं। नगर के निवासी और सैनिक सब घोषणा को दुहराते हैं। समस्त प्रभास पहले के समान सोमनाथमय हो जाता है। सब 'जय सोमनाथ' की एक आवाज से आकाश को गुंजा देते हैं।

सब लोग शान्त होते हैं। गगन सर्वज्ञ अपने स्थान पर बैठकर आज्ञा देते हैं, 'नृत्य होने दो।'

शिष्य पुकार लगाते हैं, 'नृत्य शुरू करो।' कोई कहता है, 'लेकिन न तो नर्तकी तैयार है और न बाजे वाले ही तैयार हैं।'

एक क्षण—दो क्षण—पाँच क्षण।

राजा आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरे को देखते हैं। गगन सर्वज्ञ के मुख पर भ्रूभंग स्पष्ट दिखाई देता है।

परन्तु झाँझ की झनकार आती है, मृदङ्ग बजता है।

नर्तकी सभामण्डप में आती है।

वह हीरे, मोती और रत्नों से जगमगाती दिव्यलोक की देदीप्यमान अप्सरा जान पड़ती है। उसके वस्त्र और आभूषणों पर पड़कर दीपकों का प्रकाश सहस्रधा हो जाता है और सबकी आँखों में चकाचौंध फैल जाती है।

'मैं अपनी मरज़ी से नहीं आया। वह कुण्डला मुझे ले आई है।
...झे यहाँ नहीं रहना। लो, मैं यह चला।'

'यह चला! कहाँ जाता है?' एक साधु ने सामन्त की बाँह पकड़
...ली। 'महामाया के मन्दिर को अपवित्र करके छूटना चाहता है?'

'छोड़ो मुझे।' सामन्त उस साधु के पंजे से छूटने का निष्फल प्रयत्न
करने लगा। उसको छुड़ाने की कोशिश करते देख दूसरे साधु ने आकर
पीछे से उसके हाथ पकड़ लिए। 'तुझे छोड़ दें? अच्छा!' कहकर वह
साधु खिलखिलाकर हँसा।

'छोड़ो! कुण्डला, क्या मुझे यहाँ इसीलिए लाई?' सामन्त ने क्रन्दन
किया।

'मुए!' क्रोधाभिभूत कुण्डला अँधेरे में से बोली। ऐसा लगा जैसे
वह भी क्रन्दन कर रही हो। 'मुझे क्या ख़बर थी कि मेरा स्वप्न झूठा
निकलेगा? मुझे तो विश्वास था कि महामाया मेरे ऊपर प्रसन्न होगी।
लेकिन तू तो ऐसा दम्भी निकला। अब मर।'

'महामाया के मन्दिर को भ्रष्ट करके कोई जीता नहीं जाने पाया।'
साधुओं ने सामन्त को जकड़कर एक खम्भे से बाँध दिया। उसने
प्रयत्न करना छोड़ दिया। उसको जीने की लालसा न थी।

'तो महाराज,' उसने दीनता से कहा, 'कोई गुरुदेव से तो यह क...
आए कि मेरी वाट न देखें।'

साधु चौंककर पीछे हट गए, 'सर्वज्ञ!'

हाँ, वह मेरी वाट देख रहे हैं।'

एक साधु ने बड़े ध्यान से सामन्त को देखा, मानो वह कुछ स...
गया हो। 'अच्छा!' उसने भयंकर आवाज़ में कहा। 'तब तो वह ...
वाट ही देखा करेगा,' कहकर उसने पृथ्वी पर पड़ा त्रिशूल उठ...
सामन्त के गले पर रख दिया।

कुण्डला की घबराहट की सीमा न थी। वह नर्तकियों में अत्यन्त आकर्षक और महत्त्वाकांक्षी थी। किसी दिन नये गुरुदेव की गंगा बनकर इस मन्दिर की अधिष्ठात्री बनने की उसके भीतर तीव्र लालसा थी। वह चाहती थी कि प्रति तीन मास के बाद जब यह उत्सव हो तब महाशक्ति उसमें उतरे और वह स्वयं जीती-जागती त्रिपुर-सुन्दरी की भाँति पूजी जाए। परन्तु पिछले वर्ष वह इतनी योग्य नहीं थी कि त्रिपुर-सुन्दरी उत्सव के समय उसके शरीर में उतर सकती। वह कल योग्य हुई थी; कल रात महामाया ने उसे स्वप्न दिया था; आज स्वप्न के अनुसार उसे निर्दिष्ट स्थान पर पुरुष मिला था—और फिर भी अन्तिम वार सब-कुछ धूल में मिलाने जा रहा था।

उसकी दूसरी सबसे बड़ी इच्छा शिवराशि को अपना बनाने की थी। सर्वज्ञ के ये शिष्य आगे चलकर गुरु की गद्दी पर बैठेंगे। यदि इनकी कृपा हो जाए तो अवश्य ही कुण्डला की इच्छा पूरी हो सकती है। शिवराशि के ध्यान को खींचना तो सरल बात थी, परन्तु उनको अपना बनाना कुण्डला को असम्भव जान पड़ता था। यह सच है कि वे उग्र संयमी नहीं थे, परन्तु उनका चित्त चौला पर टिका था। कुण्डला के मन में एक आशा की किरण थी। यदि उत्सव के समय महाशक्ति उसमें उतरे और शिवराशि आचार्य की हैसियत से एक बार भी उसकी आरती उतारें तो उनका हृदय चौला से कुछ हट सकता है।

त्रिपुर-सुन्दरी का उत्सव कुछ ऐसा-वैसा नहीं था। महाशक्ति किसी स्त्री में जीवित प्रकट होती और गुप्त विधियाँ करते-कराते बड़े-बड़े चमत्कार दृष्टिगोचर होते। लेकिन जैसे-जैसे उत्सव का समय पास आता गया वैसे-वैसे उसके हृदय में बेचैनी बढ़ती गई। स्वप्न झूठा निकला और इस नायक ने मन्दिर को अपवित्र कर दिया; यह तो ठीक है, लेकिन जिसमें महाशक्ति उतरने वाली होती है, उसे जो मूर्च्छा-सी आती है, वह उसे नहीं आ रही। क्या यह अवसर भी हाथ से जाएगा? उसने सुरा भी अच्छी तरह पी थी, परन्तु अभी तक कोई प्रभाव उसका न था। हाथ में आया मौका निकला जा रहा था।

दो साधुओं के साथ वह जैसे ही अन्दर गई कि आँगन के आगे का

दरवाजा—वह दरवाजा जिसमें होकर वह सामन्त को अन्दर लाई थी—खटका। शिवराशि आये। हाथ से अवसर निकला जा रहा था; निकल गया तो क्या होगा ?

उसने दरवाजे से झाँककर देखा। शिवराशि और सिद्धेश्वर आ रहे थे। महामाया पर कब तक विश्वास किया जाए ? वह स्वयं ही महामाया थी। उसने चीख मारी और अपने माथे पर इस प्रकार हाथ रखा, जैसे उसे चक्कर आ रहा हो। उसके साथ आने वाले साधुओं के हाथों को लम्बा करके सहारा देने से पहले ही वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

साधु यह मानकर कि कुण्डला में त्रिपुर-सुन्दरी उतरी है, सम्मानपूर्वक 'जय जगज्जननी' कहते हुए उसकी सार-सँभाल में लग गए।

शिवराशि के क्रोध की सीमा न थी। वह पैर ठोकता हुआ चौक में आया। उसके साथ उसका विश्वासपात्र सिद्धेश्वर भी था। जीवन में प्रथम बार आज वह गुरुदेव के प्रति श्रद्धा नहीं रख पा रहा था। उसे ऐसा लगा कि गुरुदेव ने आज जो कुछ किया है, उससे दसों दिशाएँ अपवित्र हो गई हैं। लकुलेश-मत के अधिष्ठाता, ज्ञान के समुद्र और रुद्र के अवतार माने जाने वाले गग सर्वज्ञ ने आज धर्म का नाश किया था। चौला त्रिपुर-सुन्दरी के उत्सव के लिए हर प्रकार से उपयुक्त थी और आज सवेरे त्रिपुर-सुन्दरी उसके शरीर में उतरी भी थी तो भी उसकी पूजा करने की आज्ञा न दी थी।

चौला तो मूर्ख थी, बालक थी। त्रिपुर-सुन्दरी के लिए अपेक्षित वाममार्गीय विधियों से वह बहुत घबराती थी। गत एकादशी तक तो जब-जब उसे इस मन्दिर में लाने की सूचना दी जाती तब-तब उसकी माँ गंगा यह कहकर बात उड़ा देती थी कि वह बालिका है और इन विधियों में भाग लेने योग्य नहीं। परन्तु गत एकादशी को तो उसे भगवान् के मन्दिर में नृत्य करने का अधिकार प्राप्त हो चुका था। अब वह बालिका न थी और फिर आज तो उसके शरीर में जीती-जागती जगदम्बा उतरी थी। जिस अधिकार के लिए नर्तकियाँ मरी मिटती थीं, वह उसे बिना माँगे मिल गया था। वह सवेरे ही बेहोश हो गई थी और फिर वह इस प्रकार बोलने-चालने लगी थी मानो वह स्वयं भगवान् शम्भु

अर्द्धांगिनी हो। उसकी योग्यता हर प्रकार से सिद्ध हो चुकी थी। शिवराशि की इच्छा थी कि चौला आज के उत्सव पर त्रिपुर-सुन्दरी के रूप में पूजी जाए।

शिवराशि को चौला की मनोदशा अजीब-सी लगती थी। गत एकादशी के बाद से चौला कुछ खिन्न-सी हो गई थी। उसकी आँखें ऐसी जान पड़तीं जैसे वे दूर की वस्तु को देख रही हों। उसकी आवाज और चाल-ढाल में ऐसी पृथकता आ गई थी जो समझ में नहीं आती थी। सामान्य स्त्री की उससे तुलना करना शिवराशि को कठिन जान पड़ा। जैसे-जैसे यह कठिनाई अधिक स्पष्ट होती गई वैसे-वैसे शिवराशि का मोह बढ़ता गया। गंगा की समझ में भी कुछ नहीं आया। चौला शिवराशि को सर्वस्व समर्पण करे, यह तो वह भी चाहती थी, परन्तु चौला की मनोदशा ऐसी विशुद्ध और भक्तिपूर्ण थी कि उससे ज़बरदस्ती कुछ कराया जा सके, इसकी गुन्जायश नहीं रही थी।

लेकिन शिवराशि दो दिन से इस आशा में था कि इस उत्सव के अवसर पर जब वह चौला को महामाया की भाँति पूजेगा तब यह व्यवधान मिट जाएगा। परन्तु यह आशा मन-की-मन में ही रह गई और गुरुदेव ने परम्परा से चली आती पूजा की विधि की अवहेलना करके धर्म का खण्डन किया। शिवराशि विद्वान्, श्रद्धालु और गुरु-भक्त था, परन्तु उसमें अपने गुरु की-सी विशाल दृष्टि नहीं थी। एक नर्तकी के हठ के कारण जो धर्म-खण्डन हुआ था उससे उसका धार्मिक जोश प्रज्वलित हो उठा था और अतृप्त वासना ने उसमें घी का काम किया था।

इस समय जो वह आया तो उसकी भौंहें तनी हुई थीं। गुरु को भी क्या अधिकार है, जो देवी की विधि में दखल दें? वे भी धर्म के रक्षक थे। उनको धर्म का उच्छेद करने का क्या अधिकार था? क्या गुरु-भक्ति में अन्धा होकर उसे यह धर्म-खंडन सह लेना चाहिए? क्या शास्त्र खोटे हैं और सर्वज्ञ खरे हैं? इस विधि के आचार्य की हैसियत से उसका कर्तव्य क्या था?

उसके आते ही वे साधु बेहोश कुण्डला को लेकर आये।

'आचार्य, आचार्य,' एक साधु ने कहा, 'जगज्जननी उतरीं—उतरीं

कुण्डला में।'

शिवराशि भूखे शेर की तरह गुर्राया, 'रख दो इसे, यह तो ढोंग करती है ढोंग, महामाया तो चौला में उतरी है।'

'क्या ?' कहकर साधुओं ने कुण्डला को जमीन पर रख दिया।

शिवराशि को किसी पर गुस्सा उतारना था। उसने जाकर पैर से कुण्डला को ठोकर दी। 'उठ झूठी, नहीं तो एक लात मारूँगा तो दाँत टूट जायेंगे।'

कुण्डला को भी ऐसा ही डर था, इसलिए उसने आँखें खोलकर 'जय जगज्जननी' का उच्चारण किया।

'मैंने नहीं कहा था कि यह ढोंग करती है ? जगज्जननी चौला में उतरी है।'

साधु कुण्डला को पड़ी हुई छोड़कर राशि के पास आये। कुण्डला अँधेरे में स्वयं बैठी रहकर हताश दृष्टि से चारों ओर देखने लगी। जीवन की आशा जाती रही और पास ही खम्भे से बँधा सामन्त किसी भी प्रकार अपनी हँसी न रोक सका।

इतने में कुछ बाबा आये—आठ, दस, बारह—नाम-मात्र के वस्त्र से अपने शरीर को ढके हुए। उनकी लाल आँखों में और उनके मुख पर उग्रता थी।

'महाराज !' एक वृद्ध चिल्लाया, 'यह क्या ? अनादि काल से जो महामाया की पूजा कभी नहीं रुकी वह क्या आज रुकेगी ? यह तो प्रलयकाल आ गया जान पड़ता है।'

जब बाबा हुंकार कर रहे थे तब दरवाजे के उस ओर अँधेरे में सामन्त ने देखा कि वहाँ अनेक अनाच्छादित आकृतियाँ अधीरता से बाट देख रही हैं। उसकी दृष्टि के सामने कैसा एक नाटक-सा हो रहा था। उसे ऐसा खयाल आया जैसे कि वह स्वयं स्वप्न देख रहा हो।

शिवराशि भी उग्र हो गया था, 'मैं भी यही कह रहा हूँ। यह कुण्डला ढोंग कर रही है; इसमें महाशक्ति नहीं उतरी। जिसमें उतरी है उसे गुरुदेव आज पूजने नहीं देते।'

क्षण-भर सभी ने इस बात का अर्थ समझने का प्रयत्न कि

फिर वह वृद्ध साधु आग बरसाती हुई लाल-लाल आँखों से आगे आया।

'महामाया त्रिपुर-सुन्दरी को अपूजित रखने की शक्ति किसमें है? जो विधियों का उल्लंघन करता है उसे गुरुपद पर रहने का अधिकार नहीं।'

'ठीक,' सिद्धेश्वर ने अर्थसूचक ढंग से कहा और शिवराशि की ओर देखा। उसके हृदय में चलने वाला द्वन्द्व उसके मुख पर झलक रहा था—गुरु-भक्ति या विधि-सेवा—संयम या चौला का मोह?

वृद्ध ने आकर राशि को हाथ जोड़े, 'राशिजी, यदि विधियाँ आप सम्पन्न नहीं करेंगे तो करेगा कौन? अनादि काल के धर्म का लुप्त होना मुझसे नहीं देखा जाता।'

'महामाया त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा होनी ही चाहिए,' सिद्धेश्वर ने धीमे से कहा। शिवराशि के लिए यह अवसर सर्वज्ञ को अपदस्थ करके अधिकार प्राप्त करने का था। इन बाबाओं का विश्वासपात्र होने में भावी अधिकार की कुञ्जी थी।

शिवराशि ने निश्चय किया, 'अवश्य, महाशक्ति कभी अपूजित नहीं रहेगी। सिद्धेश्वर, चल, चौला को ले आएँ। परम पूज्य जगदम्बा की विधियों का उल्लंघन मैं नहीं सह सकता,' कहकर वह और सिद्धेश्वर चौला को लेने गये और बाबाओं ने हर्षध्वनि की। उसे इतनी निश्चितता अवश्य थी कि उस समय गुरुदेव प्राणायाम करने में लगे थे, इसलिए उनको कोई खबर भी नहीं दे सकता था।

लेकिन राशि को जाते देख सामन्त का वह हृदय, जो चौला को देखने के लिए तरसता था, इस स्थिति में उसको देखने का अवसर पाने के कारण थर-थर काँपने लगा। वह निर्निमेष नेत्रों से लम्बी-लम्बी साँसें लेकर दरवाजे की ओर देखने लगा। उसने फिर अपने बन्धन को देखा, परन्तु वह ऐसा न था, जिसे जबरदस्ती करके या चतुराई से खोला जा सके। उसने अपने कुल को अपने सामने नष्ट होते देखा था और अब केवल स्वप्न-सुन्दरी के समान वह स्त्री ही शेष थी, जिसकी स्मृति पर वह जीवित था। उसे भी भ्रष्ट होते देखना उसके भाग्य में लिखा था। उसके मुंह में निराशा के झाग आ गए।

: २ :

चौला अर्द्धमूर्च्छित थी। उसकी उनींदी आँखें मद-भरी थीं। उसके मुख पर विह्वलता थी। उसके आधे दबे गुलाबी होंठों में से थोड़ी-थोड़ी देर में ये शब्द निकल रहे थे, "मेरे शम्भु, मेरे नाथ !" ऐसी मूर्च्छा उसे अब थोड़ी-थोड़ी देर में आती थी। उस समय वह कल्पनालोक में भीलनी या पार्वती बनकर भगवान् शंकर के साथ कैलाश पर विहार कर रही थी। पास ही चिन्तातुर मुखमुद्रा में गंगा बैठी थी। पहले तो वह यह मानती थी कि चौला पागल होती जा रही है, परन्तु सर्वज्ञ ने उसे विश्वास दिला दिया था कि वह पागलपन नहीं था, वरन् शिव-समर्पण की पराकाष्ठा थी।

इसी बीच जल्दी में तथा उग्र बने हुए शिवराशि और सिद्धेश्वर आये। यह देखकर गंगा चौंकी।

'क्यों, क्या है ?' गंगा ने घबराकर पूछा।

'चौला'—परन्तु इससे पहले कि वह कुछ बोले, दूर से गम्भीर शंखनाद सुनाई दिया और इस आवाज के कान में पड़ते ही चौला बिछौने पर उठकर बैठ गई।

'मेरे नाथ का शंखनाद,' वह विह्वल होकर चारों ओर देखने लगी, 'माँ, माँ, मेरे नाथ बुलाते हैं। मुझे ले चल भगवान् के पास। नाथ, प्रभो, मैं आई—यह आई।'

शिवराशि हँसा। वस्तुतः चौला में महामाया उतरी दिखाई देती थी और उसने जिस अवसर का निश्चय किया था वह आ पहुँचा था। 'चौला, ठीक है, तुझे भगवान् बुलाते हैं। मैं तुझे लिवाने आया हूँ।'

चौला तत्काल उठी और अभिसारिका की-सी उत्सुकता से पास आई, 'राशिजी, सचमुच ? तो मुझे ले चलो, ले चलो, मुझे मेरे स्वामी को बताओ, मेरे जटाधारी शम्भु को।' आधे दबे होंठ मिलन-लालसा को व्यक्त कर रहे थे। शिवराशि चौला के कन्धे पर हाथ रखकर उसे दरवाज़े की ओर ले जाने लगा।

गंगा ने बीच में आकर कहा, 'राशिजी, यह क्या करते हो ? चौला को कहाँ ले जाते हो ?'

सिद्धेश्वर, गंगा को यहीं रख, इसका वहाँ काम नहीं,' कहकर शिवराशि चौला को ले गया और सिद्धेश्वर ने गंगा को उसीके घर में बन्द करके साँकल लगा दी।

जब सामन्त ने त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर में चौला को अन्दर आते देखा तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने तो यह सोचा था कि शिवराशि तड़पती हुई चौला को उसकी मरज़ी के विरुद्ध उठा लाएगा, लेकिन उसके बदले चौला इस प्रकार आ रही थी जैसे कोई चाव-भरी, लाड़ली प्रियतमा उत्साह में डूबी हुई अपने प्रियतम से मिलने आती है। उसकी आँखों में उत्साह था; खुले होंठों से अधीरता की साँस निकल रही थी; उसके पैरों में भी ठुमुक थी। वह हरिणी की भाँति नाचती-कूदती आ रही थी—छोटी और सुकुमार, वायु में डोलती कमलिनी की भाँति। लोक-मर्यादा से अस्पृष्ट वह आई। उसके मुख पर प्रणय-भावना के दिव्य उल्लास की छाया थी। उस समय चौला की वही दशा थी, जो प्रणय की तीव्रता का अनुभव करने वाली किसी स्त्री की होती। सामन्त ने जैसा उसे पहले देखा था उससे अब हज़ार गुनी देदीप्यमान वह दिखाई देती थी। वह क्षण-भर को इस दिव्यता के दर्शन में मग्न होकर अवसर के गाम्भीर्य को भी भूल गया।

'मेरे शम्भु यहीं हैं—इस मन्दिर में?' उसने चारों ओर देखकर पूछा। उसकी आँखों में तेज था, परन्तु यह नहीं देख सकती थी कि उसके आस-पास क्या है?

'हाँ, आज यहीं तेरी बाट देखते हैं,' शिवराशि ने कहा।

चारों ओर मशालें लेकर खड़े हुए बाबा इस त्रिपुर-सुन्दरी को साक्षात् आते देखकर नीची आँखें किये स्तवन बोल रहे थे। वह भीतर के दरवाज़े में अदृष्ट हो गई—मनोहर विद्युल्लेखा के समान। शिवराशि और बाबा उसके पीछे-पीछे गये। शिवभक्ति ने क्षण-भर के लिए उनकी विषय की मलिनता को धो दिया था।

वह जल्दी से, अधीर पगों से अन्दर आई। उसने अपनी पूजा करने के लिए उत्सुक अन्धकार में खड़े स्त्री-पुरुषों को नहीं देखा। उसका वेश महामाया की पूजा-विधि के अनुकूल नहीं था और उसके शरीर पर

लेपन भी नहीं था। उसने मन्त्रों से शुद्ध हुई मदिरा का पान नहीं किया था। लेकिन किसीको इस बात का ध्यान तक न रहा कि उसे यह सब करना चाहिए। उनको तो वह भगवान् शंकर से मिलने दौड़ती हुई प्रणय-विह्वल जगदम्बा त्रिपुर-सुन्दरी जान पड़ी। मन्दिर के वृद्ध पुजारी ने हर तीन महीने के बाद भिन्न-भिन्न स्त्रियों में त्रिपुर-सुन्दरी को उतरते देखा था, इसलिए उनके लिए यह नया अनुभव नहीं था। परन्तु आज उनके भी होश-हवास जाते रहे। 'जय महामाया!' शब्द से अर्घ्य देने के बाद वह कुछ कर या कह न सका। परन्तु शिवराशि इस अवसर से लाभ उठाना न भूला। गंगा सर्वज्ञ को शंकर के भाव से भजती थी, चौला उसे उस भाव से क्यों नहीं भजती? वह चौला के आगे होकर त्रिपुर-सुन्दरी के गर्भद्वार के सामने जा खड़ा हुआ और पास ही के आले में पड़ा त्रिशूल अनजाने ही उसके हाथ में आ गया।

चौला आई मन्दिर में—दौड़ती। अधीर नयनों से उसने शिवराशि को बीच में खड़ा देखा, 'शिवराशि, मेरे नाथ कहां हैं?'

'ये रहे,' शिवराशि ने दोनों भुजाएं फैलाकर बताया। परन्तु चौला में इस संकेत को समझने की शक्ति न थी। उसने शिवराशि को दूर हटाया और वह दौड़ती हुई गर्भद्वार में पहुंची, 'मेरे नाथ, मैं आ गई! यह आई! यह आई!' और वह मन्दिर के शिवलिंग से लिपट गई तथा मनमाने ढंग से प्यार करने लगी। पीछे खड़े हुए नर-नारी गर्भद्वार में से इस अद्भुत प्रणय को अत्यन्त आदर से देख रहे थे।

लेकिन चौला शीघ्र मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। यह देखकर प्रेक्षकों को भान हुआ कि चौला ने बिना विधिवत् तैयारी किये शंकर के लिंग को स्पर्श किया था। जो कपड़े उसने पहने थे वे ही उसके शरीर पर थे, उसने लेपन नहीं किया था; महामाया के प्रतीक की पूजा भी नहीं हुई थी! उस समय सभी विधियां भुला दी गई थीं। जो विधियां त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा का रहस्य थीं, उन्हें भ्रष्ट करके चौला अपनी शक्ति द्वारा इन बीभत्स रस के प्रेमियों को विशुद्ध भाव-भूमि पर ले आई थी। लेकिन जैसे ही शक्ति का यह जादू समाप्त हुआ वैसे ही वे एक-दूसरे की ओर देखकर, इस नवीन पूजा-विधि के प्रति अरुचि का प्रदर्शन करने लगे।

शिवराशि के पल्ले तो गुरु के मान और आज्ञा दोनों भंग करने पर
ी असफलता ही पड़ी थी। उसे यह न सूझा कि वह क्या करे। लेकिन
वे बाबा बड़बड़ाए, 'अधूरी विधियाँ पूरी होनी चाहिएँ, महामाया का
मन्दिर इस प्रकार भ्रष्ट नहीं होगा।'

कुण्डला की आवाज भी सुनाई दी, 'जगदम्बा ऐसे नहीं उतरतीं—
यह तो ढोंग था या पागलपन।'

और किसीने सुझाव दिया कि बेसुध चौला को ले जाकर विधिवत्
तैयार करो और महामाया की पूजा क्रिया पूर्ण करो।

अनेक जीभें चलने लगीं, रसिक नर-नारी अधीर हो गए।

: ३ :

गंग सर्वज्ञ प्राणायाम करने बैठे, परन्तु वे सदैव की भाँति स्वस्थता प्राप्त न कर सके। ध्यान करने के लिए उत्सुक उनका चित्त अपनी वृत्तियों को किसी भी प्रकार न रोक सका। अमीर के आक्रमण का विचार उनको सदा आया करता था। उनको अपने ध्यानस्थ चित्त के आगे सहसा चौला क्रन्दन करती हुई दिखाई दी। वह चिल्ला रही थी; उसे भ्रष्ट किया जा रहा था। शिव-भक्ति के सत्त्व के समान उस बाल-नर्तकी पर कुछ अत्याचार हो रहा था। ध्यान टूटा, उन्होंने प्राणायाम छोड़ और खड़े हो गए। जिस प्रकार चंचल हरिण चारों ओर देख शिकारी बचने का प्रयत्न करता है, उसी प्रकार उन्होंने चारों ओर दृष्टि डाल जल्दी से सांस ली और वे नर्तकियों के आवास की ओर गये। मन्दि के आगे से गुरुदेव को इस प्रकार तेजी से जाते देखकर एक-दो शि को आश्चर्य हुआ, परन्तु उनके श्रद्धावान् हृदय में इस तेजी का का खोजने की जिज्ञासा न हुई।

सर्वज्ञ गंगा के घर के सामने पहुँचे तो वहाँ साँकल लगी थी। ले जैसे ही वह पीछे लौटने को हुए कि उन्हें अन्दर से गंगा का रुदन दिया। वे शीघ्र मुड़े और साँकल खोलकर अन्दर घुस गए। वहाँ औंधे मुँह पड़ी रो रही थी।

'गंगा, क्या है? क्यों रोती है?'

'गुरुदेव!' सिसकी भरकर गंगा बोली, 'उस पगली ल

राशिजी अभी-अभी त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर में ले गए हैं। मेरी इस लड़की का क्या होगा?'

गंग सर्वज्ञ की स्वस्थता क्षण-भर को जाती रही। उनकी दृष्टि अनेक वर्षों के तप से विशुद्ध हो गई थी और जब वह छोटे थे तभी से उनको विश्वास हो गया था कि त्रिपुर-सुन्दरी की वाममार्गीय विधियों मे अत्याचार और अधमता का अंश है। बहुत वर्ष हुए, उन्होंने इन विधियों का संशोधन करने का प्रयत्न किया था। पूर्ण इच्छा के बिना कोई इनमे दीक्षा न ले, दीक्षित हुए बिना इन्हे कोई देख न सके; स्वयं उनके या शिवराशि के बिना कोई इसका उत्सव न मना सके—इन नियमों को तो उन्होंने पहले ही से लागू कर दिया था। कितने ही वर्षों से तो उन्होंने स्वयं इन विधियों और उत्सवों में [illegible]

स्पष्ट कह दिया था कि उसे उत्सव में नहीं ले जाया जाएगा। राशि के मुख पर वासना थी, इसे उन्होंने देख लिया था। जैसे शिष्य के अन्य दोषों को वे सखेद स्वीकार करते थे वैसे ही इसे भी उन्होंने मानसिक दृष्टि से स्वीकार कर लिया था। लेकिन सामन्त से बातचीत करने में वे इस विषय में कोई कदम उठाना भूल गए। अब गंगा की हकीकत सुनकर उनका पुण्य-प्रकोप प्रज्वलित हो उठा। पल-भर द्वारा की परीक्षा करके वे पूर्ववत् स्वस्थ बने रहे, परन्तु उन्होंने निश्चय किया कि वर्षों का संकल्प आज कार्य-रूप में परिणत होना ही चाहिए।

'मैं जानता नहीं था,' उन्होंने कहा, 'चल मेरे साथ। वह मशाल ले ले।'

गंगा ने आंसू पोंछकर मशाल हाथ में ली और उसे साथ लेकर सर्वज्ञ ने त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर में जाने के लिए गुप्त द्वार का कुन्दा खटखटाया। जो बाबा वहां पहरा दे रहा था उसने किवाड़ खोले, परन्तु वहां गुरुदेव को खड़ा देखकर उसके होश उड़ गए।

'गुरुदेव!' वह बोल उठा।

'हां, यहीं खड़ा रह।'

बाबा घबरा गया और जहां था वहीं स्तब्ध बनकर खड़ा रहा।

गंगा मशाल लेकर आई और उसके धुंधले प्रकाश में भी सर्वज्ञ ने सामन्त को खम्भे से बँधा देख लिया।

'सामन्त, तू यहां कैसे?'

'गुरुदेव, मुझे यहां त्रिपुर-सुन्दरी की दीक्षा लेने के लिए लाया गया,' कर्कशता से हँसकर सामन्त ने कहा, 'और जब मैंने दीक्षा लेने से इन्कार किया तो मुझे यहां बांध दिया गया। साथ ही एक बाबा ने मेरे प्राण लेने का निश्चय किया है। मैं उसकी राह देख रहा हूं।'

'और जिस पर समस्त प्रभास का बोझ है, उसे यहां समाप्त कर दिया जाए, जिससे विनाश और पहले आ जाए। भगवान् पिनाकपाणि, यह आप कैसी बुद्धि दे रहे हैं? इधर आ तो।' उन्होंने उस बाबा को आज्ञा दी, 'खोल इसे।'

उस बाबा ने झट से सामन्त के बन्धन खोल दिए।

'चौला को देखा ?'

'हाँ, कुछ देर हुई, वह राशिजी के साथ आई और अन्दर चली गई।' सामन्त ने कहा।

'अपनी मरज़ी से ?'

'हाँ, हँसती और कूदती।'

'हाँ,' गंगा ने कहा, 'शिवराशि ने कहा कि भगवान् शम्भु उसकी बाट देखते खड़े हैं, इसलिए वह दौड़ती गई। आज वह भक्ति-विह्वला होकर ही गई थी।'

'प्रसन्नता से गई ?' गुरुदेव ने पूछा। यदि वह प्रसन्नता से गई हो तो फिर आपत्ति कैसे हो सकती है, इस बात की शंका उनकी आवाज में स्पष्ट हो रही थी।

'नहीं, नहीं। ऐसी दीक्षा वह कभी प्रसन्नता से स्वीकार नहीं करेगी,' गंगा ने कहा।

'अरे, ये तो विचित्र लोग हैं,' सामन्त ने कहा। उसकी आँखों के सामने उद्दाम वासना से भयंकर बनी हुई कुण्डला आई और उसे कँपकँपी आ गई।

'हूँ' कहकर सर्वज्ञ अन्दर गये और मुक्त सामन्त तथा गंगा दोनों उनके साथ हो लिये। वे अन्दर चौक में त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर के सामने पहुँचे। वहाँ सामन्त को भूतावलि दिखाई दी और वह आँखें मूँदकर खड़ा हो गया। एक ही मशाल के चंचल प्रकाश में अनेक नर-नारी त्रिपुर-सुन्दरी के स्तवन गाते गोलाकार घूम रहे थे और हाथ में ताल दे रहे थे। ये स्त्री-पुरुष थे या उनकी काली और बड़ी छाया, यह समझ में नहीं आता था। कुछ भी हो, सामन्त को अपने सात-रिश्तेदारों के घावों को देखकर जो कँपकँपी आई थी वही इन छायाओं को देखकर आ रही थी।

इस समय वाममार्गियों की बीभत्स विधियों को देखकर, उनकी कल्पना-मात्र से ही उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

ये सब तीन-चार आदमियों के आसपास फिर रहे थे। उनमें से एक के हाथ में मशाल थी। गाते हुए पुजारी सहसा चुप हो गए।

स्तवन और पगध्वनि को भेदती भय-त्रस्त मुख से निकली हुई चीख-पर-चीख उनके कान में पड़ने लगी। सर्वज्ञ और गंगा यह समझ गए कि वह किसकी आवाज़ थी। सामन्त को भी पता चल गया। सर्वज्ञ ने पग उठाया; गंगा थर-थर काँपने लगी, परन्तु सामन्त का धीरज चुक गया। म्यान से तलवार निकालकर सिंह के समान गर्जना करता हुआ वह इन वीभत्स रस के रसिकों पर टूट पड़ा। हाथ में तलवार लेकर आते हुए इस काल भैरव को देखकर उन नर-नारियों ने रास्ता दिया। बीच में वृद्ध पुजारी मशाल लिये खड़ा था। एक बलिष्ठ स्त्री छूटने का प्रयत्न करती हुई चौला को पकड़े खड़ी थी। वह अभी-अभी होश में आई थी और अपने आसपास घूमने वाले स्त्री-पुरुषों के रूप को देखकर चीख रही थी। सामने शिवराशि उसकी आरती उतार रहे थे।

सामन्त एक छलांग मारकर पास आया और उस स्त्री को दूर हटाकर छूटने का प्रयत्न करती चौला को अपने हाथ में लिया। राशि की आरती की ज्वालाओं से चमकते हुए उसके खड्ग ने क्षण-भर के लिए सबको भयभीत बना दिया।

'राशि, यह क्या?' सर्वज्ञ ने पूछा। राशि की आँखें फट गई। एक ओर कालभैरव के समान भयंकर खड्गधारी सामन्त खड़ा था और दूसरी ओर नयनों को उपालम्भ देते गुरुदेव यहाँ विद्यमान थे। उसके हाथ काँपे और उनमें से झनझनाती हुई आरती पृथ्वी पर गिर पड़ी।

'गुरुदेव! गुरुदेव! गुरुदेव!' घबराते हुए स्त्री-पुरुषों के मुख से आवाज़ निकली।

'राशि, तूने आज महामाया की पूजाविधि का महासूत्र तोड़ा है,' सर्वज्ञ ने अत्यन्त खेद से कहा, 'तू चौला को उसकी मरज़ी के विरुद्ध पूजा में लाया है।'

'नहीं, नहीं। वह इच्छा से आई है—अपनी मरज़ी से।' सिद्धेश्वर साहस करके राशि की सहायता के लिए बढ़ा।

'इसी लिए चीख रही थी, क्यों? सिद्धेश्वर, तू लकुलेश मत के लिए कलंक-रूप है। राशि, इस समय यहाँ से जा। कल मैं तुझे उचित प्रायश्चित्त बताऊँगा।'

'नहीं, नहीं। यह अपनी मरजी से आई,' राधि ने कहा।

'हाँ, हाँ, हाँ।' वृद्ध पुजारी ने आगे आकर समर्थन किया। उसके पास दो-तीन और बाबा भी आकर खड़े हो गए। उनके मुख पर गुरु के प्रति स्पष्ट विरोध झलक रहा था। एक-दो तो हाथ में चिमटा लिये थे। और उनकी खटखटाहट से सर्वज्ञ को डराने का प्रयत्न कर रहे थे।

शान्त और स्वस्थ सर्वज्ञ इन सबको म्लान वदन से देख रहे थे।

'तुम सबने मिलकर आज इस मन्दिर को भ्रष्ट किया है,' सर्वज्ञ ने शान्ति से कहा, 'आँखें हों तो देखो, चौला कितनी लज्जा से, कितने भय से तुम्हारी आकृतियाँ देख रही है। यह महामाया का मन्दिर है, दम्भियों का नहीं, अत्याचारियों का नहीं, विषय-लोलुपों का नहीं। जब तक तुम सब पूरा-पूरा प्रायश्चित्त नहीं करोगे तब तक यह मन्दिर आज से बन्द रहेगा।'

'यह मन्दिर बन्द रहेगा? कौन करेगा?' वृद्ध बाबा ने आगे आकर भयंकर आवाज में पूछा। उसका हाथ चिमटा उठाने के लिए तरस रहा था, यह भी स्पष्ट दिखाई देता था।

गुरुदेव खिलखिलाकर हँस पड़े, 'कौन करेगा? मैं स्वयं—[illegible] लकुलेश के सम्प्रदाय के अधिष्ठाता के अधिकार से।'

'ताकत है आपमें?' वृद्ध बाबा ने हाथ उठाया और [illegible] ही उसका हाथ पकड़ने दौड़ा।

'सामन्त, दूर हट', शान्ति से गुरुदेव ने कहा, '[illegible] चाहता है? ले यह मस्तक अपने गुरु का। अपनी [illegible] कहकर गुरुदेव ने मस्तक झुका दिया।

वृद्ध बाबा की आँखें आकुल-व्याकुल हो [illegible] छूट गया और वह पृथ्वी पर पछाड़ खाकर [illegible] पगों में लोटकर सैकड़ों वर्ष से बन्द न हुए [illegible] गर्भद्वार को बन्द कर दिया।

'तुम्हारे पाप के संचय से [illegible] दानव के समान अमीर इस [illegible] जब तक प्रायश्चित्त से तुम अपने [illegible]

तब तक महामाया की पूजा मेरे अतिरिक्त कोई नहीं करेगा, और सब लोग आत्मबल के इस प्रभाव के आगे नतमस्तक होकर तितर-बितर हो गए।

सर्वज्ञ कुछ देर तक मन्दिर के चौक में अकेले खड़े रहे। चौला माँ की गोद में सिर रखे अपनी दुर्दशा को याद करके सिसकियाँ भरकर रो रही थी। सामन्त एक दीवार का सहारा लेकर बैठा था।

'गंगा,' सर्वज्ञ ने कहा, 'चौला को अब घर ले जा। इस परमधाम का क्या होने वाला है? सामन्त!'

'जी।'

'बेटा, रात अधिक हो गई है। अब तू जाने की तैयारी कर।'

'जैसी आज्ञा।'

'गंगा, इस चौहान को पहचाना? इसको और इसके बाप को चौला ने भस्म लगाई थी। याद है, चौला!'

चौला भक्ति के आवेश से जगी थी, इसलिए उसने सामन्त को पहचान लिया। सामन्त भी पास आया। दोनों ने एक-दूसरे को देखा।

'गंगा, चौहान बहादुर है। पन्द्रह दिन में तो इस पर दैवी प्रकोप हुआ है। अपने विशाल कुल में यह अकेला ही आज सोमनाथ की सेवा के लिए तत्पर खड़ा है। इसे अपने यहाँ ले जा और खिला। इस बेचारे ने कुछ खाया ही नहीं। सबको इसीका सहारा है।' यह कहकर सर्वज्ञ नीचा मुँह किये, खेदयुक्त नयनों को पृथ्वी पर गड़ाए धीमे-धीमे चले गए।

चौला लजाई हुई खड़ी थी। थोड़ी देर पहले सामन्त ने उसे जिस अवस्था में देखा था उसका स्मरण आने के कारण वह पृथ्वी में समा जाने के लिए मार्ग माँग रही थी। गंगा ने उसे प्रेम से अपने साथ ले लिया।

'चौहान, चलो। मुझे बताओ तो सही कि तुम पर क्या-क्या बीती है?'

और बहुत दिन बाद सामन्त ने आप-बीती कहते-कहते आनन्दमग्न होकर रात बिताई। चौला इस साहसी मनुष्य की बातें सुनकर नये उत्साह का अनुभव करने लगी।

ग्यारहवाँ प्रकरण

अनहिलवाड़ पाटण

: १ :

दो सौ वर्ष पहले अनहिलवाड जगल के बीच एक गढ़-मात्र था। गुजरात में ऐसे सैकड़ो गढ थे। वहाँ के चावडा राजा अक्सर कुछ आदमी लेकर बाहर निकलते और पडोस के गढ़ों को लूटने, गाँवों में अपनी अमलदारी चलाने और भीलों को जगल में भगा देते। कभी तो पाटण के स्वामियो की हद बढती और कभी घटती, कभी उन्हें किसी पड़ोसी राजा के डर के मारे पावागढ में शरण लेनी पडती और कभी उनकी धाक लाट और सौराष्ट्र के प्रदेशो में जमती दिखाई देती।

लेकिन इस गढ का भविष्य विधाता ने सोने के अक्षरो में लिखा था। संवत् १०१७ में चालुक्य वश के मूलराजदेव इसकी गद्दी पर बैठे। तब से इसके रंग-ढग बदल गए, आसपास के जगल काट डाले गए और उसकी सरस भूमि में सुन्दर तथा सुघड गाँव बसने लगे। राजा के शौर्य ने इन गाँवो को सुरक्षित किया और श्रीमाल, कन्नौज, उज्जयिनी तथा भृगुकच्छ की भद्र जनता वहाँ आकर रहने लगी। गुर्जर भूमि की शूरवीर जातियाँ भी धीरे-धीरे इस विजयी वीर के छत्र के नीचे आकर अधीनता स्वीकार करने लगी। मूलराजदेव की कुशलता के कारण अनहिलवाड का विस्तार और प्रताप दोनों साथ-साथ बढ़े। जहाँ एक छोटा-सा गढ था वहाँ खम्भात, भरूच और माँगरोल के व्यापारी समृद्धि के लिए लेन-देन करने लगे, वहाँ देश-देश के विद्वान् ब्राह्मणों ने संस्कार और विद्या के केन्द्र स्थापित किये। मिट्टी के छोटे-छोटे घरो का स्थान प्रासाद लेने लगे। सुन्दर मन्दिरो के गगनचुम्बी शिखर धर्म और समृद्धि की

देने लगे। इन सबके आसपास एक बड़ा भव्य गढ़ बनाया गया।
अनहिलवाड़, जो केवल एक गढ़ था, अब पाटण हो गया।
मूलराजदेव की सत्ता चारों ओर बढ़ने लगी। उसकी सत्ता को
गढ़ के प्रतापी राजा ने माना, कच्छ ने माना, लाट ने माना और
रत प्रदेश के राजाओं में पाटण के नरेश ने अग्रस्थान पाया। जालोर,
रवाड़ और स्थानक (थाना) के राजाओं ने उससे मित्रता जोड़ ली।
उज्जयिनी के चक्रवर्ती राजा इस दिन-दिन प्रबल होते पड़ोसी को उठते
ो गिराने के अनेक प्रयत्न करने लगे, परन्तु वे एक में भी सफल नहीं
हुए। और जब मूलराजदेव कैलाशवासी हुए तब अनहिलवाड़ पश्चिम
की राजधानी बन चुका था।

मूलराजदेव के कुलदेवता भगवान् सोमनाथ थे। उनके वंशजों पर
भी भगवान् की कृपा थी। जब मूलराजदेव के पुत्र चामुण्ड और उसके
पुत्र दुर्लभसेन की अनीति और संकीर्ण बुद्धि से धरित्री काँपने लगी, तब
लकुलेश मत के अधिष्ठाता और सोमनाथ के मठाधिपति गंग सर्वज्ञ के
आशीर्वाद से भीमदेव इस गद्दी पर बैठे।

: २ :

आज जबकि भगवान् के परम धाम को तोड़ने के लिए गजनी का
अमीर चढ़ा आ रहा था तब भगवान् की कृपा से बाणावली भीम जैसा
प्रतापी वीर पाटण की गद्दी पर था। उसने यवन का विनाश करने का
व्रत लिया। जो कार्य लोहकोट का राजा न कर सका, वीर बालमदेव
नहीं कर सका, उसे करने के लिए वह तैयार हुआ। उसकी वीर हुंका
गाँव-गाँव में सुनाई दी और कच्छ और सोरठ, श्रीमाल और गुजरा
लाट और कोंकण के वीरों के हृदय में उसकी प्रतिध्वनि गूंजी। जो
थे वे प्रान्त हो गए। सबकी दृष्टि पाटण पर जम गई। भिन्न-भि
राज्यों के लोग एक झण्डे के नीचे आने के लिए तरसने लगे। प्रति
रखने वाले राजा पाटण के स्वामी की आज्ञा मानने में बड़प्प
अनुभव करने लगे। भृगुकच्छ से दादा चालुक्य आये; वैर विस
जूनागढ़ का राजा रत्नादित्य आया; कच्छ से कमा लखाणी आया
से त्रिलोचनपाल परमार आया। द्वारिका से बाराबाड़ा और दमन

तक सोमनाथ की रक्षा करना प्रत्येक का परम मनोरथ हो गया; और बाणावली भीमदेव महाराज को इस मनोरथ को सिद्ध करने का साधन ठहराया गया। पाटण स्वधर्म-रक्षा और स्वाधीनता की अमर मूर्ति बना। एक वीर की आज्ञा, एक नगर का प्रेम और आक्रमण का विरोध करने के लिए एकाग्र चिन्ता—इन तीनों ने मिलकर गुजरात की एकता और पाटण की महत्ता को स्थापित किया।

भीम सबके बीच बिजली की तरह चमकता। किसी स्थान पर वह वीरता जगाता तो किसी स्थान पर भयंकर क्रोध से शिथिलता को दबाता। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में युयुत्सा की अग्नि सदैव प्रज्वलित रहती। कितनी ही बार वह घोड़े पर चढ़कर आसपास चक्कर लगाता और उत्साह की चिनगारी रख आता। बहुत बार सैनिकों की व्यूह-रचना में व्यस्त हो जाता। उसने गाँव-गाँव में ढिंढोरा पिटवा दिया था कि हर आदमी को यवनों का सामना करने पहुँचना है। इस निमन्त्रण से आकर्षित होकर नित्यप्रति योजनों दूर से शूरवीर समरांगण महोत्सव मनाने आ पहुँचते। इन सबको शस्त्र-सज्जित करने, उनको विविध आयुधों का उपयोग सिखाने, उनको टुकड़ियों में बाँटने, उनकी हर आवश्यकता-पूर्ति की योजनाएँ बनाने और कोट के कंकड़-पत्थर को सुरक्षित रखने के काम में भीमदेव और विमल मन्त्री रात-दिन लगे रहते।

इस उत्साह की बातें घर-घर होने लगीं। उसकी प्रेरणा से घर-घर वीरों को विदा दी जाने लगी। उत्साहपूर्ण युवकों की छाती चौड़ी हो रही थी, वीरांगनाएँ भय से धड़कते हृदय से कुंकुम-केसर से तिलक करतीं। यवनों के आक्रमण को रोकने में तत्पर अप्रतिरथ भीम की दन्त-कथा सुनकर युद्धोत्साह का उदधि उछला और इस सागर के मन्थन के लिए वह सुमेरु पर्वत के समान हँसते हुए मुख और श्रद्धालु हृदय से बीच में घूमने लगा।

राजगढ़ की एक छोटी-सी कोठरी में दामोदर मेहता बैठे थे। कितने ही दिनों से उनकी आँखों में नींद नहीं आई थी। उनके पास अमीर की विजय-यात्रा की खबर आती थी और उनकी चिन्ता बढ़ती थी। उन्होंने सबसे पहले पाटण के वृद्धों, स्त्रियों और बालकों को पावागढ़

भेज दिया, वेदपाठियों को खम्भात और भरूच रवाना किया, और निरुपयोगी जनसमूह के दूर भाग जाने की व्यवस्था कर दी। अमीर के पाटण का घेरा डालने पर अधिक समय ठहरा जा सके, इस आशा से उन्होंने चारों ओर से अनाज मँगाकर कोठार भरवा दिए। गाँव के जलाशयों में महीने-भर के लिए पानी भरवा दिया। खम्भात के जहाजों को इकट्ठा करके उनको युद्ध के लिए तैयार किया। आसपास के हर एक राजा के दरबार में उन्होंने भीमदेव के सन्धि-विग्रहक के रूप में कार्य किया था, इसलिए उनके साथ बातचीत करने, उनकी सेनाओं को मँगाने और जो माँगे उसे पैसे से रिझाने का काम भी उन्हीं के सिर पड़ा।

परन्तु इस समय उनको इतने से ही सन्तोष नहीं था। उन्होंने गुजरात के गाँव-गाँव की व्यवस्था अपने ऊपर ले ली थी। गजनी के अमीर के घातक व्यवहार की जो बात हर एक की जीभ पर थी वह अधिक न चल सके, यह सोचकर उन्होंने सभी गाँव की स्त्रियों और बालकों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देने की सलाह दी थी।

इन सब कामों को ये नागरिक-शिरोमणि हँसते हुए मुख और मीठी बोली से करते रहते। विमल मन्त्री की बात सच थी; किसी दिन भी वे आपे से बाहर हुए हों, ऐसा न किसी ने देखा न सुना था। भीड़ में से रास्ता निकालने के लिए वे सदा ही तैयार रहते।

इस प्रकार वीर गुजरात अमीर का स्वागत करने के लिए कटिबद्ध हो रहा था।

: ३ :

आज तीन दिन से हर एक सैनिक के मुँह में एक ही बात थी और हर एक साधारण आदमी के मन में यह बात अश्रद्धा उत्पन्न करती थी। कहा जाता था कि रेगिस्तान के सम्राट् माने जाने वाले घोघावापा को अमीर ने मारा था और उनका भूत सोमनाथ भगवान् को बचाने के लिए गुजरात की ओर आया था। बहुतों ने इस भूत को देखा था; कुछ ने तो उसके साथ बातें भी की थीं। वह कहता था कि अमीर बड़ा बलशाली है, इसलिए सब लोगों को जंगलों में भाग जाना चाहिए और जब

वह लौटने लगे तो पीछे से उनको लूट लेना चाहिए। इस प्रकार सब लोग बातें करते थे और जैसे-जैसे बात बढ़ती थी वैसे-वैसे उनका साहसी हृदय सन्तुलन खोकर अस्वस्थ होता जाता था। सैनिक कहते कि यह बात झूठ नहीं है; दुर्गपाल अरजन, जिन्होंने भूत को देखा था और उसके साथ बातें की थीं, स्वयं पाटण आ पहुँचे थे और उन्होंने इस विषय में महाराज भीमदेव के साथ बातें की थीं। यह भी कहा जाता था कि बाणावली ने इस बात को हँसकर टाल दिया था। लेकिन हँसी में टालने से क्या सब बात झूठ हो सकती है? लोग सकाल हृदय से सिर हिलाने लगे।

स्थान-स्थान पर यही बात चल रही थी। घोघाबापा का भूत उनकी युवावस्था के रूप के समान था। उनकी खाल इतनी ज्यादा सफेद थी कि उसे देखकर लगता था मानो अभी-अभी चिता से उठे हों। उनके गले में भी बड़ा घाव था, जिससे रक्त टपक रहा था। यह वर्णन इतनी बार किया गया था कि जैसे कोई स्वयं भूत देख लेता है वैसे ही उनकी आकृति पाटण के प्रत्येक व्यक्ति के लिए परिचित-सी बन गई थी।

पाटण के चारों ओर योजन तक दिन-दिन बढ़ती हुई सेना की छावनी थी। उसकी सीमा पर एक दिन सन्ध्या-समय कुछ चौकीदार बैठे-बैठे गप्प मार रहे थे। गप्पों का विषय घोघाबापा का भूत था। इसके अतिरिक्त और विषय मिलना कठिन था। इतने में दूर से धूल उड़ती दिखाई दी और चौकीदार बात अधूरी छोड़, शस्त्र सँभाल, उस ओर ध्यान से देखते बैठ गए। सौराष्ट्र के रास्ते से चार ऊँटनियाँ तेजी से चली आ रही थीं। एक चौकीदार ने हुकार करके थोड़ी दूर पर बैठे सैनिक को सावधान किया और इस प्रकार हुकार का यह सन्देश एक के द्वारा दूसरे पर होता हुआ चारों ओर फैल गया।

एक चौकीदार पहली ऊँटनी वाले से मिलने आगे बढ़ा। इस ऊँटनी पर एक युवक बैठा था, जिसे देखते ही चौकीदार के होश उड़ गए। वही भयंकर आँखें, वही चिता से उठे हुए की-सी खाल और वही गले पर गहरा घाव!

कौन हो ?' उसने थर-थर काँपते हुए पूछा ।
'चौहान हूँ । सोमनाथ से चला आ रहा हूँ—भीमदेव महाराज से
ने ।'

'घोघावापा !' चौकीदार बोल उठा । वह युवक हँसा नहीं; भूत
ा कहीं हँसता है ? उसने इनकार भी नहीं किया; सच बात के लिए
या कहीं इनकार किया जाता है ? ऊँटनी वाला आगे बढ़ा ।

दूसरे चौकीदार ने शब्द पकड़ लिए, 'कौन, घोघावापा का भूत ?'
उसने भी भूत को पहचाना और वह अवाक् हो गया ।

तीसरे की भी यही दशा हुई । एक सैनिक से दूसरे सैनिक तक यह
शब्द पहुँचा और ऊँटनी वाला युवक निश्चिन्तता से आगे बढ़ता हुआ
राजगढ़ की ओर चला गया ।

जब युवक की ऊँटनियाँ राजगढ़ के पास पहुँचीं तो उसके दरवाज़े
के आगे सैनिकों की भीड़ खड़ी थी । रात होने को आ गई थी । युवक
ने अपनी ऊँटनी बिठाई और उससे वह और एक वृद्ध ब्राह्मण दो आदमी
उतरे । उस नवागन्तुक को सैनिकों ने आकर घेर लिया ।

'मुझे भीमदेव महाराज से मिलना है । सोमनाथ पाटण से सन्देश
लेकर आया हूँ ।'

तत्काल एक वृद्ध दुर्गपाल गढ़ के दरवाज़े से बाहर आया और ख
हुई भीड़ को हाथ से दूर करने लगा । उसके साथ एक मशालची थ
सबने मार्ग दिया और वृद्ध उसी युवक के सामने आया । उसने युवक
देखा और उसकी आँखें आकुल-व्याकुल हो गईं । उसने पागल की
आँखों पर हाथ रख लिए और जैसे-तैसे अपने साफ़े को सँभाला ।

'घोघावापा ! अरे बाप रे !' कहकर और दोनों हाथ सा
रखकर दुर्गपाल अरजन लौटकर राजगढ़ में जाने लगा । सैनिकों
हवास उड़ गए ।

'दुर्गपाल अरजन, भीमदेव से कहो कि मैं एक आवश्यक
मिलना चाहता हूँ ।'

दुर्गपाल अरजन और उसका मशालची तेज़ी से आगे
सामन्त और उसका वृद्ध साथी अँधेरे में वहीं खड़े रहे । देखते-

गड़े सैनिक तितर-बितर हो गए। घोघाबापा के भूत के साथ लड़ने की हिम्मत किसी में न थी। युवक धीमे-धीमे उनके पीछे गया।

: ४ :

राजगढ़ के सभाभवन में सब लोग विचार करने के लिए इकट्ठे हुए थे। बीच में गद्दी पर स्वयं बाणावली बैठे थे—मूँछों पर ताव देते हुए। उनकी दाईं ओर जूनागढ़ के राव रत्नादित्य थे—अधेड़ उम्र के, विशाल-बाहु, नर-शार्दूल, जो पुराने वैर को भुलाकर मूलराजदेव के वंशज के दाएँ हाथ बने थे। उनके पास कच्छ के वृद्ध वीर बन्धुवर कमा लगाणी बैठे थे। उनकी सफेद भरी हुई दाढ़ी के बीच उनका झुर्रीदार मुँह अनेक दशकों के अनुभव की साक्षी दे रहा था। यद्यपि वे एक आँख से काने थे तथापि उनकी अच्छी आँख दूसरे आदमियों की दो आँखों की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण और दीर्घदर्शी थी। भीमदेव महाराज की बाईं ओर भरुच के राजाओं का वंशज दद्दा बैठा था। उसे पाटण की धाक के कारण ही यहाँ आना पड़ा था और कब वापस लौटना होता है, यही चिन्ता उसके मुख पर झलक रही थी। उसके पास अठारह वर्ष का उत्साही बालक और भीमदेव का परम भक्त त्रिलोचनपाल परमार प्रशंसा-मुग्ध नयनों से भीमदेव की ओर देखता हुआ बैठा था। भीमदेव के दोनों मन्त्री भी उसी के पास थोड़ी दूर पर बैठे थे और चारों ओर दूसरे मन्त्री और सेनापति बैठे थे।

इस समय एक ही विचारणीय प्रश्न था और वह यह कि आगे बढ़कर अमीर की सेना का मुकाबला किया जाए या तैयारी करके यहीं लड़ने के लिए ठहरा जाए।

'मैं तो निश्चय कर चुका हूँ कि आगे बढ़ना ही है। पहली चोट तो राणा की ही होगी,' भीमदेव ने कहा, 'अपनी सेना के आगे उसकी क्या गिनती है?'

दामोदर मेहता ने हँसकर सिर हिलाया, 'महाराज, जो इतनी-इतनी सेनाओं को हराकर आ रहा है, उसकी अवहेलना कैसे की जा सकती है?'

'लेकिन अपनी सेना को तो देखो। फिर उसके आने से पहले तो यह लड़ाई हो जाएगी। साथ ही वह थका हुआ है और हम ताजा हैं।'

'कौन हो ?' उसने थर-थर काँपते हुए पूछा।

'चौहान हूँ। सोमनाथ से चला आ रहा हूँ—भीमदेव महाराज से मिलने।'

'घोघावापा !' चौकीदार बोल उठा। वह युवक हँसा नहीं; भूत क्या कहीं हँसता है ? उसने इनकार भी नहीं किया; सच बात के लिए क्या कहीं इनकार किया जाता है ? ऊँटनी वाला आगे बढ़ा।

दूसरे चौकीदार ने शब्द पकड़ लिए, 'कौन, घोघावापा का भूत ?' उसने भी भूत को पहचाना और वह अवाक् हो गया।

तीसरे की भी यही दशा हुई। एक सैनिक से दूसरे सैनिक तक यह शब्द पहुँचा और ऊँटनी वाला युवक निश्चिन्तता से आगे बढ़ता हुआ राजगढ़ की ओर चला गया।

जब युवक की ऊँटनियाँ राजगढ़ के पास पहुँचीं तो उसके दरवाज़े के आगे सैनिकों की भीड़ खड़ी थी। रात होने को आ गई थी। युवक ने अपनी ऊँटनी बिठाई और उससे वह और एक वृद्ध ब्राह्मण दो आदमी उतरे। उस नवागन्तुक को सैनिकों ने आकर घेर लिया।

'मुझे भीमदेव महाराज से मिलना है। सोमनाथ पाटण से सन्देश लेकर आया हूँ।'

तत्काल एक वृद्ध दुर्गपाल गढ़ के दरवाज़े से बाहर आया और खड़ी हुई भीड़ को हाथ से दूर करने लगा। उसके साथ एक मशालची था। सबने मार्ग दिया और वृद्ध उसी युवक के सामने आया। उसने युवक को देखा और उसकी आँखें आकुल-व्याकुल हो गईं। उसने पागल की तरह आँखों पर हाथ रख लिए और जैसे-तैसे अपने साफ़े को सँभाला।

'घोघावापा ! अरे बाप रे !' कहकर और दोनों हाथ साफ़े पर रखकर दुर्गपाल अरजन लौटकर राजगढ़ में जाने लगा। सैनिकों के होश-हवास उड़ गए।

'दुर्गपाल अरजन, भीमदेव से कहो कि मैं एक आवश्यक काम से मिलना चाहता हूँ।'

दुर्गपाल अरजन और उसका मशालची तेज़ी से आगे गये और सामन्त और उसका वृद्ध साथी अँधेरे में वहीं खड़े रहे। देखते-देखते वहाँ

गढ़ के सैनिक तितर-बितर हो गए। घोघाबापा के भूत के साथ लड़ने की हिम्मत किसी में न थी। युवक धीमे-धीमे उनके पीछे गया।

: ४ :

राजगढ़ के सभाभवन में सब लोग विचार करने के लिए इकट्ठे हुए थे। बीच में गद्दी पर स्वयं बाणावली बैठे थे—मूँछों पर ताव देते हुए। उनकी दाईं ओर जूनागढ़ के राव रत्नादित्य थे—अधेड़ उम्र के, विशाल-बाहु, नर-शार्दूल, जो पुराने वैर को भुलाकर मूलराजदेव के वंशज के दाएँ हाथ बने थे। उनके पास कच्छ के वृद्ध वीर बन्धुवर कमा लाखाणी बैठे थे। उनकी सफेद भरी हुई दाढ़ी के बीच उनका झुर्रीदार मुँह अनेक वर्षों के अनुभव की साक्षी दे रहा था। यद्यपि वे एक आँख से काने थे तथापि उनकी अच्छी आँख दूसरे आदमियों की दो आँखों की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण और दीर्घदर्शी थी। भीमदेव महाराज की बाईं ओर भरुच के राजाओं का वंशज दद्दा बैठा था। उसे पाटण की धाक के कारण ही यहाँ आना पड़ा था और कब वापस लौटना होगा है, यही चिन्ता उसके मुख पर झलक रही थी। उसके पास अठारह वर्ष का उत्साही बालक और भीमदेव का परम भक्त त्रिलोचनपाल परमार प्रशंसा-मुग्ध नयनों से भीमदेव की ओर देखता हुआ बैठा था। भीमदेव के दोनों मन्त्री भी उसी के पास थोड़ी दूर पर बैठे थे और चारों ओर दूसरे मन्त्री और सेनापति बैठे थे।

इस समय एक ही विचारणीय प्रश्न था और वह यह कि आगे बढ़कर अमीर की सेना का मुकाबला किया जाए या तैयारी करके यहीं लड़ने के लिए ठहरा जाए।

'मैं तो निश्चय कर चुका हूँ कि आगे बढ़ना ही है। पहली चोट तो राणा की ही होगी,' भीमदेव ने कहा, 'अपनी सेना के आगे उसकी क्या गिनती है?'

दामोदर मेहता ने हँसकर सिर हिलाया, 'महाराज, वो इतनी-इतनी सेनाओं को हराकर आ रहा है, उसकी अवहेलना कैसे की जा सकती है?'

'लेकिन अपनी सेना को तो देखो। फिर उसके आने से पहले तो यह लड़ाई हो जाएगी। साथ ही वह थका हुआ है और हम ताजा हैं।'

'बैठो, चौहान !' भीमदेव ने सामन्त का हाथ पकड़कर उसे अपने सामने बिठाया। सामन्त दोनों पैर मोड़कर साभिमान बैठ गया। 'कहाँ से आये हो ? क्या खबर लाये हो ?'

'मैं गुरुदेव गंग सर्वज्ञ के पास से आया हूँ।'

'प्रभास से ? आप वहाँ कब गये थे ?' दामोदर मेहता ने पूछा।

'मैं अमीर की सेना से छूटकर सीधा प्रभास पहुँचा। बाहर हमारे गुरु नन्दिदत्त खड़े हैं।'

'कौन, नन्दिदत्तजी ? अरे वहाँ क्यों खड़े हैं ? मैं ले आऊँ,' कहकर दामोदर मेहता भीमदेव के राजगुरु घोघागढ़ के वृद्ध राजगुरु को उचित सम्मान देने के लिए बाहर गये और नन्दिदत्त को विनयपूर्वक अन्दर ले आए। अन्दर आते ही उनकी आँखों में आँसू आ गए। इस समय उनके लिए यह सम्मान असह्य हो उठा था।

'आइए! आइए!'

सब बैठे और भीमदेव के प्रश्न के उत्तर में नन्दिदत्त ने यथासंभव संक्षिप्तता से घोघाबापा के कुल की विध्वंस-कथा कह सुनाई।

'आपने अमीर की सेना कब छोड़ी है ?' मेहता बात को प्रस्तुत विषय पर ले आए।

'मारवाड़ की सीमा से थोड़ी दूर, रेगिस्तान में। वहाँ से मैं सीधा गुरुदेव को चेताने के लिए प्रभास गया और वहाँ से दौड़ती ऊँटनी पर यहाँ आया हूँ।'

'अमीर कितनी दूर होगा ?'

'पन्द्रह दिन की यात्रा की दूरी पर।'

'आपने अमीर की सेना देखी है ?' भीमदेव ने पूछा।

'देखी है।' म्लान वदन सामन्त ने कहा, 'मैं उसमें घूमा हूँ, मैंने उसकी शक्ति को नापा है और अमीर की परीक्षा भी की है। मैं यही गुरुदेव से कहने गया था, परन्तु उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि जो कुछ मुझे कहना है वह मैं आपसे कहूँ। आप ही भगवान् सोमनाथ के दाएँ हाथ हैं।'

'गुरुदेव की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है,' भीमदेव ने कहा, 'चौहान-

राव, जो कुछ कहना हो, प्रसन्नता से कहो।'

'हाँ, अवश्य; आप समय पर आ पहुँचे हैं।'

'सबसे पहली बात तो मुझे यह कहनी है कि यदि युद्ध में अमीर का सामना करने का विचार हो तो छोड़ दो।' सामन्त के धीरे-से कहे हुए शब्दों ने सारी सभा को चैतन्य कर दिया। सब ध्यान और आश्चर्य से सुनने लगे। अभी तो उन्होंने दूसरा ही संकल्प किया था।

'क्या? मैं—पाटण का चालुक्य—प्रत्यक्ष लड़ाई न लड़ूँ?' ऐसा लगा मानो भीमदेव की क्रोधपूर्ण आँखें सामन्त को जलाकर भस्म करने के लिए बेचैन हों।

सामन्त शान्त बैठा था; केवल उसके मुख पर तिरस्कारयुक्त हास्य था। थोड़े ही दिन में जन्म-जन्म के दुःख का अनुभव करके वह इतनी छोटी-सी अवस्था में ही वृद्ध हो गया था। 'महाराज, क्षमा करो।' और उसके धीमे-से कहे हुए शब्दों को सुनने के लिए सब गरदन लम्बी करके उत्सुकता के साथ बैठ गए। 'ऐसी गर्व की बातें सुनते-सुनते मैं थक गया हूँ। चालुक्यराज, ऐसा लगता है कि क्षुद्र बुद्धि और पारस्परिक विरोध में मस्त अपने राजाओं को मारने के लिए ही भगवान् सोमनाथ ने इस अमीर को भेजा है।'

जो राजा थे वे क्रोध में और दूसरे आदमी आश्चर्य में आकर इस छोटे-से लड़के द्वारा कहे गए भयंकर शब्दों को सुन रहे थे। भीमदेव का हाथ तो जल्दी में तलवार की मूँठ पर चला गया। सामन्त की तीक्ष्ण दृष्टि भी भीमदेव के हाथ के साथ ही मूँठ पर पड़ी। सामन्त इस अधीरता को समझ गया है, इस बात को भीमदेव ने जान लिया और कुछ लज्जित होकर हाथ को मूँठ से हटा लिया।

'चालुक्यराज, गर्व में मस्त हम सब यह मानते हैं कि अमीर को कुचलना मामूली बात है। परन्तु जैसे अजगर के मुख में वनचर जा पड़ते हैं वैसे ही हम उसके मुख में चले जा रहे हैं। इसी गर्व में घोघा-बापा ने कुल का नाश कर लिया, बालमदेव ने पचास हजार योद्धा होम दिए और आप भी उसी आग में कूदने के लिए तैयार हो

'क्या कहते हो?' राव रत्नादित्य ने कटाक्ष से कहा

बारहवाँ प्रकरण

प्रभास में तैयारी

: १ :

अमीर की चढ़ाई की खबर की अपेक्षा महाराज भीमदेव के सेना के साथ आने की खबर से प्रभास में विचित्र प्रकार की चेतना आई। भगवान् की छाया में रहने वाले स्त्री-पुरुषों को अमीर का रत्ती-भर भय नहीं था। त्रिपुरासुर को, तीसरे नेत्र से जलाकर भस्म करने वाले को एक ऐसे यवन की क्या चिन्ता थी! नर-नारी स्वागत की ऐसी तैयारी करने लगे मानो सेना विजय करके आ रही है। घर-घर तोरण बाँधे गए, द्वार-द्वार पर साँथिया पूरे गए, मन्दिरों पर नई ध्वजाएँ फहरीं, गीत और मृदंग से गलियाँ गूंजीं। प्रत्येक शिवलिंग पर रुद्री शुरू हुई और शिवपुराण के पारायण होने लगे। भगवान् पर महारुद्र आरम्भ हुए और श्रोत्रियों के स्वर से मन्दिर गूंजने लगे। हृदय-हृदय में प्रतिध्वनि हुई, 'आया, आया भगवान् का अवतार, बाणावली भीम, यवनों का संहारक, साधुओं का उद्धारक।'

: २ :

चौला बड़े मन्दिर के शिखर के एक किनारे पर खड़ी होकर व्याकुल नयनों से पाटण से आने वाले मार्ग को देख रही थी। उसके मुख और गले पर लाली आ गई थी, उसका छोटा-सा हृदय कुरवक के समान उछलता था। बाणवली भीम आ रहे थे—पाटण के स्वामी और रुद्र के अवतार, जिन्होंने उसे कालमुखे के हाथ से बचाया था वे। नहीं-नहीं, भीम ने तो उसे हाथ में लिया था, उसके अंग-अंग का स्पर्श किया था। वह माधुर्य के सार के समान चाँदनी; उस दिन का सागर

का चन्द्रिका स्नान; भयानक कालमुखों की वह चीख और मूर्च्छा में दिखा हुआ वह तेजस्वी मुख। वे शौर्य-प्रदर्शक मूँछें, वे चमकती मोहक आँखें और विशाल भुजाएँ, जिनमें वह बालक की भाँति झूली थी; वह अविस्मरणीय रात्रि—समस्त जीवन-सरिता की एक अद्भुत उल्लास-तरंग की भाँति उसकी कल्पना में पुराने अनुभव को नवीन रूप देने लगी। आज वह मुख, मूँछ, आँख और भुजा धनी त्रिपुरासुर का नाश करने के लिए रुद्र भगवान् का अवतार बनकर आ रहा था। अवर्णनीय उमंगों द्वारा स्वागत करने के लिए उसने अपनी आँखें क्षितिज पर गड़ा दी थीं। सागर के ऊपर से आती हुई वायु उसके बालों और वस्त्रों को कुछ-कुछ नचा-सी रही थी और उसकी रग-रग में अजीब-सी सनसनाहट पैदा कर रही थी। 'आया, वह आया मेरे रुद्र का अवतार,' यह ध्वनि उसके अंग-अंग में सुनाई दे रही थी।

दो दिन हुए, भगवान् सोमनाथ का स्वरूप भी अज्ञात रूप से बदल गया था। युद्ध के लिए तत्पर रुद्र ने जटाओं पर मुकुट धारण किया था और उसके ऊपर था मयूर-पंख। उनके श्याममनोहर मुख पर कड़ाई और ओजपन दिखाई दे रहे थे; उनकी मूँछों में बल पड़े हुए थे; दाढ़ी कुछ अच्छी हो गई थी और उनके मुड़े हुए बाल कान के पीछे छिप गए थे। उन्होंने शरीर के ऊपर सोने का बख्तर पहना था और कन्धे पर धनुष लटका रखा था। त्रिशूलधारी शम्भु बाणावली पिनाकपाणि बन गए थे। उनके कन्धे और हाथ एक बार चाँदनी में देखे कन्धे और हाथ के समान हो गए थे। हृदय का पक्षी पर फड़फड़ाता था और उसको शान्त रखने में प्रयत्न निष्फल हो रहे थे।

सामने दूर तक जहाँ दृष्टि जाती थी, देलवाड़ा से आने का मार्ग दिखाई देता था। उस पर सैकड़ों गाड़ियाँ पाटण से अनाज लेकर आ रही थीं। अन्त में धूल के बवण्डर उठे, जंगल में से असंख्य घुड़सवार बाहर निकले। उसकी बेचैनी बढ़ी। घुड़सवार चार-चार पाँच-पाँच की कतार में आ रहे थे। वह कुछ क्षण के लिए हर्ष से चीख उठी। सब घुड़सवारों के आगे, जरी की जीन वाले सफ़ेद घोड़े पर, छत्र और चमर धारण किये भीमदेव महाराज आ रहे थे। जैसे ही घोड़ा

से ही मध्याह्न के सूर्य की किरणों में मुकुट, कान, मूठ और जीन की णियाँ चमकतीं और तेज के इस समूह में भीमदेव का भरावदार मुँह याम होते हुए भी तेजस्वी और उग्र दिखाई देता था। घोड़े तेज़ी से आगे वढ़े आ रहे थे।

वह पास आते भीमदेव महाराज के वख्तर और वाणों को स्पष्ट रीति से देख सकी। उसकी अपरिमित शक्ति को भी उसने नापा। वे रुद्रावतार की भाँति उग्र और दुर्धर्ष थे। वे भगीरथ के समान अपने पीछे घोड़ों, हाथियों और पैदलों की क्षण-क्षण वढ़ती और उत्तुङ्ग तरंगों से उछलती गंगा को ला रहे थे।

शिखर के एक किनारे पर खड़ी होकर वह नीचे के कोट को देख सकती थी। उसे यह भी दिखाई देता था कि प्रभास के मुख्य दरवाजे पर गुरुदेव पाटण के नरेश का सत्कार करने के लिए आये हैं। साथ ही लगभग अठारह दिन के उपवास से क्षीण, हाथ में स्थापित लिंग सहित शिवराशि खड़ा था। गुरुदेव ने उसे जो तपश्चर्या वताई थी वह अभी पूरी नहीं हुई थी। साथ में और भी अनेक शिष्य थे। पुरजन भी खड़े थे। यह समस्त सत्कार रुद्रावतार भीमदेव के लिए था।

जैसे चारों दिशाओं में विजली कड़क उठती है वैसे ही भीमदे महाराज ने घोषणा की, 'जय सोमनाथ!' तीस हज़ार सैनिकों ने उन साथ-साथ कहा, 'जय सोमनाथ!' गुरुदेव, शिष्यों और पुरजनों प्रत्युत्तर दिया, 'जय सोमनाथ!' साथ ही हज़ारों नगाड़ों पर डं की चोटें पड़ीं। भीमदेव कोट के पास आ पहुँचे थे। उन्होंने ऊपर दे उनकी आँखें एक क्षण के लिए शिखर पर फरफराती ध्वजा पर और फिर एकदम अटारी पर जाकर ठहर गईं। एक क्षण, दो क्ष चौला ने भी उन्हें देखा और वह शरमा गई। विना पहचाने हुए उ आँखें नीचे गुरुदेव पर पड़ीं, और अपनी हीनता का अनुभव करती का हृदय स्तब्ध रह गया। कहाँ तो पाटण का स्वामी, यवनों के में तत्पर वाणावली और कहाँ वह एक क्षुद्र देवदासी! जैसे उसे ने घायल कर दिया हो वैसे ही वह चीखती हुई, विना पीछे दे में जीना उतर गई। उसके शम्भु साक्षात् आये थे, परन्तु वह थी

डंके की चोटें निकट सुनाई देने लगीं। भीड़ का कोलाहल भी नज़दीक आता जान पड़ा। और परकोटे के दरवाज़े में से गुरुदेव और भीमदेव दाखिल हुए। साथ में दूसरे राजा, मन्त्री और सेनापति थे। चौला का हृदय ज़ोर से धड़कने लगा। उसके पैर काँपे और उसकी आवाज़ भर्राने लगी। गुरुदेव और वाणावली गम्भीर बातों में मग्न पास आये। वही मुख, वही आँखें, वही चाल और वही भुजा। परन्तु इस समय वह मुख भयंकर था, आँखें एकाग्र थीं और चाल निश्चयात्मक थी। यह उस रात के भीमदेव नहीं थे, यह तो कोई अपरिचित और उग्र योद्धा था। चौला के पग अवश्य थिरक रहे थे, परन्तु उसका हृदय मूक रुदन करने लगा। गंग सर्वज्ञ और वाणावली दोनों मन्दिर में आये। चौला की आशाएँ व्यर्थ हो गईं। भीमदेव की एकाग्र, भौंहों-चढ़ी आँखें क्षण-भर के लिए उस पर पड़ीं और उसके हृदय की धड़कन रुकने-सी लगी। जैसे अपरिचित मनुष्य की दृष्टि जड़ वस्तु से हट जाती है, वैसे ही वह दृष्टि उस पर से हट गई। भीमदेव ने उसको पहचान तो लिया परन्तु अपरिचितता के हिम ने उसके अंग-प्रत्यंग को गला दिया।

भीमदेव महाराज और उनके साथ के राजाओं ने दर्शन किये, दण्डवत् प्रणाम किया, चरणामृत लिया, चन्दन से तिलक कराया, घण्टनाद किया। और उस नर्तकी का क्रन्दन-भरा स्वर ऐसा हृदय-भेदक संगीत छेड़ रहा था जैसे कोई मरती हुई राजहंसिनी अन्तिम गीत गाती है।

सब गर्भद्वार के बाहर आये और गुरुदेव ने हाथ ऊँचा करके सबको शान्त रहने के लिए कहा। सब शान्त रहे; मात्र गतिशील नृत्य और संगीत नियमानुसार चलते रहे। भीमदेव ने भ्रूभंग किया। 'संगीत बन्द करो,' उसने गाने वाली की ओर देखे बिना ही गर्जना की और गाने वाली का गीत तथा पैर का ठेका मरते हुए मनुष्य के शब्द की भाँति अधूरे रह गए।

'वत्सो,' गुरुदेव ने धीमे और गम्भीर स्वर में कहा, 'भगवान् सोम-नाथ ने कटाकटी का प्रसंग उपस्थित कर दिया है। आठ-दस दिन में यवन यहाँ आ पहुँचेगा और आज से मैं अपने इस भगवान के धाम के

अधिकार को भीमदेव महाराज को सौंपता हूँ। भगवान् की सेवा मे लीन यह महारथी जो कुछ कहे, वही आप सबको करना है। भगवान् की कृपा इन्ही पर उतरी है।'

सब ध्यान से सुनते रहे। जिनके हृदय मे उत्सव की उमंग थी वे थर-थर कांपने लगे। उस क्षण सबको आसन्न विपत्ति का कुछ-कुछ भान हो गया।

और भीमदेव प्रौढ़ तथा अधिकारपूर्ण स्वर मे बोला, 'मैं तो निमित्त मात्र हूँ; भगवान् की इच्छा का वाहक हूँ। हमारे द्वार पर त्रिपुर से भी भयकर विध्वंसक आ खडा हुआ है। परन्तु यदि भगवान् की आज्ञा हुई तो उसे भी हम समाप्त कर देंगे।' वह कुछ रुका और उसकी दृष्टि सब पर हो आई। वह पहले की तरह चौला पर भी पडी, परन्तु उसमें परिचय की उष्मा नहीं थी। 'दो दिन हुए, खम्भात से कुछ नावें आई है। कल कुछ और आएँगी। समस्त पुरजन, ब्राह्मण, स्त्रियों और बालकों को प्रभास खाली कर जाना है। प्रत्येक मनुष्य अपनी दौलत तो सब ले जाए परन्तु नाज-पानी यही रहने दे। मेरी सेना सब घरों पर कब्जा करेगी। विमल,' उसने हाथ के अधिकारपूर्ण अभिनय से विमल को आज्ञा दी, 'तुरन्त पूरे-का-पूरा गांव खाली कराओ। और गुरुदेव, अब इस सगीत को बन्द कराओ। जब भगवान् अमीर का विनाश कर लेगे, तब फिर देव-मन्दिर मे यह विधि आरम्भ हो जाएगी।

और वह भयकर नयनो से सबको डराता हुआ गुरुदेव और दूसरे साथियो के साथ चला गया।

: ४ :

लोगों मे कोलाहल मच गया; चौला बेहोश-सी आँखों पर हाथ रखे वहाँ से अपने घर की ओर दौड गई। भयकर विपत्ति में पड़े हुए नर-नारियों को उसकी ओर देखने का ध्यान नही था।

घर जाकर बिना वस्त्राभूषण उतारे ही चौला बिछौने पर गिर पड़ी और धाड़ मारकर रोने लगी। युद्ध के लिए तत्पर उसके रुद्र आये थे, परन्तु उसे पहचाने बिना चले गए। मोक्ष के द्वार खुले, परन्तु उसकी दृष्टि के भीतर पहुँचने के पहले ही वह बन्द हो गए।

चौला की यह धारणा कि उसके नृत्य और संगीत बिना देखे रह गए, गलत थी। सत्रह दिन के उपवास और हाथ में स्थापित पार्थिव (मिट्टी का शिवलिंग) की असुविधा के होते हुए भी शिवराशि की दृष्टि चौला के ऊपर से हटी नहीं थी। उसने ऊपर से शिशु-भाव से गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर ली थी; नहीं करता तो गुरुदेव पट्टशिष्य का पद छीन लेते। लेकिन उसके हृदय में होली जल रही थी। गुरु ने उसका अपमान किया था और उसका अधिकार छीन लिया था। त्रिपुर-सुन्दरी की विधि को रोक देना उनका अक्षम्य अपराध था और यह सब उन्होंने अपनी दासी पुत्री को प्रसन्न करने के लिए किया था। उसके मन में वे गुरुपद से गिर गए थे। अब उनको गुरु होने का अधिकार नहीं था। ये विचार क्षण-क्षण उसके मस्तिष्क में आ रहे थे।

जैसे-जैसे उपवास के दिन बढ़ते गए और प्रायश्चित्त से उसकी बुद्धि निर्मल होती गई वैसे-वैसे गुरु का अपराध उसे और ही प्रकार का दिखाई देने लगा। उस दिन चौला में महामाया त्रिपुर-सुन्दरी उतरी थीं और उन्होंने उसकी पूजा को रोकने का पाप किया था। वास्तविक प्रायश्चित्त तो उनको करना था। इस पाप के कारण ही त्रिपुर-सुन्दरी ने कोप करके इस गुरु के विनाश के लिए अमीर को भेजा था।

जैसे-जैसे उपवास बढ़ता गया और बुद्धि अधिक निर्मल होती गई वैसे-वैसे जो-कुछ घटनाएँ घटने लगीं उनमें त्रिपुर-सुन्दरी की महाशक्ति का ही परिचय मिलने लगा। उसे कुछ-कुछ ऐसा विश्वास होने लगा कि अमीर अवश्य जीवित रहेगा, गुरु को पद-भ्रष्ट करेगा और अन्त में उसे ही सर्वज्ञ-पद मिलेगा। जीती-जागती जगज्जननी महामाया और सब-कुछ सह सकती हैं, परन्तु अपनी अवज्ञा नहीं सह सकतीं।

महामाया का ध्यान करते हुए उसे प्रतिक्षण चौला याद आती। चौला के जिस स्वरूप की उस रात उसने पूजा की थी वही उसके मन में रम रहा था। जागते हुए और स्वप्न देखते हुए उसीका मुख दिखाई दिया। वह अपूर्ण विधि को पूर्ण करने के लिए विकल होने लगा। कई बार स्वप्न में ही उसने इस विधि को पूर्ण किया; परन्तु वह जागता और अपूर्णता का ध्यान आते ही तड़पकर रह जाता। जैसे-जैसे अमीर

के आक्रमण की बातें सुनाई देती वैसे-वैसे हृदय में आशा का संचार होता। बिना ऐसे किसी भूकम्प के महामाया की विजय असम्भव थी।

इतने में भीमदेव आये। मन्दिर तक आते-आते उन्होंने गुरुदेव के साथ जो बातें की थीं उनके कुछ शब्द उसने सुने थे। सबको यहाँ से खम्भात जाना था। यदि गुरु न जायेंगे तो वह सबको यहाँ से ले जाएगा और खम्भात में लकुलेश मत की ध्वजा फहराएगा। चौला उसके साथ ही रहेगी। और फिर'''गुरु साथ नहीं रहेंगे। उसने यह भी तो कुछ-कुछ सुन लिया था कि भीमदेव और चौला एक रात को कहीं मिले थे। परन्तु वह कहाँ खम्भात जाने वाला था?

और जब उसने भीमदेव की अलिप्त दृष्टि को चौला के ऊपर पड़ते देखा तब उसे शान्ति मिली। इतने दिन के उपवास से तीव्र बनी हुई वृत्तियों की तृषा उसने चौला के स्वरूप और नृत्य को देखकर बुझाई। जब भीमदेव ने भयंकर कठोरता से नृत्य को बीच में ही रोक दिया तब उसके पुण्य-प्रकोप की सीमा नहीं रही। जब गुरुदेव की सम्मति से भीवदेव ने नृत्यविधि बन्द की तब इस महापाप को होते देखकर उसके रोंगटे खड़े हो गए। अब गुरु की अधोगति की सीमा नहीं रही थी।

जब गुरुदेव और भीमदेव मन्दिर से बाहर निकले तो वह भी साथ गया। सीढ़ियाँ उतरकर गुरु ने उसकी ओर देखा, 'शिवराशि, तू भी जाकर पारणा कर और पार्थिव का विसर्जन कर। इस नये आपद्-धर्म के आगे सब धर्म बदल जाने चाहिए। उसके बाद मेरे पास आना।'

शिवराशि ने प्रणाम किया और वह पार्थिव का विसर्जन करने गया। इस कर्तव्य को करने पर, उपवास छोड़ने से पहले उसे महामाया का स्मरण हुआ। जिस देवी के लिए उसको प्रायश्चित्त करना पड़ा था, उसके दर्शन किये बिना उपवास छोड़ना उसे अच्छा नहीं लगा। चौला की वासना ही दर्शनों के लिए प्रेरित कर रही थी, यह बात उसकी कल्पना में भी नहीं थी। लकुलेशमत के अधिष्ठाता पद की दूसरी सीढ़ी पर खड़े होकर अठारह दिन के उपवास से निर्मल हुई बुद्धि से प्रेरित वह महामाया की भक्ति में तल्लीन तत्वज्ञानी और तपस्वी सनातन विधि को सम्पन्न करने में लगा था।

वह धीमे-धीमे गंगा के घर गया ।

द्वार खुला था । वह भीतर गया तो देखा कि खाट पर औंधी पड़ी हुई चौला रोते-रोते सो गई है । शिवराशि बड़ी देर तक चौला के अंग-प्रत्यंग को देखता रहा । जिसमें सुन्दरी प्रकट हुई हो, ऐसी इस महामाया की उसे पूजा करनी थी । जब गुरुदेव न होंगे तब वह करेगा । अमीर आ रहा है इसलिए यह अवसर थोड़े दिन में भी आ सकता है । इस समय तो उसे केवल हृदय का भार ही हलका करना था । औंधी सोती हुई चौला का एक पैर खाट के बाहर लटक रहा था । उसमें भूरी नसें भी दीख रही थीं । उसने प्रणिपात किया, बड़ी कठिनाई से उमंगों को दबाकर अपना मस्तक महामाया के चरण-कमलों पर रख दिया । चौला चौंककर जाग उठी । उसने खाट के पास उपवास से विकृत और विकराल आँखों से भयानक शिवराशि को देखा। और 'ओ मेरी माँ' की चीख के साथ छलाँग मारकर वह खण्ड के बाहर गई और इस प्रकार भागी जैसे कि राशि उसे खाने को दौड़ रहा हो ।

शिवराशि वहाँ से उठा । अपमानित त्रिपुर-सुन्दरी उसकी पूजा भी कैसे स्वीकार कर सकती है ! वह व्याकुल होकर अपने मुकाम पर पहुँचा। सिद्धेश्वर और हरदत्त को बुला लाने की आज्ञा दी और उपवास छोड़ दिया ।

हरदत्त तुरन्त आ गया । त्रिपुर-सुन्दरी की विधि के भंग होने से इस भावुक पुजारी के हृदय पर प्राणलेवा आघात हुआ था । पचास वर्ष हुए, गंग सर्वज्ञ के गद्दी पर बैठने के पहले से ही वह त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर का भक्त था । उसने अगणित उत्सव देखे और कराए थे । आज का उत्सव अधूरा रहा । मन्दिर विधिहीन हुआ और महामाया की पूजा उसके हाथ से चली गई । उसके लिए तो पृथ्वी ही रसातल को चली गई । उसका बोलना बन्द हो गया । वह अर्द्धविक्षिप्त-सा महामाया के मन्दिर के आसपास चक्कर लगाता रहता । कभी-कभी वह किसी अँधेरे कोने में कुछ वाममार्गी दीक्षितों के साथ मिलकर कुछ विधियों को पूरा कराता ।

'हरदत्त, हम लोगों पर भयंकर विपत्ति आई है ।'

'ऊँह,' हरदत्त ने कहा।

'तू क्या सोचता है ? जगज्जननी महाशक्ति की पूजा अधूरी रही है, इसी कारण यह दैवी प्रकोप हुआ है।'

हरदत्त की आँखें स्थिर हो गईं। बोल उठा, 'सच है।'

'अधूरी पूजा पूरी करनी चाहिए और किये हुए पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए; इसके बिना यह विपत्ति दूर नहीं होगी।' शिवराशि ने कहा।

'महामाया के कोप से कोई नहीं बचा,' हरदत्त बोला।

'हमें महामाया की आराधना करनी ही चाहिए। कल हमें खम्भात जाना पड़ेगा। तू मेरे साथ रहना। वहाँ हम जगज्जननी की पूजा करेंगे।'

'अच्छा, मैं वहीं रहूँगा।'

'खबर है, साथ में चौला भी होगी।'

'राशिजी, यह तो कोई नहीं कह सकता कि महामाया के कोप से क्या होगा, परन्तु इतना अवश्य सच है कि उनकी पूजा में विघ्न उपस्थित करने वाला बच नहीं सकता,' हरदत्त ने कहा।

'छिः छिः,' शिवराशि ने कहा, 'तू अब यहीं रह। मैं जाता हूँ,' कहकर गग सर्वज्ञ का यह शिष्य अपनी विपत्ति दूर करने की योजना का क्रियात्मक स्वरूप प्रस्तुत करके गुरु के पास गया।

: ५ :

चौला भागी और भागकर मन्दिर, जहाँ उसकी माँ बिल्वपत्र साफ़ कर रही थी, पहुँची, 'माँ, माँ, वह मेरे पीछे पड़ गया है।'

'कौन ? भीमदेव ?'

'क्या कहती है ? राशिजी····'

'तू तो पागल है। भीमदेव महाराज देखे ?'

'माँ मुझसे मत पूछ,' और चौला की आँखों में आँसू आ गए। 'मैं तो हतभागिनी हूँ। मेरे भाग्य में सुख है ही नहीं।' और वह रो पड़ी। गंगा ने उसे किसी प्रकार सान्त्वना दी।

'माँ, कल हमें खम्भात जाना पड़ेगा।'

'जैसी सर्वज्ञ की इच्छा।'

'हमको जाकर पूछ तो आना चाहिए।'

'क्यों, क्या यहीं से जाने के लिए आकुल है ?' गंगा ने पूछा।

'मेरे शम्भु मेरे नहीं। अब मैं उनको नृत्य से रिझा नहीं सकूंगी, मैं जिऊँ तो क्या और नहीं तो क्या ?' और फिर सिसकी भरकर रोने लगी।

'चल, चल, हम पता लगाएँ,' कहकर गंगा चौला को लेकर गुरुदेव के निवास-स्थान की ओर गई। गुरुदेव एकान्त में मन्त्रणा कर रहे हैं, इस बात को जानकर वह आँगन में ही भीत के सहारे बैठ गई। चौला भी उसके पास ही बैठी। दोनों में से कोई खण्ड के भीतर नहीं देख सकती थी, पर सुनाई सब देता था।

'भीमदेव, अमीर आये या उसका बाप आये, भगवान् का लिंग यहाँ से हटने का नहीं।'

'परन्तु गुरुदेव, शम्भु न करें यदि कुछ हो गया तो ?' राय ने कहा।

'जब तक इस लिंग का तेज जीवित है तब तक त्रिपुरासुर ही कुछ नहीं कर सका तो मनुष्य की क्या बिसात है ?'

'लेकिन उसने ऐसे कितने ही तोड़ डाले। कहा जाता है कि वह देव-मूर्तियों का काल है।' विमल मन्त्री ने कहा।

'तुम्हारे हृदय की श्रद्धा चुक गई है, इसलिए उसमें देव-मूर्तियाँ खण्डित हो रही हैं; लेकिन मेरी श्रद्धा कम नहीं हुई है, डिगी नहीं है। मेरे भगवान् अनादि और अनन्त हैं। किसीकी मजाल नहीं कि उनको खिसका सके।'

'ऐसा न कहो, गुरुदेव !' भीमदेव ने कहा, 'हमारी श्रद्धा अविचल है।'

'तुम जो अमीर की चिन्ता करते हो, वह मैं तो नहीं करता। मेरे भगवान् की इच्छा के बिना जब तिनका भी नहीं हिल सकता तब वह कौन होता है ?'

'परन्तु गुरुदेव,' राय ने कहा, 'हम तो दुनियादार हैं; हमें जय और पराजय दोनों का विचार करना है।'

'जय और पराजय का विचार करना तो मूर्खों का काम है। इसका

विचार करने वाला तो भोलानाथ है। तुम क्या करोगे?'

'गुरुदेव, हम भी यही निश्चय करके बैठे हैं। हम जीते-जी अपने भगवान् की एक भी ध्वजा को नहीं गिरने देंगे, लेकिन यदि हम न रहे तो?' राय ने कहा।

'कौन किसको रख सका है राय? तुम्हारा कहना व्यर्थ है। मेरे देव यहाँ से नहीं हटेंगे। जहाँ तुम्हारे जैसे बत्तीस लक्षणों से युक्त वीर प्राण होमने के लिए तत्पर हैं वहाँ पराजय की बात क्यों करते हो? लड़ो और विजय प्राप्त करो। भगवान् तुम्हारी सहायता करेंगे।'

'मैं जानता हूँ, मैं यह जानता हूँ,' भीमदेव ने कहा। 'मेरे अन्तर में भी यही आवाज उठ रही है। जब मेरा भोलानाथ त्रिशूल लिये बैठा है तब विजय भी हमारी ही है। लेकिन युद्ध के समय लिंग को ले जाया जा सकता है—'

'नहीं ले जाया जा सकता, मेरे भाई,' गुरुदेव ने कहा, 'यह तो सृजन-काल में यहीं प्रकट हुआ और प्रलय-काल में भी यहीं रहेगा।'

'तो फिर आप खम्भात जाइए। आपके ऊपर तो समस्त पाशुपत मत का आधार है।'

'वत्स,' गुरुदेव ने धीरे-से परन्तु दृढ़ता से उत्तर दिया, 'तुम मुझे कब पहचानोगे? मुझे यह गुरुपद प्रिय नहीं है और न मुझे लकुलेश मत का सर्वज्ञ-पद ही प्रिय है। मैं तो अपने भगवान् का दासानुदास हूँ। जहाँ वह, वहाँ मैं। इनसे पृथक् जीवन की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।'

'लेकिन यह भी कहीं तपस्वियों का काम है? यह तो हमारा काम है।'

'तपस्वियों का काम कहाँ नहीं है, भीमदेव?' गुरुदेव ने पूछा। 'जहाँ तपस्वी नहीं वहाँ पुण्य नहीं और जहाँ पुण्य नहीं वहाँ विजय नहीं।'

'लेकिन आप होंगे तो—'

'लेकिन इस बात को छोड़ो,' सर्वज्ञ ने कहा, 'सामन्त भी इसी हठ को पकड़े बैठा था, परन्तु मैंने तो अपना निश्चय कभी का कर लिया

है। जहाँ भगवान् का लिंग वहाँ मैं। म्लेच्छ को जो-कुछ करना हो, करे। देव और म्लेच्छ के बीच यदि कोई माई का लाल नहीं रहेगा तो मैं अकेला खड़ा रहूँगा। मेरे भाग्य में कैसे-कैसे पराक्रम करना लिखा है, यह तुम कैसे जान सकते हो?'

सर्वज्ञ की मीठी परन्तु निश्चल आवाज़ सुनकर गंगा ने आँसू पोंछे। भीमदेव आदि वीर भी इस वृद्ध की अडिगता को देखकर अवाक् हो गए।

थोड़ी देर में सर्वज्ञ ने कहा, 'मेरे सब शिष्यों को ले जाओ। ये लकुलेश मत के स्तम्भ हैं। उनकी विद्या और तप की रक्षा आवश्यक है। शिवराशि, तू और गगनराशि सबको लेकर खम्भात जाओ।'

'जैसी आज्ञा,' शिवराशि ने कहा। गगनराशि ने, जो शिवराशि के बाद दूसरा मुख्य शिष्य था, बिना कुछ कहे आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया।

'वणिकों को तो मैं आज रात को ही चढ़ा दूँगा,' विमल ने कहा, 'सवेरे ब्राह्मण चले जाएंगे।'

'हाँ, मुझे कोई काम नहीं,' गुरुदेव ने कहा।

'गुरुदेव,' शिवराशि ने आवश्यक संयम रखकर तटस्थ आवाज़ से कहा, 'गंगा और दूसरी नर्तकियों को भी ले जाना चाहिए।'

'क्यों नहीं,' गुरुदेव ने कहा, 'ये बेचारी यहाँ रहकर क्या करेंगी? गंगा से कह देना कि तैयार हो।'

'गंगा यहाँ से इंच-भर भी खिसकने की नहीं,' दरवाज़े के बीच से कमर पर हाथ दिये, क्रोधित चण्डी के समान उग्र गंगा बोली। सब राजा तो देखते ही रह गए। 'गुरुदेव, यदि भगवान् के चरणों में आपका स्थान है तो आपके चरणों में मेरा स्थान है, समझे?'

सर्वज्ञ हँसे, 'गंगा, परन्तु यह स्त्रियों का काम नहीं। तुझे तो जाना ही पड़ेगा।'

'अपना काम मैं अच्छी तरह जानती हूँ। आप सब लोगों का व्रत हो सकता है, पर हमारा नहीं हो सकता?'

'लेकिन पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को यवनों का अधिक भय है,'

राय ने कहा, 'इसीलिए तो हजारों स्त्रियों को अग्नि में कूदना पड़ा।'

'मेरा जीव तो पूज्यपाद के चरण-कमलों में है। उनको प्राप्त करने में तो मुझे अग्नि की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।'

गुरुदेव ने गंगा की ओर देखा और इस भक्त नारी के हृदय की निर्मलता को परखा।

'अच्छा विमल, इसे रहने दो। और गंगा, तेरे पीछे कौन है, चौला? इसे भेज दे।'

'हाँ, इसे अवश्य भेजना चाहिए,' राशि ने कहा, 'जवान लड़कियों का यहाँ काम नहीं।'

'चौला, जायेगी?' गंगा पुत्री की ओर मुड़ी।

चौला का स्वरूप कुछ विचित्र-सा था। होंठ दबाकर अपनी तेजस्वी आँखों से वह गुरुदेव से भीमदेव और भीमदेव से राशि की ओर देखने में संलग्न थी। अवरुद्ध श्वास को बाहर निकालने के लिए उसका सुकुमार हाथ गले पर रखा था।

'चौला, जायेगी न?' गंग सर्वज्ञ ने हँसकर कहा। उत्तर में चौला के नेत्र बावले हो गए।

'आप सबने मिलकर,' उसका टूटता और साश्रु स्वर जैसे-तैसे अवरुद्ध कण्ठ से निकला, '—मेरे शम्भु को ले लिया, मेरा नृत्य बन्द कर दिया। अब मुझे जीना ही नहीं है। लो, मार डालो,' कहकर वह एक कदम आगे बढ़ी। उसके पैर लड़खड़ाए और वह आँखों पर हाथ रखे बेहोश होकर गिर पड़ी। उस समय भीमदेव का स्मृति-पट स्वच्छ हुआ। वह रात्रि, वह चन्द्रिका, वह मुख, वह शरीर! उसका हृदय एकदम उछला और उसने खड़े होकर चौला को उठा लिया। क्षण-भर के लिए सब लोग युद्ध की बातें भूल गए।

भीमदेव ने धीरे-से चौला को उठाकर गंगा की गोद में सुला दिया। गंग सर्वज्ञ हँसे।

'जहाँ श्रद्धा होती है वहाँ जीव प्यारा नहीं होता,' उन्होंने कहा, 'जिसमें श्रद्धा हो वह भले ही रहे। भक्तों को भगवान् से अलग करना घोर पाप है।'

'ठीक है,' भीमदेव खिसियाकर बोले, 'मैं जो-कुछ करना चाहता हूँ उसके विरुद्ध कोई-न-कोई सिद्धान्त अवश्य निकल आएगा। परन्तु गुरु-देव, मुझे अपने निश्चय के अनुसार काम तो करने देंगे ?'

'अच्छा, अच्छा, अब नहीं बोलूंगा,' खिलखिलाकर हँसते हुए गुरुदेव ने कहा, 'बस ! जब मैंने अपना सारा अधिकार तुमको दे दिया है तब फिर अब क्या रहा ?'

: ६ :

लेकिन यह काम उतना सरल नहीं था, जितना कि भीमदेव ने सोचा था। दामोदर मेहता ने जैसे-तैसे करके आठ नावें भेजी थीं। कल ग्यारह नावें आयेंगी, ऐसी खबर मिली थी। यह आशा भी प्रकट की गई थी कि भड़ौंच के बन्दरगाह से भी कुछ नावें आयेंगी। छोटी नावों में पचास आदमी आ सकते थे और बड़ी नावों में दो सौ। इस कारण इतनी नावों में दस-पन्द्रह हज़ार आदमियों का भेजना बड़ा मुश्किल काम था।

लेकिन भीमदेव हारने वाले न थे। किसे भेजना है, किसको पहले और किसको पीछे, किस प्रकार और कब—ये सब निश्चय उन्होंने कर डाले। सन्ध्या के समय नावें तैयार हो गईं, और पहला जत्था घर-बार छोड़कर नावों पर चढ़ने के लिए चला। सगे-सम्बन्धियों और मित्रों का रुदन शुरू हुआ। बन्दरगाह पर साश्रु विदा दी जाने लगी। जाने वाले भगवान् का नाम रटते, थर-थर काँपते नावों पर चढ़ने लगे। कुछ स्तोत्र पढ़ने लगे। बहुतों ने अमीर को बुरी-बुरी गालियाँ दीं। जिनके स्त्री-बच्चे जा रहे थे उनके क्रन्दन की सीमा न थी। जिन्होंने पीढ़ियों से प्रभास को छोड़कर दूसरा स्थान नहीं देखा था उन्होंने भी परदेश का रास्ता लिया। इस सब कार्यक्रम को विमल मन्त्री सांगोपांग पूरा करने लगे।

दूसरा और इससे भी कठिन काम तो नये आये हुए सैनिकों को ठहराने का था। भीमदेव शिवराशि और मन्दिर के दीपा कोठारी को लेकर इस काम में जुटे। तीस हज़ार मेहमानों की व्यवस्था करना कोई छोटा-मोटा काम न था। एक गली के रहने वाले, अपने घरों को खाली

ण्ड में उस स्थान पर आये जहाँ वे ठहरे हुए थे । वहाँ वीरा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था । उसने नहाने का पानी और खाना कर रखा था ।

ीरा महाराज के लिए अनुचर, मित्र और माँ, तीनों की आवश्य- पूरी करता था । उसने भीमदेव महाराज को बचपन में कन्धे पर कर घोड़ा-घोड़ा खिलाया था । बड़े होने पर उसने तलवार चलाना र बाण चलाना सिखाया था । भीमदेव जब कुँवर थे तभी से वह के साथ रहता था । वह नित्य-प्रति स्वयं चखने के बाद ही अप ालिक को खिलाता था और रात को उनके सोने के कमरे के द्वार प गी तलवार लेकर सोता था । वीरा जब तक रात को पैर नहीं दबा... था तब तक उनको नींद नहीं आती थी और जब तक भीमदेव रात को आकर वीरा से बात नहीं करते थे तब तक वीरा सो नहीं पाता था ।

आज भी वीरा ने भीमदेव को नहलाया और खिलाया । उसके बाद बोला, 'बापू, अब सो जाओ । दो-चार घड़ी नींद लिये बिना तबीयत ठीक नहीं रहेगी ।'

'और जब तक मैं अमीर को नहीं भगा देता तब तक मेरे लिए सोना हराम है,' कहकर उन्होंने कमर से तलवार बाँधना शुरू कर दिया ।

'लेकिन बापू, ज़रा तो आराम कर लो । कल रात से आप शान्ति से नहीं बैठे हैं । अभी तो युद्ध का काम बहुत दिन तक चलेगा ।'

'वीरा, यह युद्ध का काम नहीं है, तू भी चल, तैयार हो ।'

'ऐसा क्या है ?' कहकर वीरा भी शस्त्रों से सज्जित होने लगा ।

'तू बुड्ढा हुआ, तू क्या जाने ?' और दोनों अपने निवास-स्थान से नीचे उतरे ।

'वीरा, कल इस सामने के खण्ड में गुरुदेव रहने के लिए आने वा हैं; सावधानी से रहना ।'

'अपना निवास-स्थान छोड़कर यहाँ ?'

'हाँ,' भीमदेव ने कहा, 'उनके अनेक शिष्य कल चले जाएँगे वे परकोटे में अपने साथ रहेंगे । इससे यह होगा कि जब आवश् होगी तब हम लोग शीघ्र मिल लिया करेंगे ।'

दोनों नीचे आये तो सभामण्डप के सामने वाले पहरेदार ने नमस्कार किया। भीमदेव को इससे सन्तोष हुआ।

'देवप्रसाद लश्करी स्वरूप धारण तो करने लगा है,' उन्होंने धीमे-से वीरा के कान में कहा।

'बापू, जहाँ आप जैसा कार्तिकेय का अवतार होगा वहाँ और क्या हो सकता है?'

दोनों ने भगवान् के दर्शन किये और भीमदेव नर्तकियों के आवास में गये। काफी रात बीतने पर भी बहुत-से घरों में शोर-गुल हो रहा था। कारण, कल बहुत-सी नर्तकियाँ खम्भात जाने वाली थीं। कुछ ने ही यहाँ रहने का विचार प्रकट किया था। परन्तु इतनी स्त्रियों को भी यहाँ रहने देना चाहिए या नहीं, इसका भी विमल मन्त्री ने निश्चय नहीं किया था।

भीमदेव गंगा के घर की ओर गये। उसका दरवाजा बन्द था और आले में एक छोटा-सा दीपक जल रहा था। उन्होंने कुन्डी खटखटाई और भीतर से शीघ्र गंगा की आवाज आई, 'इस समय कौन है?'

दो महीने पहले का भीमदेव अब यहाँ सर्वेसर्वा के रूप में खड़ा था। अब उसे तनिक भी क्षोभ नहीं हो रहा था। 'मैं हूँ भीमदेव, चौला की खबर लेने आया हूँ।'

'भीमदेव महाराज!' क्षुब्ध गंगा बोल उठी। माँ ने बेटी को उठाया। दोनों के बीच धीमे-धीमे कुछ बातें हुईं। दीये की लौ ऊँची हुई और गंगा ने आकर दरवाजा खोला, 'पधारिए चालुक्यराज!'

'वीरा, अन्दर आ और दरवाजे को देखता रह,' कहकर भीमदेव गंगा के साथ ऊपर गये।

'चौला स्वस्थ तो हो गई है, लेकिन उसका स्वभाव ऐसा है कि तनिक-तनिक-सी बात से चिढ़ जाती है और बेहोश हो जाती है। यह देखकर मेरी चिन्ता की सीमा नहीं रहती। पधारिए, बैठिए।' कहकर गंगा ने बाणावली को आसन दिया। भीमदेव ने चारों ओर देखा। 'चौला कपड़े बदलने गई है, अभी आती है।'

किवाड़ों की सँध में से चौला धड़कते हृदय से अपने युद्ध के

तत्पर रुद्र को देख रही थी। उसके कानों में देव की दुन्दुभी की गड़-गड़ाहट हो रही थी। उसके देव, उसके प्रभु, उसकी तपश्चर्या को स्वीकार करके अमीर का मद-मर्दन करने आ पहुँचे थे। जिस समय उसके मन में ये विचार उठ रहे थे उस समय उसकी चपल उँगलियाँ साड़ी बदलने में लगी हुई थीं। उसने कपड़े तो बदल लिये, परन्तु उसका पैर आगे न बढ़ा।

'चौला, आ न,' गंगा ने कहा।

चौला हिम्मत करके बाहर के कमरे में आई और लज्जा के मारे नीचे से ऊपर न देख सकी।

'आ,' गंगा ने कहा।

वह आई, अद्भुत छटा विकीर्ण करती—लजाती बाल-अप्सरा की हृदय-वेधक मोहिनी से भीमदेव की आँखों को आँजती हुई। उसके झाँझन झमके और वह भीमदेव के पैर पड़ी तथा उनके चरणों की रज अपने माथे पर लगाई।

'चौला, उस रात को तुमने कहा था कि विजय करके जल्दी लौटना, सो उस बात को मैं भूला नहीं हूँ।' नीचे किये हुए मुख की दो भाव-भीनी आँखों को ऊपर उठाकर उसने अपने पूर्व-परिचित भीमदेव के प्रति इसके लिए कृतज्ञता प्रकट की। 'मैं उसे भूला नहीं हूँ,' उन्होंने फिर कहा।

'जब आप मन्दिर में पधारे थे और नृत्य बन्द कर दिया था तब मैं ही नाच रही थी, महाराज!' मधुर स्वर में उपालम्भ था।

'मैंने तुझे देखा नहीं, मैं एकदर्शी हूँ। उस समय मैं प्रभास को लड़ाकू बनाने की धुन में था।' और हँसे, 'लेकिन मुझसे भूल हो गई। मैं तुझसे यही कहने आया हूँ कि नित्य-प्रति थोड़े-से नृत्य द्वारा भगवान् की पूजा करने की तुझे छूट है।'

'और आपने चौला को कालमुखे से बचाया, उसके लिए कितना उपकार मानूँ?' गंगा ने कहा।

'स्त्री, विप्र और गाय की रक्षा क्षत्रिय नहीं करेगा तो कौन करेगा?' भीमदेव ने कहा।

चौला की आँखों से फिर उपालम्भ के तीर छूटे, 'आप क्षत्रिय थे, इसीलिए आपने मेरा उद्धार किया था ?' वे आँखें पूछ रही थीं ।

भीमदेव के हृदय के तार एकदम झनझना उठे, परन्तु ऐसा लगा कि यह समय प्रणय-वार्ता का नहीं है, इसलिए वे एकदम खड़े हो गए, 'अभी मुझे बहुत-सा काम है । मैं जाता हूँ ।'

गंगा भी खड़ी हो गई, 'महाराज, कभी दर्शन देना ।'

भीमदेव ठिठका । उसने अपने सामने उर्वशी को भी लज्जित करने वाली लावण्यमूर्ति को खड़े देखा और उसकी हिम्मत न हुई कि उसे दूर हटा दे ।

'प्रभास में कल के बाद कदाचित् ही कोई स्त्री रहे । अतः कल से तुम दोनों को वहाँ आना पड़ेगा जहाँ गुरुदेव और मुझे रहना है । तुम्हीं को हमारी देखभाल करनी है ।'

गंगा के हर्ष की सीमा न रही । 'जैसी कृपानाथ की मरज़ी,' उसने कहा ।

चौला को तो दसों दिशाएँ नृत्य करती दिखाई दीं । भीमदेव की कर्तव्यपरायणता ने एक और नई बात की सूचना दी, 'कल सवेरे नर्तकियों के इस पूरे आवास में मेरे सैनिक अपना पड़ाव डालने वाले हैं ।'

और उन आँखों से तीसरी बार उपालम्भ के तीर छूटे, 'इस सूचना के देने की ऐसी क्या जल्दी थी ?'

: ७ :

शिवराशि आधी रात के समय बिलकुल थक गया था । आज ही उसने उपवास छोड़ा था और आज ही यह सारा काम उसके ऊपर आ पड़ा । उसमें भी कल जाए या न जाए, यह प्रश्न उसके हृदय को मथे डालता था और वह उपवास द्वारा शुद्ध हुई वृत्ति से इस कथन का निराकरण करना चाहता था ।

दोपहर तक एक पलड़े में भगवान् की सेवा और गुरु-भक्ति थी और दूसरे में थी गुरु की अनुपस्थिति में पाशुपत मत की विजय और जिसमें त्रिपुर-सुन्दरी उतरी थी, ऐसी चौला की निकटता । अब तो चौला

पलड़े में जा बैठी थी। गुरु ने पाप किया था, उसे अनुचित ढंग से
श्चित्त कराया था और विधिभंग किया था, इसलिए गुरु-भक्ति
वज़न तो कम हो ही गया था और संयोग की बात है कि यदि
र जीत जाए तथा प्रभास को ले ले तो पाशुपत मत के उद्धार
कार्य उसे ही करना पड़ेगा। इस कारण दूसरे पलड़े में भार भी
। गुरु हठ करके यहीं रहें, अमीर सबका नाश कर दे और तब यदि
खम्भात में हो तो उसे सर्वज्ञ-पद शीघ्र मिल जाए, इस विचार को
सने मन से निकाल दिया। उसे एक तपस्वी की दृष्टि से ही इस प्रश्न
का उत्तर खोजना था। स्वयं यहीं रहे और गुरु भी न हो तथा वह भी
न हो तो पाशुपत मत विद्या का लोप हो जाएगा। चौला यहाँ रहे और
वह स्वयं जाए तो त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा के अधूरे रहने से दैवी प्रकोप
बढ़ेगा। इस प्रकार संकल्प-विकल्प करता हुआ वह परकोटे में दाखिल
हुआ। इस पवित्र धाम में सैनिकों का पहरा और भक्तों का अभाव
देखकर वह खिन्न हो गया। यदि उसकी तपश्चर्या पूरी हो, यदि महा-
माया की पूजा पूरी हो तो अमीर अपने-आप जलकर भस्म हो जाए।
यह सब कैसे किया जाए ?

जब वह एक ओर से आ रहा था तो भीमदेव और वीरा चावड़ा
अपने डेरे पर जा रहे थे। उसने उन्हें पहचान लिया। भीमदेव बलिष्ठ
था, होशियार। उसे गद्दी पर बिठाने में उसका भी कुछ हाथ था। यदि
अमीर हार जाए और भीमदेव गुर्जरेश होकर राज्य भोगे तो हमारे लिए
सर्वज्ञ का पद निश्चय ही शोभा की बात होगी। विचार-शृङ्खला टूट
गई और उसके कानों में भीमदेव के शब्द पड़े, 'वीरा, चौला अद्भुत
सुन्दरी है। जब कल तू मिलेगा, तब मुझे विश्वास होगा।'

चौला, अद्भुत सुन्दरी ! सुन्दरी ! इस क्षुद्र संसारी जीव को खबर
नहीं है कि उसमें त्रिपुर-सुन्दरी का अंश है और उसकी पूजा के अधू-
रहने के कारण ही यह सब विपत्ति आ पड़ी है। परन्तु भीम के स्व-
द्वारा व्यक्त भाव उसे अच्छा नहीं लगा। वह कल वीरा से मिलेगी
कहाँ ? कैसे ? दोपहर को भीमदेव ने उसे पहचाना न था और अब
बात ? भीमदेव और चौला पहले मिले थे, यह गप्प है या सच बात है

इस समय भीमदेव उसके मन से उतर गया। उसे स्पष्ट ही यह ान हुआ कि भीम ऐसा कहकर चौला में निहित महामाया का अपमान र रहा था।

भीमदेव और वीरा अपने खण्ड में चले गए। वह सहसा रुककर ड़ा हो गया। उसका मार्ग प्रकाशित हो गया। जब तक चौला में तरी हुई महामाया नहीं रीझती तब तक यह विपत्ति दूर होने की हीं। इस विपत्ति को दूर करने में उसके तप की कसौटी थी। उसका नश्चय स्पष्ट हुआ। अब वह प्रभास में ही रहेगा।

ले पलड़े में जा बैठी थी। गुरु ने पाप किया था, उसे अनुचित ढंग से यश्चित्त कराया था और विधिभंग किया था, इसलिए गुरु-भक्ति वज़न तो कम हो ही गया था और संयोग की बात है कि यदि मीर जीत जाए तथा प्रभास को ले ले तो पाशुपत मत के उद्धार ा कार्य उसे ही करना पड़ेगा। इस कारण दूसरे पलड़े में भार भी ढ़ा। गुरु हठ करके यहीं रहें, अमीर सबका नाश कर दे और तब यदि वह खम्भात में हो तो उसे सर्वज्ञ-पद शीघ्र मिल जाए, इस विचार को उसने मन से निकाल दिया। उसे एक तपस्वी की दृष्टि से ही इस प्रश्न का उत्तर खोजना था। स्वयं यहीं रहे और गुरु भी न हो तथा वह भी न हो तो पाशुपत मत विद्या का लोप हो जाएगा। चौला यहाँ रहे और वह स्वयं जाए तो त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा के अधूरे रहने से दैवी प्रकोप बढ़ेगा। इस प्रकार संकल्प-विकल्प करता हुआ वह परकोटे में दाखिल हुआ। इस पवित्र धाम में, सैनिकों का पहरा और भक्तों का अभाव देखकर वह खिन्न हो गया। यदि उसकी तपश्चर्या पूरी हो, यदि महा-माया की पूजा पूरी हो तो अमीर अपने-आप जलकर भस्म हो जाए। यह सब कैसे किया जाए ?

जब वह एक ओर से आ रहा था तो भीमदेव और वीरा चावड़ा अपने डेरे पर जा रहे थे। उसने उन्हें पहचान लिया। भीमदेव बलिष्ठ था, होशियार। उसे गद्दी पर बिठाने में उसका भी कुछ हाथ था। यदि अमीर हार जाए और भीमदेव गुर्जरेश होकर राज्य भोगे तो हमारे लिए सर्वज्ञ का पद निश्चय ही शोभा की बात होगी। विचार-शृङ्खला टू गई और उसके कानों में भीमदेव के शब्द पड़े, 'वीरा, चौला अद्भु सुन्दरी है। जब कल तू मिलेगा, तब मुझे विश्वास होगा।'

चौला, अद्भुत सुन्दरी ! सुन्दरी ! इस क्षुद्र संसारी जीव को ख नहीं है कि उसमें त्रिपुर-सुन्दरी का अंश है और उसकी पूजा के अ रहने के कारण ही यह सब विपत्ति आ पड़ी है। परन्तु भीम के द्वारा व्यक्त भाव उसे अच्छा नहीं लगा। वह कल वीरा से मिले कहाँ ? कैसे ? दोपहर को भीमदेव ने उसे पहचाना न था और अब बात ? भीमदेव और चौला पहले मिले थे, यह गप्प है या सच बात

तेरहवाँ प्रकरण

उमिया-शंकर

: १ :

पौष सुदी पूनम और बृहस्पतिवार। छः दिन से चौला का जीवन एक सुमधुर उल्लासमय नृत्य था। पल-पल रुद्रावतार भीमदेव का नाम रटना, उनका चिन्तन करना, उनकी सेवा करना, उनकी बाट देखना, ये ही उसके श्वास और प्राण हो गए थे। भगवान् शंकर त्रिपुरासुर से लड़ने चले थे और वह स्वयं उमिया होकर उनकी सेवा में उपस्थित थी। इस बात की कल्पना से वह निमग्न हो जाती थी। वह सुखी थी—ऐसी सुखी जैसी वह न तो कभी हुई थी और न होने की उसने कभी आशा ही की थी।

परकोटे में एक ओसारा और पहली मंज़िल पर तीन कमरे थे, जिनमें से एक में भीमदेव महाराज ठहरे थे। बीच में गुरुदेव थे और तीसरे में वह स्वयं और दो अन्य सेविकाएँ थीं। कमरों के आसपास बड़ी छत थी। अधिकतर पुरुष बाहर रहते थे, इसलिए वह गुरुदेव के कमरे में से दौड़ती, गाती और कूदती हुई भीमदेव के कमरे में पहुँचती; घड़ी में गंगा के साथ हँस-हँसकर बातें करती और घड़ी में बीरा से भीमदेव के बचपन की बातें सुनती। भीमदेव के सारे दिन के कार्यों की बातें जानकर वह प्रसन्न होती। कभी-कभी वह मन्दिर के शिखर की एक ऊँची अटारी पर चढ़कर नये बने कोट, गहरी और चौड़ी हुई खाई, कोट पर खड़ी तीरन्दाज़ों की क़तार, हथियारबन्द घूमते हुए मनुष्यों के झुण्ड देखती और गर्व से नाच उठती। दो-चार बार तो उसने गाँव या कोट पर महाराज को सेनापतियों के साथ घूमते हुए भी देखा था। ऊँचे,

महाराज की आँखें चमक रही थीं। चन्द्रिका में अद्‌भुत मादकता दिखाई देती थी। चौला का हृदय टूक-टूक हो रहा था।

'महाराज,' और उसका स्वर काँप रहा था, 'अब सो जाइए। कल सवेरे जल्दी उठना है न ?'

'चौला, मेरे लिए सोना-जागना बराबर है,' भीमदेव के स्वर में खेद और थकान दोनों थे।

चौला ने चारों ओर देखा और वह पास आई। 'महाराज, मैं तो केवल एक दासी हूँ, परन्तु---परन्तु क्या किसी प्रकार आपका भार हलका नहीं कर सकती ?' उसने पूछा।

भीमदेव का हृदय उमंग से भर उठा। चन्द्रिका में उन्होंने आधे दबे होंठों और आशा-भरी आँखों की मोहकता देखी। उन्होंने इस अप्सरा को एक बार हाथ में लिया था, उसकी याद आई। उनके मस्तक का भार हलका हुआ और उनकी शिरा-शिरा में संगीत गूँज उठा।

'चौला,' और महाराज की आवाज़ में तीव्र उमंगें बोल रही थीं, 'तुझे देखता हूँ तो तेरे सहारे मेरा भार हलका हो जाता है। यदि तेरे वचन सच निकलेंगे और मैं विजय प्राप्त कर लूंगा तो तुझे सदैव मेरा भार हलका करना पड़ेगा।'

शब्दों के अर्थ की अपेक्षा उनके संकेत ने चौला को विवश बना दिया, 'महाराज, तब तो मुझे भूल जाओगे।'

'तुझे भूल जाऊँगा ?' कहकर भीमदेव ने अपना प्रचण्ड पंजा चौला के कन्धे पर रखा और उसके अंग-अंग से ज्वालाएँ उठने लगीं।

'नहीं, कभी नहीं,' कहकर भीमदेव ने उसका आलिंगन किया और उसका चुम्बन लिया। आलिंगन और चुम्बन किस सीमा तक पहुंचे, इसका दोनों में से एक को भी ध्यान नहीं रहा। जब वे अलग हुए तब सृष्टि ने अद्‌भुत सौन्दर्य धारण कर लिया था—केवल यही ध्यान उन्हें रहा। दोनों क्षोभ से बेचैन थे, इसलिए बड़ी देर तक कोई नहीं बोला। चौला तो ऐसी लगती थी मानो वह साक्षात् चन्द्र-किरणों से ही बनी है।

'महाराज,' उसने कहा, 'क्या कोई नई विपत्ति आई है ? इतने गम्भीर क्यों थे ?'

'चौला, आज खबर आई है कि वह अमीर लूटता, गांव जलाता, स्त्री तथा ब्राह्मणों को मारता और गायों को काटता चला आता है। मेरा गुजरात श्मशान बन रहा है और मैं यहाँ बैठा उसके बचाने के लिए कुछ नहीं कर सकता।'

'वह कब आयेगा ?'

'कल या परसों।'

'अच्छा है,' चौला ने कहा, 'कि इस विपत्ति का शीघ्र अन्त हो।'

'चौला, हमारा भोलानाथ बैठा है न,' और भीम का मुख पीछे से थोड़ा खिन्न हो गया।

'महाराज, अब सो जाओ। बहुत समय हो गया। यह समय आपके शक्ति सचय करने का है।'

'ठीक है,' कहकर भीमदेव वहाँ से चले गए। जाते-जाते उन्होंने फिर चौला पर नज़र डाली। लौटने को मन हुआ, परन्तु पैर न उठे। और किरणावली के समान चौला जैसी आई थी वैसी ही अदृश्य हो गई। वीरा चावड़ा, जो दोनों से छिपकर चुपचाप यह सब देख रहा था, अपने मन में खूब हँसा।

: २ :

भीमदेव महाराज सोने गये, परन्तु उनको ठाक से नींद नहीं आई। थकान के मारे आँखें तो मिच गईं, परन्तु मस्तिष्क मे गढ़ के कोट ऊँचे होते गए, बड़े-बड़े राक्षस गौ-ब्राह्मण की हत्या करते दिखाई दिए और वे स्वय बँधे और अकुलाते हुए एक स्थान पर पड़े दिखाई दिए। सब-कुछ जल रहा था, चारो ओर नाश का प्रसार था और वे हाथ या पैर नहीं हिला सकने थे। उनकी दृष्टि के सामने किरणों की बनी हुई एक बालिका तेजपूर्ण आँखो द्वारा उपालम्भ देती, असख्य घोड़ो की पक्तियाँ दौड़तीं; अगणित धनुषों से बिजली जैसे तीर छूटते, लेकिन वे वही-के-वही थे—और किरणो की बनी बालिका उपालम्भ देती। वे घबराकर, चौककर जागे; कुछ देर तक मस्तक स्वस्थ किया, उस चुम्बन का अविस्मृत स्वाद फिर से लिया और करवट बदलकर सो गए।

फिर स्वप्न आया। वह बालिका नृत्य कर रही थी। वे स्वयं दौड़

रहे थे। उसके चारों ओर हाथी ऊँची पूंछ किये दौड़ते थे और गुरुदेव मृदंग बजाते थे। नाचते-नाचते बालिका दौड़ गई। वे उसके पीछे दौड़े। सामने एक कालमुखा मिला। इतने में अँधेरी रात में चन्द्रमा उगा, चाँदनी छिटकी और कालमुखा नदी में गिर पड़ा तथा उन्होंने बालिका को हाथों में ले लिया। सामने गुरुदेव मृदंग बजा रहे थे। गिड़-गिड़-घुम'''।

और उनकी आँख खुली। सेना को जगाने के लिए नगाड़े बज रहे थे। वे शीघ्र बैठ गए और हाथ बढ़ाया। वे प्रतिदिन जब उठते थे तब वीरा उनके सामने उनके वस्त्र और कवच लेकर तैयार रहता था। नित्यप्रति की भाँति आज भी उन्होंने उतनी दूर तक हाथ बढ़ाया था जितनी दूर पर वीरा खड़ा रहता था, परन्तु उनके हाथ कुछ नहीं आया। 'वीरा,' उन्होंने आवाज़ लगाई। किसी बहुत ही नीचे खड़े आदमी ने हाथ ऊँचा करके कपड़े ऊपर रख दिए। भीमदेव की समझ में बात नहीं आई। उन्होंने हाथ नीचा किया। वीरा कहाँ गया? या यह स्वप्न है। उन्होंने अंधेरे में हाथ नीचा करके कपड़े लिये और साथ ही कपड़े देने वाले का हाथ पकड़ा'''अवश्य स्वप्न था; हाथ कमलनाल की भाँति छोटा और कोमल था। जैसे चाँदी की घंटी का स्वर होता है वैसी ही मधुर हँसी खण्ड में व्याप्त हो गई। उमंग का सागर लहराया। महाराज ने दो हाथ पकड़े और खींचे और उनके विशाल वक्ष पर चौला लिपट गई। 'मेरे शंभु,' 'मेरे नाथ' उसके मुख से मंद-मंद आवाज़ आ रही थी और कोने में खड़े हुए वीरा की कठिनाई से रोकी हुई हँसी फूट निकली—'हा-हा-हा—'

और उस समय स्तब्धता छा गई।

: ३ :

डंकों की चोटें पड़ीं और महाराज नये उत्साह से उछलते हुए बाहर आये। उनकी आँखें आज ऐसी चमक रही थीं जैसी कभी नहीं चमकी हों। भुजाओं में अपार बल उछल रहा था। उन्हें ज़रा देर हो गई थी। कोट के ऊपर गुरुदेव, राय, परमार, चालुक्य, कमा लखाणी, मंत्री और सेनापति खड़े थे। महाराज छलांग मारते हुए कोट पर पहुँचे। अँधेरे में

क्षितिज पर चारों ओर लाल लपटें दिखाई देतीं और सिन्दूर के समान धुआं आकाश की ओर चढ़ता जान पड़ता। अमीर के पदचिह्न देखकर महाराज की छाती फूल उठी। 'आया, आया, आया,' महाराज ने हर्ष में कहा, 'राय, चलो सेना सजा लें।'

पूर्व आकाश में कुछ हलचल हुई। 'भीमदेव, यह क्या?' गुरुदेव ने पूछा। जंगलों में एक-एक, दो-दो काले धब्बे काली चींटियों की भांति दौड़ने, प्रभास की ओर आ रहे थे। धब्बे बढ़े, अनेक हुए, सौ हुए, दो सौ हुए, बढ़ते गए। कुछ घोड़ों पर आ रहे थे, तो कुछ गाड़ी में। वे पास आये और उनके आक्रन्द को प्रातःकाल की वायु वहां ले आई।

'देलवाड़ा के लोग भागकर आते दिखाई देते हैं,' राय ने कहा। और जैसे पानी की बूंदें टपकती हैं वैसे ही आदमी जंगलों से टपकने लगे।

'भोलानाथ, तू करे सो ठीक,' गुरुदेव ने कहा।

'स्त्री और बच्चे भी हैं,' विमल मन्त्री ने कहा।

'अरे, ये तो फिसल पड़े,' गुरुदेव की आवाज़ कुछ अटकती-सी निकली, 'शिव, शिव, शिव!'

प्रकाश बढ़ता गया और क्रन्दन करते नर-नारी पास आते गए। कुछ तो अध-बीच ही में गिर गए।

'देलवाड़े का पतन हो गया,' भीमदेव ने होंठ-से-होंठ दबाते हुए कहा। उनकी आवाज़ गम्भीर थी और उनकी आंखें आते हुए आदमियों और क्षितिज पर फिर रही थीं।

'विमल,' महाराज ने कहा, 'समुद्र की ओर का दरवाज़ा खुलवा दो और जितनी नावें हों उतनी खाई में ले जाओ तथा जो जीवित किनारे पर आ सकें उन्हें ले आओ।'

'चालुक्यराज,' वृद्ध कमा लखाणी ने कहा, 'इन सबको अन्दर लेकर क्या करोगे? अपने पास तो इतना अनाज नहीं है कि दो महीने भी चल सके।'

'लखाणी, यदि अमीर दो महीने ठहर जाए, तो उसे मरा ही समझना। विमल, इस समय कितनी नौकाएं हैं?'

'तीन, महाराज !'

'औरतों और बच्चों को उनमें बिठाकर विदा कर।'

'जैसी आज्ञा,' कहकर विमल चला गया।

'राय, अब कोट पर तीरन्दाज़ जमा दो और युद्ध की तैयारी करो।

राय ने कमर पर बँधे हुए एक शंख को लेकर फूंका। चारों ओर शंख और भेरी के स्वर गूंजने लगे, डंके और नगाड़े युद्ध का निमन्त्रण देने लगे और सूर्योदय से पहले सारा प्रभास गढ़ युद्ध के लिए सज्जित हो गया। जब सूर्य उदय हुआ तब गढ़ पर सात हज़ार तीरन्दाज़ तीर-कमान सँभाले तैयार खड़े थे। स्थान-स्थान पर ऊँटनियाँ भी कोट पर चढ़ा दी गई थीं, जिन पर डंका-निशान शोभित हो रहे थे। दो सौ नायक घुड़-सवारों के रूप में कोट पर शोभित थे। प्रत्येक के हाथ में निशान था। सेनापति सुन्दर अश्वों पर सवार होकर ऊँचे और बड़े कँगूरों पर खड़े होकर क्षितिज की जाँच-पड़ताल कर रहे थे।

गंगा और चौला मन्दिर के शिखर की अटारियों पर चढ़ी थीं। चारों ओर सैनिकों, शस्त्रों, पताकाओं से शोभित गढ़ को देखकर चौला का हृदय गर्व से छलकने लगा, 'माँ, देख तो सही गढ़ कितना सुन्दर है ! महाराज ने आठ दिन में जैसे जादू कर दिया हो'।

और सबसे ऊँची अटारी पर राजाओं के साथ खड़े गुरुदेव भी भीम-देव को इसी प्रकार धन्यवाद दे रहे थे। दुर्भेद्य और सैन्य-शक्ति से सजीव गौरवशाली प्रभास गढ़ उगते हुए सूर्य के प्रकाश में जगमगा रहा था और ऊपर त्रिभुवन-पति भगवान् की भगवी ध्वजा जगत् के कल्याण की परम भावना के समान फर-फर उड़ रही थी।

महाराज ने एक लम्बी साँस ली और अपनी शक्ति के ध्यान में मग्न उन्होंने तलवार निकालकर जय-घोषणा की, 'जय सोमनाथ !' और तीस हज़ार योद्धा बोल उठे, 'जय सोमनाथ !' सहसा भीमदेव महाराज ने आँखें खोलकर कहा, 'राय, देखो, देखो।' कहकर उन्होंने राय का हाथ अपनी ओर खींचा। समुद्र के किनारे-किनारे घुड़सवारों की एक टुकड़ी कोट की ओर आ रही थी।

'इधर भी देखो न,' परमार ने ध्यान खींचा। दूसरी ओर से भी

किनारे-किनारे ऐसी ही एक टुकड़ी चली आ रही थी।

'ये समुद्र की ओर के हमारे मार्ग को बन्द कर देना चाहते हैं।'

एक ओर किनारे पर होकर आती हुई सेना ऐसे आगे बढ़ रही थी जैसे कि वह यन्त्र हो। प्रभास गढ़ की खाई के उस छोर पर श्मशान था और वहाँ कालमुखों का वास था। गुरुदेव ने उनसे गढ में आने या खम्भात में जाने के लिए बड़ा अनुरोध किया था, परन्तु अपनी भयानक रीति-नीति में मस्त कालमुखों ने गुरुदेव की बात हँसकर टाल दी थी। कभी किसी युद्ध में उन्हें किसी ने नहीं छुआ था। किसी की ताकत ही नहीं थी। परन्तु अमीर के भयंकर घुड़सवारों को इस लोक या परलोक की परवाह नहीं थी। उन्होंने कालमुखों को ऐसे काट डाला जैसे माली घास काटता है। इस सम्प्रदाय के प्रति गुरुदेव की तनिक भी सहानुभूति नहीं थी। उन्होंने आह भरकर कहा, 'भोलानाथ, तू जो करे सो ठीक!'

इतने में महाराज ने देलवाड़े की ओर दृष्टि डाली और वे स्तब्ध हो गए। इस रास्ते से घुड़सवारों की एक बड़ी सेना हाथ में तीर-कमान लेकर बाहर निकली।

'राय और परमार, तुम समुद्र के रास्ते की जाँच करो। मैं इसे देखता हूँ।

राय और परमार अपनी जगह जाने के लिए रवाना हो गए और देलवाड़े के जंगल के रास्ते से अमीर की सेना ऐसे निकली जैसे कोई बड़ी रेल आ रही हो। घुड़सवार पूरे जोश से दौड़े आ रहे थे—पाँच नहीं, पचास नहीं बल्कि हज़ारों, अभेद्य व्यूह में, भयंकर चमड़े की पोशाक में और चमकते शिरस्त्राणों में, भयंकर लम्बी और बड़ी-बड़ी कमानों पर तीर चढ़ाये हुए। उनके पीछे सैंकड़ों हाथी आये—साथ-साथ चलते हुए और ऐसा व्यूह बनाते हुए जैसे वे साक्षात् सजीव गढ़ हों। और फिर बड़े-बड़े यन्त्र आये—ऐसे यन्त्र जिनको भीमदेव ने न कभी देखा था और न जिनकी कल्पना ही की थी।

'महाराज!' विमल ने धीरे से कहा, 'सामन्त की बात ठीक थी। यह सेना नहीं है, यह तो पूरा देश उमड़ पड़ा है।'

'लेकिन भगवान् तो हमारे साथ हैं न!'

व वेटा', गुरुदेव ने महाराज के कन्धे पर प्रेम से हाथ रख-
'भोलानाथ ने तुझे ऐसा युद्ध-प्रसंग दिया है, जो देवों को भी
'

र गुरुदेव, मैं भी आपको ऐसा युद्ध दिखाऊँगा जो देवों तक ने
देखा होगा। देखिए तो सही !'
र अमीर की सेना जंगल के वाहर आकर प्रभास के आस-पास
की तरह छा गई और आकाश को वेधने वाली प्रचण्ड गर्जना हुई—
। हो अकवर !'
'गुरुदेव, आप खड़े रहें, मैं जाता हूँ।' कहकर भीमदेव लखाणी
विमल को लेकर शिखर से उतरकर मुख्य दरवाज़े के कँगूरे पर
ड़ते हुए गये। खाई के उस ओर घुड़सवारों की सेना थोड़ी-सी दूर
कर खड़ी हो गई थी। सेना का व्यूह जैसा अद्भुत था वैसा ही अपूर्व
। तीनों ओर की टुकड़ियाँ पुतलों की तरह खड़ी थीं। सव तीर चढ़ाये
हुए थे, परन्तु किसी ने छोड़े नहीं थे। समुद्र को छोड़कर तीनों ओर से
प्रभास घिर गया।

फिर गर्जना हुई, 'अल्ला हो अकवर !'
भीमदेव और उनकी सेना ने उद्घोष किया, 'जय सोमनाथ !'
अमीर की सेना के बीच राजपूत वीरों से सज्जित प्रभास ऐसा खड़ा
था जैसे काली नाग के बीच हँसते-खेलते श्रीकृष्ण।

भीमदेव महाराज छत्र और चमर से सुशोभित, मुख्य कँगूरे पर,
सवसे आगे खड़े हुए यह सव देख रहे थे। इतने ही में अमीर की सेना
के बीच एक छोटे-से चौगान में एक वड़ा-सा हरा झण्डा गाड़ने में आया।
हाथियों की कतार के पीछे हज़ारों आदमी पड़ाव डालने के लिए दौड़-
धूप करते दिखाई दिए। हाथियों के बीच से पाँच सौ घुड़सवारों की टुकड़ी
वाहर आई। उसकी व्यूह-रचना भी अद्भुत थी। तीन ओर तीरन्दाज़
की पंक्ति थी, उनके भीतर नंगी तलवारों वाले घुड़सवारों की पंक्ति
और इस पंक्ति-रक्षित स्थान में पन्द्रह के लगभग घुड़सवार आ रहे
इन सवके आगे वड़ी-सी हरी पगड़ी वाँधे, एक प्रचण्ड घुड़सवार
और वड़े घोड़े पर आ रहा था। सामन्त द्वारा दिया हुआ वि

अक्षरशः सत्य था, यही था गजनी का सुलतान, अमीर महमूद ।

महाराज ने दाँत पीसे । उन्होंने अपना धनुष निकालकर जमीन पर टेका और बाण चढाया । गुजरात में अप्रतिम समझे जाने वाले बाणावली के हाथ अधीर हो रहे थे ।

अमीर प्रभास की जाँच-पड़ताल करने आगे आया और उसकी सेना ने गर्जना की, 'अल्ला हो अकबर !'

राजपूतों ने प्रत्युत्तर दिया, 'जय सोमनाथ !' और महाराज ने मूँछों पर ताव दिया ।

अमीर बड़ी देर तक प्रभास की ओर देखता रहा और फिर उसने दो अचूक तीरन्दाजों को तीर छोड़ने का हुक्म दिया । एक का तीर खाई मे गिरा, दूसरे का वहाँ तक भी न जा सका । राजपूत सेना ठहाका मारकर हँस पड़ी । अधीर मसूद घोड़ा कुदाता आगे बढ़ा और तीर चढ़ाया । महाराज का तीर भी तैयार था । पल-भर मे ही उन्होंने ऐसे ज़ोर से तीर छोड़ा जैसा कि कभी नहीं छोड़ा था । दोनों तीर एक-दूसरे से बचकर निकल गए । मसूद का तीर आया और कोट से टकराकर गिर पड़ा । महाराज का तीर पवन-वेग से मसूद के पैर मे घुसकर घोड़े के पेट में समा गया । घोड़े ने चक्कर खाया और घोड़ा तथा सवार धूल में लोटने लगे । राजपूत सेना ने भयंकर हर्षनाद किया । 'जय सोमनाथ' के घोष से आकाश गूँजने लगा । महाराज को देखकर कितने ही राजपूतों ने तीर छोड़े, परन्तु किसी का भी उतनी दूर नहीं पहुँचा ।

मसूद ने पट्टी बाँधी और अमीर के साथ हँसता-हँसता रिसाले को साथ लेकर लश्कर के पीछे चला गया । आज लड़ाई छेड़ने की अमीर की इच्छा न थी । उसकी सेना थोड़ी देर तक पुतले की तरह खड़ी रही और फिर हुक्म मिलते ही सवार अपने घोड़ों से उतरकर, अपनी टुकड़ी का पड़ाव डालकर खाने की व्यवस्था करने लग गए । प्रभास में तो विजय का डंका बजता ही गया । पहली चोट राणा ने मारी, इस शुभ शकुन से सब प्रसन्न हो गए । दोपहर को ऐसा जान पड़ा मानो अमीर की सेना महीनों की तैयारी कर रही हो । चारों ओर से मिट्टी लाकर, आगे के घुड़सवारों के सामने, तीरन्दाजों की रक्षा के लिए ढेर लगाया

जाने लगा। यह प्रयोग पूरे दिन चलता रहा और राजपूत सैनिक कोट पर खड़े-खड़े उनका उपहास करते रहे।

: ४ :

हरदत्त पागलों की तरह गाँव में चक्कर काटता रहता। त्रिपुर-सुन्दरी का मन्दिर वन्द हो गया था। उनके दर्शन उसके लिए अलभ्य थे और उनकी पूजा का अधिकार उससे छीन लिया गया था। साथ ही माँस-मदिरा का प्रसाद भी वन्द हो गया था और मदिरा की सुवास से सरावोर, नृत्य करते हुए नर-नारियों के अंग से मादक वने हुए महोत्सव वन्द हो गए थे। जहाँ वह रात को पूजा करता था वहाँ गुरुदेव स्वयं जैसे-तैसे पूजा कर आते थे और उसकी महामाया का मन्दिर कारावास के समान वन्द और श्मशान के समान शून्य पड़ा रहता था। उसके जीवन का कार्य चला गया था, इसलिए वह दूसरे दिन से दाँत पीसता हुआ और चिमटा हिलाता हुआ घूमा करता था।

इस पर भी जव वह देखता कि कितने ही मन्दिरों पर सैनिक कब्जा किये हुए हैं तो उसकी आँखों में खून उतर आता था। इस पुण्यधाम में ऐसा भ्रष्टाचार उसने आज ही देखा था। अमीर का आना उसे अत्यन्त उचित जान पड़ा। उसका ज्ञान परिमित था। उसके लिए अमीर इस विधि-भ्रष्ट गुरु का नाश करने के लिए उपस्थित कोई परम दैवी उपाय था। कौन जीतता है, कौन हारता है, इसकी उसे परवाह नहीं थी; उसे तो अपना मन्दिर खुलवाना था।

जव वह इस प्रकार विचार करता हुआ गढ़ में चक्कर लगा रहा था तो उसे अपने जैसे ही प्रसाद से रहित और यात्रियों की भेंट न मिलने से असन्तुष्ट कितने ही दूसरे साधु भी मिले। इन समान दुखियों ने एक-दूसरे के आगे अपने हृदय खोले। कहाँ गई पूजा, कहाँ गया प्रसाद और कहाँ गई उनकी अभंग 'निद्रा'? उनको यह भी लगा कि इस समस्त विपत्ति के लिए गुरु ही ज़िम्मेदार थे। उन्हें यह स्पष्ट दिखाई दिया कि गुरु के अनेक पाप हो सकते हैं, परन्तु यह उनका सवसे वड़ा पाप था।

गुरुदेव अपने कमरे में वैठे थे। सामने हरदत्त और थोड़े-से दूसरे

साधु हाथ जोड़े बैठे थे। परन्तु उनके मुख और आवाज से धृष्टता टपक रही थी।

'गुरुदेव, जब तक महामाया का मन्दिर नहीं खुलता तब तक यह विपत्ति दूर नहीं होगी। अनादिकाल से यह कभी बन्द नहीं रहा,' हरदत्त ने चिमटे को कड़े हाथ में पकड़कर कहा। उसकी आँखें विकराल पशु के समान थीं।

'अब तो मैं स्वयं पूजा करता हूँ, वह बन्द नहीं है।' गुरुदेव ने कहा।

'परन्तु हम भक्तों के लिए महामाया के दर्शन कभी बन्द नहीं हुए,' हरदत्त ने कहा।

'मुझे तुम लोगों के कार्यों के कारण ही दर्शन बन्द करने पड़े हैं।'

'गुरुदेव,' हरदत्त ने धमकी-भरी आवाज में कहा, 'आज पचास वर्ष मे मेरे कार्यों में किसी ने बाधा नहीं डाली; आज आपने डाली है और यह अमीर यहाँ पर चढ़ आया है। महामाया विधि का खण्डित होना कभी नहीं सह सकती।'

'हरदत्त, भगवान् लकुलेश की कृपा से मुझे भी विधियों का ज्ञान है। एक भी विधि खण्डित नहीं हुई।' गग सर्वज्ञ ने दृढ़ता से कहा।

'तो अमीर क्यों आ गया?' हरदत्त ने पूछा।

'देवों की पूजा के स्थान पर पुण्य धामों में अत्याचार आरम्भ हो गया, इसलिए।'

'इसका अर्थ है कि आप मन्दिर नहीं खोलेंगे?' एक साधु ने पूछा।

'नहीं; यदि मेरे कृत्यों से ही यह दैवी प्रकोप हुआ है तो मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि इसका फल मुझ अकेले को ही भोगना पड़े।'

'लेकिन यह तो हमें भोगना पड़ रहा है,' हरदत्त ने सर्वज्ञ की शान्ति से ऊबकर कहा। उसकी मुद्रा से प्रकट हो रहा था कि वह गुरु के साथ युद्ध कर बैठेगा।

'तो यह मेरे कृत्यों का परिणाम नहीं होगा,' गुरुदेव ने शक्ति से कहा, 'मैं भी आज वर्षों से पाशुपत सम्प्रदाय का गुरुपद भोगता आ रहा हूँ। अभी तक मैं अपने धर्म से भ्रष्ट नहीं हुआ और इस परीक्षा के समय भी नहीं हूँगा। जब तक अमीर को महाराज खदेड़ नहीं देते तब तक

महामाया का मन्दिर वन्द रहेगा।'

'तो हम जाते हैं,' हरदत्त ने कहा। उसका गुस्सा इतना बढ़ता ज रहा था कि उसने वहाँ से चले जाना ही उचित समझा।

'हाँ, तुम जा सकते हो,' गुरुदेव ने कहा। और सब साधु उनके ओर क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखते चले गए।

'महाराज ने जिस समय इन सबको भेज देने का आग्रह किया थ उस समय यदि मैं उनकी वात मान लेता तो अच्छा होता। अब तो भोलानाथ जो कुछ करें सो ठीक है,' वे बड़बड़ाए और ध्यान करने चल दिए।

: ५ :

हरदत्त और वे साधु गुरु के स्थान से उतरकर ओसारे में उस स्थान पर गये जहाँ शिवराशि पंचाग्नि में बैठा-बैठा तपश्चर्या कर रहा था। शिवराशि को ऐसा लगा करता था कि उसकी तपश्चर्या जितनी उग्र होनी चाहिए उतनी नहीं है, इसीलिए अमीर आया है। तप की कमी को शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने के लिए ही उसने यह विधि आरम्भ की थी। इस प्रकार बैठा हुआ वह सर्वकल्याण के दाता शिव और सर्वशक्ति की मूल पार्वती का ध्यान कर रहा था।

जब तक उनका ध्यान टूटा तब तक हरदत्त और दूसरे साधु प्रशंसा-मुग्ध होकर इस तपस्वी को देखते रहे। गुरुदेव का सौम्य स्वभाव, विशाल बुद्धि और उदार चरित उनकी समझ में नहीं आता था, जबकि राशिजी में सामान्य साधु के अनेक लक्षण थे। वे लक्षण उन्हें ऐसे लगते थे जैसे वे स्वयं उन्हीं के हों। तप और विधि तथा लकुलेशमत की छोटी-छोटी रीतियाँ सभी उन्हें प्रिय थीं। उनकी जरूरतें और फरियादें भी राशिजी अच्छी तरह समझ लेते थे, इसलिए वे उनके पास जाते हुए झिझकते नहीं थे। गुरु किसी हिम से आच्छादित, दुर्लभ शिखर जैसे लगते थे, जबकि राशिजी सुन्दर वृक्षों से सुशोभित पवित्र गिरिशृङ्ग का आभास देते थे।

राशिजी का ध्यान टूटा और उन्होंने पंचाग्नि से वाहर आकर हर-दत्त तथा दूसरे साधुओं का सत्कार किया।

'राशिजी, महामाया का मन्दिर नहीं खुलेगा तो हम प्राण दे देंगे। गुरुदेव के इस जुल्म को हम नहीं सह सकते,' हरदत्त ने क्रोध-भरे स्वर में कहा।

'गुरु की आज्ञा हमें सदा ही शिरोधार्य है।'

'तो क्या महामाया के दर्शन के बिना हम तड़पकर मर जाएँ?' हरदत्त ने कहा।

'हरदत्त, तेरी आँखें स्थूल हैं। जब मैं आध्यात्मिक दृष्टि से देखता हूँ तो मुझे स्पष्ट दिखाई देता है कि जिस दिन से महामाया का मन्दिर बन्द हुआ है, उस दिन से महामाया अपना मन्दिर छोड़कर सारे परकोटे में फिरती है। जिसमें भक्ति है, उसमें दृष्टि है और उसी को महामाया मनुष्य-देह में दिखाई देती है।'

'किसमें? चौला में?' हरदत्त ने धीमे से कहा।

'किसीकी शक्ति नहीं है जो महामाया को दीवारों के अन्दर बन्द कर दे।' शिवराशि ने सीधा जवाब नहीं दिया।

'तो यह अमीर क्यों आया?'

'इस पहेली को सुलझाने के लिए मैं कई दिन से यह तपश्चर्या कर रहा हूँ। मुझे इसका कारण स्पष्ट दिखाई देता है।'

'क्या?'

'यह गढ़ है और मैं इसके उपाय का विचार सोच रहा हूँ,' शिवराशि ने कहा।

'हमें भी बताइए। हम भी उपाय करेंगे,' एक साधु ने कहा।

'समय आने पर कहूँगा।'

'नहीं, कहिए,' हरदत्त ने कहा, 'नहीं तो हम त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर के आगे धरना दे देंगे।'

'मुझमें इतनी श्रद्धा नहीं? तुम्हीं महामाया के भक्त हो, मैं नहीं?' शिवराशि ने कहा।

'आप गुरु-भक्ति में लीन हैं,' हरदत्त ने कहा।

'मैं गुरु-भक्त होने के कारण ही महामाया का अधिक भक्त हूँ।'

'और आपको विश्वास है कि अभी तक उसमें महामा —

है ?' हरदत्त ने कहा।

'हाँ। यदि तुमको सन्देह हो तो जब वह काफ़ी रात बीतने पर अकेली नृत्य करके भगवान् को रिझा रही हो तब देखना।'

'वह नाचती है ?'

'हाँ, भीमदेव महाराज की भी मजाल नहीं जो महामाया को रोक सकें।'

'स्पष्ट कहिए, राशिजी, हम आपके सहारे हैं। इस पुण्यधाम को भ्रष्ट होने से कैसे रोका जाए ? इस अमीर को कैसे वापस किया जाए ? आप जो कुछ कहते हैं, उससे बहुत ज़्यादा जानते हैं,' एक साधु ने विनयपूर्वक कहा।

'इसीलिए कह रहा हूँ, मुझमें श्रद्धा रखो।'

'आप हरदत्त से कहिए, जिससे हमें सन्तोष मिले। ऐसा कौन-सा उपाय है, जो हमें दिखाई नहीं देता और जिसे आप बता नहीं सकते,' उस साधु ने हाथ जोड़े।

'ठीक है, हरदत्त से कहूँगा। तुम सब लोग निश्चिन्तता से बैठो। महामाया सब ठीक करेंगी।' शिवराशि ने कहा और हरदत्त को छोड़कर दूसरे सब साधु वहाँ से चले गए।

'क्या उपाय है ?' हरदत्त ने पूछा।

'उस दिन की अधूरी पूजा को पूरा करना चाहिए,' धीमे-से शिवराशि ने हरदत्त के कान में कहा और दोनों की आँखों में भयंकर तेज झलकने लगा।

: ६ :

भीमदेव महाराज बड़े आनन्द में थे। उन्होंने पहला वार किया था; उनकी तीरन्दाज़ी उनकी सर्वश्रेष्ठ बात थी; और दुश्मन की फौज परेशानी में पड़ी थी। यदि अमीर घेरा डाले तो महीनों तक उसे परेशान करने का सामान था; यदि वह हमला करे तो उसे विफल करने के लिए उनके पास अनेक साधन थे। ऐसा विचार करते और चारों ओर दृष्टि डालते हुए वे घूम रहे थे। पीछे अकेला बीरा आ रहा था।

जब वे समुद्र की ओर के दरवाज़े के आगे पहुँचे तो उन्होंने देखा

कि वहाँ राय कमा एक आँख से समुद्र की ओर ध्यान से देख रहा है। उसका मुख गम्भीर था।

'क्यों राय, क्या देखते हो ?' महाराज ने पूछा।

'वह देखा ?'

'क्या ?' महाराज ने क्षितिज पर दृष्टि डालते हुए पूछा, 'वह जो काले धब्बे जैसा है सो ?'

'हाँ,' लखाणी ने कहा, 'जहाज है।'

'मुझे ऐसा नहीं लगता।'

'मैं कच्छी हूँ; बचपन से समुद्र में घूमा हूँ। जहाज इस ओर आ रहे हैं,' कहकर उसने महाराज को दूर खींचा, 'यदि इस ओर आ गए तो हम मर गए।'

'क्यों ?'

'अमीर ने किनारे के दोनों ओर घुड़सवार रखे हैं। यदि अपनी कोई भी नौका उनके कब्जे में चली गई तो समुद्र का मार्ग बन्द हो जाएगा।' कमा ने क्षितिज को फिर बारीकी से देखा, 'लगभग आठ जहाज हैं।'

'समुद्र का मार्ग तो खुला ही रहना चाहिए। क्या करें ?'

'एक उपाय है,' और कमा की एक आँख मिचने लगी। 'वहाँ जाकर जहाज रोकने चाहिए।'

'इससे क्या होगा ?' भीमदेव ने कहा, 'वहाँ भी हमें कुछ अच्छे योद्धा भेजने चाहिए जो जरूरत पड़ने पर नावों से ही लड़ सकें।'

कमा खिलखिलाकर हँसा। 'महाराज, यह तो आधे योजन तक डुबकी मारने का काम है। आप नहीं समझते।' एक अच्छे तैराक के अभिमान से कमा ने कहा।

'कैसे ?'

'मेरी सेना में थोड़े-से ऐसे आदमी हैं, जो मिस्र से चीन तक धावा मार आए हैं। उनको तैयार करता हूँ।'

'परन्तु वे समुद्र में रहकर लड़ सकेंगे ?'

'जहाज पर रहकर लड़ना तो हमारे बाप-दादों का काम है।' कमा ने कहा।

इसका नायक कौन होगा ? मेरे पास एक-दो खम्भाती हैं, पर
न नहीं ।'

ा ने अपनी एक आँख मीच ली ।

रा लड़का होता तो इस काम को करता । कुछ नहीं । पिछली
ी पर ही मैं बहत्तर का हुआ हूँ । मैं क्या बुड्ढा हो गया हूँ ?'
र बत्तीसों दाँत दिखाता हुआ वह हँसा, 'आधा योजन तो पलक
ते-मारते पार कर दूँगा ।'

'धन्य है राव, धन्य है !'

'अपने आदमियों को ढूंढ़ता हूं । अँधेरा होते ही दो हज़ार तीर-
मान यहाँ रख देना । अमीर यदि ज़मीन से तीर छोड़ेगा तो हम तक
नहीं पहुँचेगा, लेकिन यदि घोड़ों को लेकर पानी में घुस गया तो हमें
भारी पड़ेगा । उससे बचाना आपका काम है ।'

'निर्भय रहो राव, मैं भी तैयारी करता हूँ ।'

और बिना ज़्यादा हाय-तोबा किये भीमदेव महाराज ने समुद्र की
ओर के दरवाज़े पर दो हज़ार चुनींदा तीरन्दाज़ इकट्ठे कर दिए ।
सूर्यास्त हुआ और अँधेरा फैलने लगा तो अमीर की सेना में हज़ारों
मशालें जल उठीं । महाराज की आज्ञा थी, इसलिए कोट पर मशालें देर
से जलने वाली थीं । अँधेरा होते ही वीर कमा लखाणी तीन सौ अनूठे
तैराकों को लेकर प्रभास के समुद्र की ओर के दरवाज़े पर जा खड़ा
हुआ । भीमदेव और विमल मन्त्री भी आये । महाराज और राव प्रेम से
मिले । विमल ने खिड़का थोड़ी-सी खोल दी ।

वीर कमा तीर-कमान और तर्कश को दुपट्टे से कन्धे पर बाँ
कमर में कटार खोंस, कच्छ बाँध, सोमनाथ का स्मरण कर, खिड़की
होकर पानी में सरका । तनिक भी आवाज़ नहीं हुई, यहाँ तक
ऊपर पानी का बबूला तक नहीं बना । थोड़ी देर तक सब कान
सुनते रहे, परन्तु तनिक भी आवाज़ नहीं आई । तुरन्त ही दूसरा
योद्धा भी उसी प्रकार पानी में सरका और अदृष्ट हो गया । इस
तीन सौ बहादुर वीरों ने डुबकी मारी और अपार सागर में ख
काम इतनी खूबी से हो रहा था कि खाई के उस पार थोड़ी ही

पड़े हुए अमीर के चौकीदारों को सन्देह तक न हुआ।

जब आधी रात हो चुकी थी तब अन्तिम कच्छी वीर विदा हुआ और महाराज की आज्ञा से सैनिकों ने कोट के ऊपर ठौर-ठौर मशालें जला दी। कमा ने अपने सिर पर भारी बोझ ले लिया था; अँधेरे में आधा या एक योजन तैर कर दूर की नावों पर जाना कोई खेल नहीं था; और इस बात का भी पूरा पता नहीं था कि ये नावें सम्मात की हैं या किसी अज्ञात व्यापारी की, या दुश्मन की। महाराज बड़ी देर तक अधीरता से समुद्र की ओर देखते रहे। घड़ी-पर-घड़ी बीतती गई। कई बार तो उन्होंने आशा छोड़ दी। आधी रात बीत गई पर कहीं कमा का नामोनिशान नहीं मिला। निदान खिन्न हृदय से उन्होंने अपने डेरे पर जाने का निश्चय किया। तब दूर क्षितिज पर, समुद्र के बीच अनेक मशालें ऊँची-नीची हुई। महाराज हर्ष से उछल पड़े, 'शाबाश, मेरे कमा, शाबाश!'

और जलती हुई मशालों से पहरा देने वाली अमीर की समुद्र वाली टुकड़ियाँ एकदम सतर्क हो गईं। रणसिंघे फूंके गए। घोड़े हिनहिनाये, कोट पर पट्टली तीरन्दाज़ तीर चढ़ाकर आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु मशालें अन्त में अदृष्ट हो गई। थोड़ी देर में अमीर की टुकड़ियाँ शान्त हो गईं और भीमदेव हर्षित हृदय से अपने डेरे पर गया।

: ७ :

जब रात हो गई तब शिवराशि ने पचाग्नि-तप छोड़कर स्नान किया। फिर उन्होंने भगवान् के दर्शन किये, बिल्वपत्र चढ़ा अपने डेरे पर आकर सिद्धेश्वर द्वारा तैयार किया हुआ भोजन पाया। आज की तपश्चर्या से उनके मन के अनेक विकार दूर हो गए थे। अब उनको तनिक भी शंका नहीं थी कि त्रिपुर-सुन्दरी चौला के रूप में प्रभास में विचर रही थी। उन्हें यह भी दीपक की तरह साफ दिखाई दिया कि जब तक वे स्वयं उसकी अधूरी पूजा पूरी नहीं करते तब तक न तो अमीर हारेगा और न यह युद्ध ही समाप्त होगा। जब यह पूजा पूरी हो जाएगी तब चौला में से महामाया चली जाएंगी और पुराण-विहित विधि के अनुसार स्वयं आचार्य-रूप में वे चौला के अधिकारी हो जाएँगे।

वह वस्तु उनके तपस्वी मन को अपरिहार्य जान पड़ी। काम, क्रोध और मोह को जीतने वाले इस तपस्वी को इस वस्तु में कोई महत्त्व दिखाई नहीं दिया। उसका समस्त जीवन त्यागमय था। इस समय त्रिपुरसुन्दरी की पूजा पूरी करने के लिए वह कुछ भी त्याग करने के लिए तैयार था; तैयार होना उसका परम कर्तव्य था।

वह धीमे-धीमे भगवान् के मन्दिर में गये और एक खम्भे के पास छिपकर बैठ गए। लिंग के आगे एक ही घी का दीपक जल रहा था। कुछ समय बीतने पर खिंचती हुई चौला आई और भगवान् के पैरों पड़ी; थोड़ा-सा नृत्य किया। शिवराशि उसके अंग-अंग की शोभा की कल्पना कर रहे थे। वस्तुतः चौला का दैवी सौन्दर्य उसका न था वरन् जगज्जननी महामाया का था। अधूरी रह जाने वाली पूजा का अविस्मरणीय अनुभव उनकी कल्पना में नया हो गया और उनका रोम-रोम खड़ा हो गया—उसी प्रकार जैसे कि एक भक्त का होता है। उनके तपस्वी हृदय ने सोचा; और इस पूजा को पूरी करवाने की उनकी इच्छा दृढ़ हो गई। नृत्य पूरा हुआ। चौला ने भावपूर्ण शब्दों से त्रिपुरारि को रिझाया। राशिजी को लगा कि इसी समय पूजा पूरी कर डालें, परन्तु इस समय विधिपूर्वक नहीं होगी, इस डर से जैसे-तैसे मन को रोका।

चौला अपने निवास-स्थान की ओर गई। पीछे-पीछे शिवराशि गये। उनके भावुक मन में यही विचार आता रहता कि कब और कैसे पूजा पूरी की जाए और वे अँधेरे में भी चेतन त्रिपुर-सुन्दरी की पग-ध्वनि के आनन्द को हृदय में धारण करते रहते थे।

चौला उतावली होकर दौड़ती हुई छत पर गई। ऐसा लगा जैसे उसके पैरों में पंख हों। महामाया के पैरों में भी पंख न होंगे तो किसके पैरों में होंगे! चौला भीमदेव के कमरे की ओर मुड़ी। शिवराशि अचम्भे में पड़कर अँधेरे में, दीवार के सहारे-सहारे पीछे चलने लगे। महामाया बिना कारण के ऐसे नहीं जाएँगी। चौला कमरे की बगल में होकर छप्पर पार कर उस ओर की छत पर गई। पीछे राशिजी भी गये। अँधेरे में छत पर एक पुरुष खड़ा था—भीमदेव ही; ऐसा क़द भीमदेव को छोड़कर और किसका हो सकता था! राशिजी ने छप्पर के नीचे से देखा।

'महाराज,' धीमे से परन्तु उत्साह के साथ चौला बोली, 'कहाँ हो ?'

'मैं तेरी ही बाट देख रहा हूँ,' भीमदेव की आवाज आई।

दो काले धब्बे एक-दूसरे से लिपट गए—दो के एक हो गए, और एक प्रकार की आवाज स्पष्ट रूप से उस अन्धकार और शान्त वातावरण में राशिजी के कान में टकराई। उनको रोमाच हो आया; उनकी रग-रग में क्रोधाग्नि भभक उठी; उनके हृदय मे ज्वालामुखी फूटा। उनकी आँखों के सामने ऐसा पाप हो रहा था जिसकी कल्पना भी कभी किसीने नहीं की होगी; भीमदेव के होंठों ने जगज्जननी महामाया के होंठों का स्पर्श किया।

और देवेन्द्रदेव के क्रोध को इस दुष्ट चालुक्य के ऊपर गिरने का निमन्त्रण देकर तपस्वियों में श्रेष्ठ वे शिवराशि पुण्य-प्रकोप से जलते हुए अपने डेरे पर आये। इस अधम पापी को पल-भर भी जीने का अधिकार नहीं है।

चौदहवाँ प्रकरण

पौष वदी १, शुक्रवार

: १ :

नित्य के नियमानुसार शिवराशि के पैर उन्हें गुरु के डेरे की ओर ले गए। यह बड़ी भयंकर बात थी; दसों दिशाएँ शाप दे रही थीं। सोमनाथ भगवान् के पुण्यधाम में ऐसे घोर पाप को होने देने की शक्ति किसी भी शास्त्र में नहीं थी। यह पाप धोना चाहिए; इसका प्रायश्चित्त जीवन को जोखिम में डालकर भी होना चाहिए।

महामाया की विशुद्धि अभंग और अभेद्य रखनी चाहिए। गुरु के डेरे पर जाते हुए शिवराशि के पैर रुक गए। किसलिए गुरु के पास जाऊँ? वे तो अपने ढंग से हँसेंगे। वे कहेंगे कि चौला तो एक सामान्य नर्तकी है। उनकी स्थूल आँखों से त्रिपुर-सुन्दरी भी नहीं दिखाई देगी। उन्होंने तो त्रिपुर-सुन्दरी की विधियों को भंग करके उसके पट बन्द करा दिए हैं। वे तो गुरुपद से कभी के गिर चुके। गंगा—नर्तकी—को गृहिणी की भाँति और उसकी पुत्री चौला को अपनी पुत्री की भाँति रखते हुए वे कितने ही दिन से गृहस्थ धर्म का पालन-सा करते आ रहे थे और शिवराशि स्वयं कृतज्ञता के मारे तपोबल के विश्वास के कारण सर्वज्ञ को भक्ति-भाव से सम्मान दिया करते थे। देव, शास्त्र और तपश्चर्या की अवहेलना करके वे स्वयं ऐसे मनुष्य को गुरु के रूप में स्वीकार करते थे। वस्तुत: देखा जाए तो यह एक निर्बल और भीरु बुड्ढा था। सच्चा तप तो स्वयं उन्होंने किया था। इस बुड्ढे ने अपने गुरुपद को दृढ़ करने के लिए भीमदेव को गद्दी पर बिठाया; आज भी उसकी रक्षा के लिए भीमदेव को मनमानी करने देता था। ऐसे ही पूजा करना—उसकी

आज्ञा मानना—पाशुपत मत से द्रोह करने के समान था। अब गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पूरा हुआ। बचपन में गुरु द्वारा दी हुई रुद्राक्ष की वह माला, जो उनके गले में थी, उन्होंने क्रोध से काँपते हाथों से पकड़ी, खींची और तोड़ डाली। अब उनके गुरु भगवान् लकुलेश थे; ये उनके ही उत्तराधिकारी थे; अपने तपोबल से पाशुपत मत की रक्षा करना ही उनका परम कर्तव्य था।

: २ :

वे वहाँ से पीछे लौटे। निश्चय हो जाने के कारण उन्होंने अपने कम्बल को शरीर पर ज़ोर से लपेट लिया और धीरे-धीरे कोट पर घूमने लगे। अलस के आसपास बैठे हुए सैनिकों ने जब दूर से उनको जाते देखा तो उनमें अमीर की सेना देखकर जिनका बाल भी नहीं फड़का था वे भी काँपने लगे। उनको ऐसा लगा मानो भयकर जटा तथा स्थिर क्रोधपूर्ण आँखों से भयकर बने शिव ही स्वयं परिस्थिति देखने निकले हों। बहुतों ने तो अपने सिर घुटनों में छिपा लिए, बहुतों ने साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया, बहुतों ने घबराहट की आवाज़ में 'नमः शिवाय' से सत्कार किया। और वह ऊँची, काली, भयानक आकृति जलती हुई आँखों को भौंहों पर टिकाए अदृष्ट हो गई।

भरूच के दद्दा चालुक्य एक अनुचर को साथ लेकर कोट की व्यवस्था देखने निकले थे। उस समय इस व्यवस्था को देखने का काम उन्हीं का था और वे कमर कसकर इसे कर रहे थे। उनकी उम्र लगभग पैंतीस वर्ष की थी। जब मूलराजदेव ने दक्षिण के सेनापति बाण को हराकर भृगुकच्छ ले लिया था तब पुराने चालुक्यवंशीय राजाओं की एक सन्तान को लाट की राजगद्दी पर बिठाया था, यद्यपि राज्य वास्तव में पाटण के दण्डनायक ही करते थे। चामुण्डराज के समय में दद्दा के पिता ने सिर उठाने की कोशिश की थी, परन्तु उसे तो पाटण की सेना ने चुटकी में मसल डाला था और उसके इस पुत्र को गद्दी का अधिकारी ठहराया था। दद्दा खाते-पीते और मौज करते, पाटण के दण्डनायक की आज्ञा का पालन करते, और स्वयं इस विचार से कि वे राजा हैं, प्रसन्न रहते। अमीर का आक्रमण होने पर उनसे भरूच की सेना लेकर

ी कहा गया, इसलिए महल और महिलाओं को छोड़कर पौष मास की ठण्डी रात में इन शस्त्र-सज्जित सेनाओं के बीच कोट की रखवाली करने का दुर्भाग्यपूर्ण कार्य उनके ज़िम्मे पड़ा था। यदि उनका वश चलता तो वे दूसरे ही क्षण भरूच का रास्ता ले लेते। परन्तु भीमदेव ने उनकी गरदन पकड़ रखी थी। उनकी धाक के कारण न तो वे जा ही सकते थे और न रह ही सकते थे। न जाने किस घड़ी में मूलराजदेव ने उनके दादा को गद्दी पर बिठाया, इस बात का ही विचार करना उन्हें अभीष्ट था।

उन्होंने दूर से शिवराशि को आते हुए देखा और उनका हृदय धड़कने लगा। उनको भी पहले भगवान् शंकर का ही ध्यान आया, फिर वहाँ से भाग जाने की भावना जागी। लेकिन कुछ सैनिक उनको नमस्कार कर रहे थे और कुछ उस भयंकर मूर्ति को, इसलिए प्रतिष्ठा खोने के डर से वे वहीं-के-वहीं खड़े रहे।

परन्तु जैसे ही शिवराशि पास आये, उन्होंने उनको पहचान लिया तीन वर्ष हुए, राशिजी रेवाजी की परिक्रमा करने आये थे। तब वे भव्य तपस्वी के चरणों में स्वयं जा बैठे थे और उस समय उन्होंने इ वड़ा वल प्राप्त किया था। इनके आशीर्वाद से उनके यहाँ पाँच लड़ और एक लड़का पैदा हुए थे। दद्दा ने साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम और शिवराशि ने 'शिवाय नमः' कहकर आशीर्वाद दिया। जाने की अपेक्षा उनको इस तपस्वी के साथ कोट पर घूमना अच्छा लगा।

'राशिजी, यह पीड़ा कब जाएगी ?"

शिवराशि ने जवाब नहीं दिया और कुछ देर दोनों चुपच गये।

'गुरु महाराज, कहिए तो सही कि इस सबका क्या निकलेगा ?'

शिवराशि ने दद्दा की ओर देखा और उनकी भयंकर भरूच के चालुक्यराज काँप उठे।

'परिणाम ?'

'हाँ, राशिजी, आपको तो तीनों कालों का ज्ञान है। क्या होगा?'

शिवराशि ने ऊपर देखकर क्षितिज पर दृष्टि डाली, 'महामाया को भ्रष्ट करने वाले कुत्ते की मौत मरेंगे।'

दद्दा प्रसन्नता से उछल पड़े। 'अमीर?' उन्होंने पूछा।

शिवराशि खड़े रहे और दद्दा की ओर उग्रता से देखा। दद्दा काँपे और हाथ जोडकर खड़े हो गए।

'नहीं,' उन्होने धीरे-से कहा, 'भीम।'

दद्दा ऐसे स्तब्ध हो गए जैसे उन पर बिजली गिर पड़ी हो। उनका सिर घूमने लगा।

'भगवान् सोमनाथ की अर्द्धाङ्गना का शाप है।'

और राशिजी लम्बे-लम्बे डग भरते हुए वहाँ से चले गए।

दद्दा पैर उठाने मे असमर्थ, उन्मत्त की भाँति इस भयकर आकृति को अन्धकार मे लुप्त होते देखते रह गए।

: ३ :

परन्तु दद्दा को अधिक विचार करने का समय न था।

अरुणोदय के साथ ही अमीर की सेना मे एकदम हलचल मच गई। घोड़े मशालचियों के साथ इधर-से-उधर दौडने लगे। काँपते हुए दद्दा ने कन्धे पर लटकाया हुआ शख फूंका। तुरन्त दरवाजों पर खड़े चौकीदारो ने भेरी का नाद किया। भीमदेव बिस्तर मे उछलकर बैठ गए; कमल के नाल के समान हाथ की मृदुता देखे बिना ही बख्तर सजाया, शखनाद किया और कोट की ओर दौड़े। राय ने भी शस्त्र सज्जित कर, कोट पर आकर अपना रणसिंघा फूंका। परमार और विमल भी कोट पर आये और सब लोग मुख्य दरवाजे के उस कँगूरे पर जमा हुए जिस पर भीमदेव महाराज खड़े थे।

अमीर की सेना मे अजीब चलाचली हो रही थी। भारी आवाज मे, समझ में न आने वाली बोली मे हुक्म दिए जाते, घोड़े हिनहिनाते, शस्त्रों की आवाज होती। दूर पर जगल के बिल्कुल पास, जहाँ अमीर डेरे-तम्बू डालकर पड़ा था, मशालें जल रही थीं। वहाँ से घोड़े छूट रहे थे और जैसे किसी महामन्त्र की चरखी घूमती है वैसे ही सारी सेना

को कहा गया, इसलिए महल और महिलाओं को छोड़कर पौप मास की ठण्डी रात में इन शस्त्र-सज्जित सेनाओं के वीच कोट की रखवाली करने का दुर्भाग्यपूर्ण कार्य उनके ज़िम्मे पड़ा था। यदि उनका वश चलता तो वे दूसरे ही क्षण भरूच का रास्ता ले लेते। परन्तु भीमदेव ने उनकी गरदन पकड़ रखी थी। उनकी धाक के कारण न तो वे जा ही सकते थे और न रह ही सकते थे। न जाने किस घड़ी में मूलराजदेव ने उनके दादा को गद्दी पर विठाया, इस वात का ही विचार करना उन्हें अभीष्ट था।

उन्होंने दूर से शिवराशि को आते हुए देखा और उनका हृदय धड़कने लगा। उनको भी पहले भगवान् शंकर का ही ध्यान आया, फिर वहाँ से भाग जाने की भावना जागी। लेकिन कुछ सैनिक उनको नमस्कार कर रहे थे और कुछ उस भयंकर मूर्ति को, इसलिए प्रतिष्ठा खोने के डर से वे वहीं-के-वहीं खड़े रहे।

परन्तु जैसे ही शिवराशि पास आये, उन्होंने उनको पहचान लिया। तीन वर्प हुए, राशिजी रेवाजी की परिक्रमा करने आये थे। तव वे इस भव्य तपस्वी के चरणों में स्वयं जा वैठे थे और उस समय उन्होंने इनसे वड़ा वल प्राप्त किया था। इनके आशीर्वाद से उनके यहाँ पाँच लड़कियाँ और एक लड़का पैदा हुए थे। दद्दा ने साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया और शिवराशि ने 'शिवाय नमः' कहकर आशीर्वाद दिया। अकेले जाने की अपेक्षा उनको इस तपस्वी के साथ कोट पर घूमना अधिक अच्छा लगा।

'राशिजी, यह पीड़ा कव जाएगी ?"

शिवराशि ने जवाव नहीं दिया और कुछ देर दोनों चुपचाप चलते गये।

'गुरु महाराज, कहिए तो सही कि इस सवका क्या परिणाम निकलेगा ?'

शिवराशि ने दद्दा की ओर देखा और उनकी भयंकर आँखें देखकर भरूच के चालुक्यराज काँप उठे।

'परिणाम ?'

'हाँ, राशिजी, आपको तो तीनों कालों का ज्ञान है। क्या होगा ?'

शिवराशि ने ऊपर देखकर क्षितिज पर दृष्टि डाली, 'महामाया को भ्रष्ट करने वाले कुत्ते की मौत मरेंगे।'

दद्दा प्रसन्नता से उछल पड़े। 'अमीर ?' उन्होंने पूछा।

शिवराशि खड़े रहे और दद्दा की ओर उग्रता से देखा। दद्दा काँपे और हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

'नहीं,' उन्होंने धीरे-से कहा, 'भीम।'

दद्दा ऐसे स्तब्ध हो गए जैसे उन पर बिजली गिर पड़ी हो। उनका सिर घूमने लगा।

'भगवान् सोमनाथ की अर्द्धाङ्गना का शाप है।'

और राशिजी लम्बे-लम्बे डग भरते हुए वहाँ से चले गए।

दद्दा पैर उठाने में असमर्थ, उन्मन की भाँति इस भयंकर आकृति को अन्धकार में लुप्त होते देखते रह गए।

: ३ :

परन्तु दद्दा को अधिक विचार करने का समय न था।

अरुणोदय के साथ ही अमीर की सेना में एकदम हलचल मच गई। घोड़े मशालचियों के साथ इधर-से-उधर दौड़ने लगे। काँपते हुए दद्दा ने कन्धे पर लटकाया हुआ शंख फूँका। तुरन्त दरवाज़ों पर खड़े चौकीदारों ने भेरी का नाद किया। भीमदेव बिस्तर से उछलकर बैठ गए; कमल के नाल के समान हाथ की मृदुता देखे बिना ही बख्तर सजाया, गर्जनाद किया और कोट की ओर दौड़े। राय ने भी शस्त्र सज्जित कर, कोट पर आकर अपना रणसिंघा फूँका। परमार और विमल भी कोट पर आये और सब लोग मुख्य दरवाज़े के उस कँगूरे पर जमा हुए जिस पर भीमदेव महाराज खड़े थे।

अमीर की सेना में अजीब चलाचली हो रही थी। भारी आवाज़ से, समझ में न आने वाली बोली में हुक्म दिए जाते, घोड़े हिनहिनाते, शस्त्रों की आवाज़ होती। दूर पर जंगल के बिलकुल पास, जहाँ अमीर डेरे-तम्बू डालकर पड़ा था, मशालें जल रही थीं। वहाँ से घोड़े छूट रहे थे और जैसे किसी महामन्त्र की चरखी घूमती है वैसे ही सारी सेना में समझ

आने वाले व्यूह बन रहे थे ।

भीमदेव ने भी तैयारी कर डाली । धनुर्धारियों की एक पंक्ति घुटने कर तैयार हो गई । उसके पीछे शरीरों पर ढाल बाँधकर दूसरी पंक्ति ार हुई । पीछे बख्तर पहने राजपूत योद्धा खड़े थे ।

गुरुदेव भी ऊपर आये । भीमदेव ने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया । ुरुदेव ने आशीर्वाद दिया और राजाओं को केसर तिलक किया । केसर और कुंकुम की फुहारें उड़ने लगीं । 'जय सोमनाथ' से गगन गूंज गया ।

अन्धकार के परदे खिंचे और भीमदेव ने चारों ओर दृष्टि डाली । अमीर की समस्त सेना का स्वरूप बदल गया । तीनों ओर लम्बी, मोटी और चौरस चमकती ढालों के नीचे कछुए के समान सैनिकों की दो पंक्तियाँ छिपी पड़ी थीं । केवल उनकी आँखें और उनके हाथ की नंगी और छोटी तलवारों की नोकें बाहर दिखाई देती थीं । हरेक के पास खाई को पार करने के लिए छोटा-सा तख्ता था ।

पीछे चार-चार, छः-छः पंक्तियाँ घुड़सवार धनुर्धारियों की थीं । उनकी छातियों पर जंगली जानवरों की खाल के बख्तर थे । उनकी पचरंगी दाढ़ियाँ विशाल वस्त्रों पर लहरा रही थीं । उनके माथे पर जानवरों के सींग वाले टोप थे । उन्होंने धनुष चढ़ा रखे थे । उनकी तैयारी ऐसी थी कि एक शब्द सुनाई देने के साथ दस हजार तीर छूट लगें । उनके पीछे पास-पास खड़े हाथियों की पंक्ति ने एक बड़ा कोट ब दिया था । हरेक पर तीन-चार तीरन्दाज़ थे; हरेक की बग़ल में कोट चढ़ने की सीढ़ियाँ थीं ।

अद्भुत समानता थी, अपूर्व व्यवस्था थी, दुर्धर्ष प्रभाव था । और भीमदेव इस सेना की प्रशंसा करते हुए इसे देख रहे थे ।

'महाराज, यदि हम जीतेंगे तो भगवान् की कृपा से ही,' धीमे-से कहा ।

'भगवान् की कृपा और क्षत्रिय की टेक,' महाराज ने गर्व 'हम कभी हारेंगे नहीं, हमारा युद्ध धर्म का है ।'

'जहाँ धर्म वहाँ जय,' गुरुदेव ने हँसकर कहा और वे को चले गए ।

दूर पर एक विचित्र ध्वनि वाला रणसिंघा बजा। उसके बाद स्थान-स्थान पर रणसिंघे बजे। यवन-सेना के बीच मार्ग हुआ और अमीर अपनी छावनी से बाहर निकला। पचास डके वाले घोड़े दोनों ओर चले और उनके बीच निशान वाले पच्चीस-तीस घोड़े बढ़े। उनमें सबसे आगे हरी पगड़ी और लाल तथा बड़ी दाढ़ी से शोभित प्रचण्डकाय अमीर काले घोड़े पर आ रहा था। उसके आसपास छठ के चन्द्रमा के समान स्वर्ण की आकृति वाले निशान लिये घुड़सवार ठुमुक रहे थे।

चारों तरफ फैले हुए इस आसुरी प्राबल्य को देखकर भीम की रगों मे क्रोधाग्नि की लपटें दौड़ने लगी। उसके मस्तिष्क में जैसे हथौड़ों की चोटें पड़ने लगी। एक ही छलांग मे वह वीरा द्वारा तैयार किये घोड़े पर सवार हो गया और रकाबों पर खड़े होकर आसपास खड़े योद्धाओं पर दृष्टि डाली।

'मेरी, पाटण की और भगवान् सोमनाथ की लाज तुम्हारे हाथ है। वीरा, स्वर्ग के द्वार खुलने ही वाले है। एक-एक क्षत्रिय वीर हज़ारों यवनों को मारेगा। जो पैर पीछे हटाए वह क्षत्रिय का जाया नही।'

और राय रत्नादित्य भी हर्षातिरेक मे अपने घोड़े पर उछला और तलवार निकालकर बोला, 'भीमदेव महाराज की जय!'

आसपास खड़े योद्धाओ ने घोषणा को दुहराया। भीमदेव महाराज ज़रा रुके, हंसे और फिर तलवार चमकाकर भयंकर आवाज़ मे जयध्वनि की, 'जय सोमनाथ!' सैनिको ने उसे दुहराया और उसकी प्रतिध्वनि अमीर के कानों मे ऐसे पडी जैसे कहीं गड़गड़ाहट हो रही हो।

अमीर दाढी पर हाथ रखकर इस गढ की ओर देखता रहा। अपने विश्व-विजय के क्रम में उसने ऐसे अनेक गढ़ो पर आक्रमण किया था, परन्तु यह धाम उन सबसे श्रेष्ठ था। यहाँ आने के लिए उसे अज्ञात रेगिस्तान को पार करना पड़ा और अपूर्व साहस दिखाना पड़ा था। इस समय उसकी प्रचण्ड सेना तैयार थी; सम्मुख भयकर प्रतिज्ञा लेकर छोटी-सी क्षत्रिय-सेना खड़ी थी। क्षण-भर के लिए उसके मन में दया का सचार हुआ। 'हज़ारों राजपूत सेनाएँ कट गईं, तो यह भी कट जाएगी। अल्लाह और उसके पैगम्बर आली की उस पर मेहरबानी थी।

लेकिन यह सब किस लिए ?' विचार आया और उसी क्षण नष्ट हो गया।

उसे इतिहास के पृष्ठों में अद्वितीय जगद्विजेता की कीर्ति अर्जित करनी थी; सोमनाथ का विनाश इस कीर्ति-मन्दिर का स्वर्ण-कलश था; इस कलश को रखने में ऐसी सेना विघ्न-स्वरूप थी। काफ़िरों की ऐसी सेनाएँ अपने विनाश से उसकी कीर्ति को उज्ज्वल करने के लिए निर्मित की गई थीं। उसकी आँखें चमकीं और उसने प्रौढ़ आवाज़ में पुकार लगाई, 'अल्ला हो अकबर !' उसके आसपास के डंके वालों ने डंकों की गड़गड़ाहट से इस आज्ञा का सत्कार किया। चारों ओर 'अल्ला हो अकबर' की ध्वनि गूँजी। टुकड़ी-टुकड़ी में डंके की चोट पड़ी और समस्त सेना किसी भूखे प्रचण्ड अजगर की भाँति शान्त निश्चयात्मकता से प्रभास गढ़ को निगलने के लिए आगे बढ़ी।

: ४ :

महाराज नव्यद्वार के कँगूरे पर खड़े-खड़े मानुषी कछुओं के आते हुए इस समूह को देख रहे थे। 'घुड़सवार पास आयें, तो उन पर तीर छोड़ना। कछुओं पर बेकार मत चलाना,' कहकर वह घोड़े से नीचे उतरे।

'विमल, विमल !' महाराज ने आवाज़ लगाई, 'वीरा, विमल को खोज। कह कि पत्थर हाथ में लेकर आदमी कोट पर भेजो। वे कछुए पानी में गिरें कि उन्हें डुबा देना है।'

और वीरा महाराज के घोड़े पर चढ़कर मन्त्री को खोजने गया। महाराज ने अपना बाण निकाला।

'मेरे तीर छोड़ते ही तुम भी छोड़ना। कछुओं पर नहीं, सवारों पर नहीं, वरन् घोड़ों पर।'

कछुए हाथ और पैरों के बल आगे आये। पीछे घुड़सवार आये। उनके पीछे हाथी आये। जैसे ही घुड़सवार इतनी दूर पर आये, जहाँ कि तीर पहुँच सकता था, वैसे ही तीर छोड़े गए, घोड़ों को एड़ लगाकर आगे बढ़ाया गया और वे कछुए जैसे सैनिक खड़े होकर दौड़ने लगे। तीनों क्रियाएँ एक साथ हुईं।

उसी क्षण भीमदेव ने बाण छोड़ा; इसे देख हज़ारों तीरन्दाज़ों ने भी वैसा ही किया; और सैकड़ों घायल घोड़े या तो कतार में कूदकर अलग हो गए या भूमि पर लोटने लगे। कोट पर खड़े हुए धनुर्धरों में से कितने ही घायल होकर गिर पड़े। परन्तु शेष बचे हुओं ने अपने घोड़ों को जैसे-तैसे सँभालकर अमीर के सवारों को वेध डालने का प्रयास जारी रखा।

घोड़े गड़बड़ाए तो हाथी जमे। खड़े हुए धनुर्धरों को यह सूझ नहीं पड़ा कि उन पर तीर छोड़े जाएँ या नहीं। कछुए घुड़सवार और हाथियों के संरक्षण के बिना ही खाई की ओर आगे बढ़ने लगे।

ख़बर पड़ी तो अमीर उछलते हुए घोड़े पर आगे आया, हुक्म-पर-हुक्म दिये गए और दूसरे घुड़सवार कछुओं के रक्षणार्थ आगे बढ़ आए।

दोनों ओर से तीरों की झड़ी लग गई, परन्तु भीमदेव और उनके चुनीदा धनुर्धरों के निशाने नहीं चूके। किसीको घोड़े का पुट्ठा, किसीको सैनिक का अरक्षित शरीर और किसीको खड़े होते योद्धा की पीठ दिखाई दे ही जाती और देखते-देखते उनमें गुजराती तीर घुस जाते। महाराज इधर-उधर देखते, नायकों को खोज निकालते और प्रत्येक तीर से ऐसे किसी एक को धराशायी बना देते। दूर खड़े हाथी भी उनसे न बच सके। और जिस समय कछुए पास आये उस समय तो उनके और सीढ़ी लेकर आते हुए हाथियों के बीच भारी अन्तर पड़ गया था।

अमीर के एक सेनापति ने यह कठिनाई देखी और कितने ही घुड़सवार सीढ़ियाँ लेकर आगे आये। एक-दो हाथी भी बिलकुल आगे आ लगे। तीरों की वर्षा में भी अनुभवी योद्धा आगे बढ़ आए। थोड़ी-सी सीढ़ियाँ कछुओं को दी।

'कछुओं पर बाण मत छोड़ना, व्यर्थ जाएँगे। घुड़सवारों को ही वेधो,' महाराज ने फिर आज्ञा दी।

अमीर के घुड़सवार भी अब पास आकर तीर छोड़ने लगे और कितने ही पट्टणी धनुर्धर धराशायी हो गए। परन्तु भीमदेव महाराज के बख्तर वाले हज़ारों धनुर्धर कभी इधर तो कभी उधर घूमते रहे। इन सबके बीच महाराज की अथक भुजाएँ अकल्पनीय निशाना मार रही

थीं। कछुओं ने एक हाथ में तख्ते और दूसरे में सीढ़ियाँ लीं और पानी में छलांग मारी।

'विमल, विमल !'

'महाराज, हाज़िर हूँ।'

'पत्थर लाए हो ?'

'जी हाँ।'

'कछुओं को मारना मत, बाण बेकार जाएँगे। रास्ता करो, जगह दो,' महाराज ने आवाज़ लगाई। वीरा के हाथ में धनुष देकर, पास खड़े आदमी से एक बड़ा पत्थर लेकर उन्होंने ताककर निशाना मारा। यह बड़ा पत्थर ज़ोर से निश्चित की हुई जगह पर—कछुए की एक ओर की ढाल पर—गिरा और भयंकर चीख मारकर वह सैनिक पानी में नीचे दब गया। महाराज को देखकर दूसरे सैनिक पत्थर लेकर कछुओं को डुबाने लगे।

बड़ी देर तक यह तुमुल युद्ध चला। बहुत देर तक नये कछुए आकर खाई में समाते रहे। कई बार खाई में कछुओं पर पत्थर का निशाना नहीं बैठता और वे आगे बढ़ने की चेष्टा करते, परन्तु खाई पार करके कोट के पास आते-आते तीरों से बिंध जाते। घुड़सवार कभी-कभी तीर छोड़ते खाई के किनारे तक आते तो कभी तीरों से बिंधकर फिसल पड़ते और कभी विनाशक पत्थरों की इस वर्षा से बचने के लिए दूर हट जाते। ऊपर कोट पर भी सैकड़ों सैनिक बाणों से बिंधे पड़े थे। उनमें कुछ तो घायल होने पर भी तीर छोड़ते थे और कुछ मरते-मरते भी पत्थर फेंककर कछुओं के प्राण लेते थे।

भीमदेव महाराज घड़ी में पैदल, घड़ी में घोड़े पर, इधर-से-उधर घूमकर सैनिकों को आज्ञा देते, पत्थर फेंकते, बाण छोड़ते, 'जय सोमनाथ' की गर्जना से सबके हृदयों को उत्साहित करते। जहाँ उनकी माथे पर बँधी हुई केसरी पाग की जगमगाती कलगी घूमती वहाँ पट्टणी योद्धा नये उत्साह से युद्ध करते। इस कलगी पर मौत की तरह दुश्मन के तीर मँडराते और उसे स्पर्श किये बिना पृथ्वी पर गिर पड़ते। नख से शिख तक उन्होंने सुनहरी बख्तर पहना था। उनकी कमर पर केसरी

कमरबन्द था, जिसमें मणि-जटित तलवार लटक रही थी। छः आदमी भरे हुए तरकश लेकर पीछे दौड़ते थे और उनके अविश्रान्त हाथों के लिए बाण जुटाते थे। हाथ उनका शकुन वाला था; जहाँ उठता वहाँ कोई-न-कोई धराशायी अवश्य होता।

और मन्दिर के शिखर की एक ऊँची अटारी पर गंगा और चौला, भयभीत होकर एक-दूसरे से लिपटी, इस कलगी पर टकटकी लगाए बैठी थीं। 'ओ गया'—'ओ-ओ'—'ओ मेरे बाप,' 'ओ भगवान्' आदि शब्द दोनों के मुख से निकल जाते थे। कलगी दृष्टि से ओझल होती तो चौला घबराकर गंगा की गोद में छिप जाती। कलगी के उछलने के साथ ही उसका हृदय उछलता और बाणावली के बाणों के छूटने के साथ ही उसके पग बैठे-बैठे भी नृत्य करते। उसके प्राण उसकी आँखों द्वारा इस कलगी पर टिके थे। वे कलगी के गिरने के साथ ही निकल जाने को तैयार थे। इतने में पीछे से गुरुदेव आये। कुछ समय से वे भी महाराज का शौर्य देख रहे थे।

'गुरुदेव,' चौला ने नमस्कार करके पूछा, 'महाराज रुद्र के अवतार हैं न?'

गुरुदेव हँसे, 'हाँ बेटा, हैं। इसमें सन्देह क्या है?' और वे त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा करने चले गए।

: ४ :

गुरुदेव जब पूजा करने गये तब उनके हृदय में कुछ शान्ति थी। उन्होंने भीमदेव के शौर्य की बातें तो बहुत-सी सुनी थीं, परन्तु आँखों ने उसे आज ही देखा था। वह ऐसा अद्भुत है, इस बात की उन्हें कल्पना भी नहीं थी। फिर उन्होंने दोनों सेनाओं के बल का अनुमान भी लगाया था। अमीर की सेना का जितना अनुमान लगाया था, उससे वह बहुत बड़ी थी; परन्तु भीमदेव का बल भी जितना समझा गया था, उसकी अपेक्षा कई गुना अधिक था। उन्हें यह स्पष्ट दिखाई दिया कि यह सब भोलानाथ की कृपा थी।

जब वे त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर में गये तब उन्हें अचम्भा हु
किसीने बाहर के दरवाजे के ताले तोड़ डाले थे। यह यह मानक

गये कि यह हरदत्त की करतूत होगी। गर्भद्वार के किवाड़ भी खुले थे। किसीने जान-बूझकर उनकी अवज्ञा की थी।

वे गर्भद्वार से आगे गये तो देखा कि त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा करके और उसके आगे मांस तथा मदिरा का प्रसाद रखकर शिवराशि ध्यान करने बैठे थे। गुरुदेव रुक गए। उनकी आज्ञा का ऐसा अनादर और वह भी उनके पट्टशिष्य द्वारा, इसकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। वे दरवाज़े में खड़े रहे। शिवराशि क्या पागल हो गया था?

वे थोड़ी देर तक कुछ नहीं बोले। कुछ क्षणों में शिवराशि ने आँखें खोलीं और गुरु के ऊपर ऐसी धृष्ट और विकराल दृष्टि डाली जैसी कभी न डाली थी। सर्वज्ञ कुछ-कुछ म्लान परन्तु हँसते मुख से यह देखते रहे। जीवन-भर के गुरु की आज्ञा पालन करने के धर्म को ही जो न माने उसे उपालम्भ कैसे दिया? ये पाशविकता अथवा रोग के चिह्न हैं। इसके लिए या तो दया दिखाई जा सकती है या इसकी सेवा की जा सकती है। ऐसा सोचते हुए वे चुपचाप खड़े रहे।

शिवराशि ने और भी धृष्टता से गुरु की ओर देखा।

'कहिए, आपको क्या कहना है?' उसने गुरुदेव से पूछा।

'कुछ नहीं कहना है।'

'मैंने ये ताले तोड़े हैं। मैंने त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा की है।'

'अच्छा किया, आज मेरी मेहनत बच गई,' गुरुदेव ने शान्त भाव से कहा। गुरु की शान्ति देखकर शिवराशि का क्रोध बढ़ा, 'मैंने कल से आपका गुरुपद छोड़ दिया है।'

'तेरे जैसे शिष्य के लिए मैं योग्य गुरु नहीं हूँ, इस बात को तो मैं कब का समझ गया हूँ।'

'और आज से,' खड़े होकर शिवराशि ने कहा, 'पाशुपत मत का गुरुपद मैंने ले लिया है।'

'गुरुपद लेने से नहीं मिलता, गुरुपद परम्परा से देने से मिलता है।'

पीछे से सिद्धेश्वर हरदत्त और दूसरे दो साधुओं को ले आया और वे सब इस गुरु-शिष्य के संवाद को सुनने लगे। उन्हें देखकर शिवराशि को और जोश आ गया।

'आप मेरे गुरु नहीं, मुझे आपसे यह पद नहीं लेना है। आप पतित हैं; आपने पाशुपत मत के सिद्धान्तों को तोड़ा है; महामाया की विधियों को रोका है।'

'और?'

'आपने महामाया का मन्दिर बन्द किया, उसकी पूजा अधूरी रखी और जिसमें उसने वास किया है उसे अपनी महत्त्वाकांक्षा की सिद्धि के लिए उस भीम को अर्पित कर दिया है।'

'और?'

'आपकी आज्ञा से उस दुष्ट ने महामाया को भ्रष्ट करके इस पुण्य-धाम को घोर नरक बना दिया है। बूढ़े तुमको एक पल भी जीने का अधिकार नहीं है।' ज्योंही गुरुदेव चुप होते थे, शिवराशि का पारा चढ़ जाता था और जैसे कोई भयकर दुर्वासा शाप देता है वैसा ही तेज उसके मुख पर छा रहा था।

'बेटा, जिस ढंग से तू बात करता जाता है, उसे देखकर मैं भी यह कहता हूँ कि मुझे पल-भर भी जीने का अधिकार नहीं, परन्तु जब तक जी रहा हूँ तब तक तो पैंतीस कोटि देवता भी मेरे पद को नहीं ले सकते।'

'बुड्ढे, तुम अपना गुरुपद तो न जाने कब का सदा के लिए खो चुके हो।'

'जब मैं तेरी तरह तपश्चर्या का गर्व और ज्ञान का आडम्बर करूँगा तब मैं गुरुपद खोऊँगा।'

'तुमने खोया है, खोया है और मैं इस पद का उत्तराधिकारी हूँ। जाओ, अब तुम्हारा राज्य-काल गया।' शिवराशि ने कहा।

'मूर्ख, यदि मैंने इस पद को खो भी दिया हो तो इसका उत्तराधिकारी खम्भात में बैठा है—गगनराशि। जाते-जाते मैंने चार राजाओं के सम्मुख उसका पट्टाभिषेक किया है और उसे भगवान् लकुलेश की पादुकाएँ तथा बाण दिये हैं।'

इस बुड्ढे ने उसे छकाया। शिवराशि पल-भर के लिए अचम्भे में पड़ गया और बड़ी देर तक वह कुछ न बोल सका।

वराशि, पाशुपत मत का गुरुपद तो समस्त विश्व का गुरुपद है।
न, तप और भगवद्भक्ति है वहीं उसका अधिष्ठाता पद है।
भमान से वासना को ईश्वरेच्छा समझने से नहीं मिलता।'
बुड्ढे, बुड्ढे !' शिवराशि ने कहा, 'मुझे तुम्हारा पद नहीं चाहिए।
रा भीमदेव महामाया के कोप का भाजन बना हुआ है और तुम्हारे
तुम्हारे सिर पर मँडरा रही है।'
'मैं भले ही मर जाऊँ, पर पाशुपत मत को तो गगनराशि तेरे जै
बचा लेगा,' कहकर गुरुदेव धीमे-धीमे त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर
ले गए।

जब वे चलने लगे तो हरदत्त ने उन पर थूक दिया। गुरुदेव
कर पीछे मुड़े और बोले, 'क्या तू यह चाहता है कि मैं क्रोध में आ
जाऊँ ? पागल, तुझ जैसे बच्चों को मैं—तेरा गुरु—ही न चलाऊँगा तो
और कौन चलाएगा ?' और वे इन सबको दयामयी दृष्टि से देखते हुए
खिन्न हृदय से बाहर चले गए। हरदत्त और दूसरे साधु उन्हें बुरा-भला
कह रहे थे।

: ६ :

जूनागढ़ी दरवाज़े पर मामला कुछ अधिक गम्भीर था। आबू के
युवक परमार ने भीमदेव महाराज की आज्ञा के अनुसार शुरू में तो
उसकी रक्षा करते हुए घुड़सवारों को तीरों से बेधा; लेकिन यहाँ बख्तर-
वाले वीर कम थे, इसलिए दुश्मन के तीरों ने उनका कचूमर निकालना
शुरू कर दिया था। फिर पत्थर इकट्ठा करने की जो सूझ भीमदेव काम
में लाए थे वह यहाँ किसी ने काम में नहीं लाई थी। परिणाम यह हुआ
कि दुश्मन मनमाने ढंग से आगे बढ़ सके। कछुए समय पर खाई
तैरने लगे, पीछे वाले घुड़सवार कोट के तीरन्दाज़ों को अपने साथ
में भुलाए रख सके और हाथीवाले आगे बढ़कर कछुओं को समय
सीढ़ियाँ दे सके। घुटनों पड़े धनुर्धरों ने कछुओं को मारने का
प्रयत्न किया, परन्तु उनकी धातु की लम्बी और चौरस ढाल पर
अनेक बाण व्यर्थ हो गए।

परमार ने सैनिकों को प्रेरणा देने और अपने शौर्य की परीक्

में तनिक भी कसर न रखी। उसके अधीन सैनिकों ने भी अथक परिश्रम किया और बहुतों ने तो भगवान् की सेवा में प्राण भी दे दिए। परन्तु इतना होते हुए भी कछुए खाई पार करके इस ओर सीढ़ियाँ लगाने लगे। घुड़सवार पानी में उतरकर कछुओं की मदद को दौड़े। हाथी उस किनारे पर आ लगे और उनके ऊपर खड़े धनुर्धर कोट पर खड़े सैनिकों में भगदड़ मचाने लगे। सौभाग्य से दुश्मन ने मुख्य हमला कोट के बीच के दरवाज़े पर किया था और अमीर तथा उसके सेनापतियों का ध्यान उसी पर था, इसलिए जूनागढ़ी दरवाजे पर मिली हुई सुविधा से वे लाभ न उठा सके।

'जा, जा,' परमार ने विश्वासी नायक से कहा, 'महाराज और राय से कह आ कि आदमी भेजें, नहीं तो जूनागढ़ी दरवाज़ा दोपहर के बाद फतह कर लिया जाएगा।'

'अच्छा बापू,' कहकर नायक घोड़ा दौड़ाता महाराज और राय से सन्देश कहने गया।

जब भीमदेव महाराज को यह खबर मिली तब दोनों दलों ने बीच के दरवाज़े पर बैठकर खेल-सा खेलना शुरू कर दिया था। आक्रमण का ज़ोर कम हो गया था। पट्टणियों की विनाशकता भी कम हो गई थी।

नये घुड़सवारों का भरती होना बन्द हो गया। नये कछुए आते हुए रुके। तीन सौ के लगभग खाई में हलचल मचा रहे थे और ऊपर से पट्टणी पत्थरों के प्रहार से उनके प्राण ले रहे थे। परन्तु अभी तक कोट पर सीढ़ी लगाने का सौभाग्य किसीको नहीं मिला था।

'विमल, तू यहाँ का ध्यान रखना, मैं जूनागढ़ी दरवाजे पर जाता हूँ, वहाँ परमार कठिनाई में है। अपने आधे बाणावली मेरे साथ चलें, लेकिन दुश्मन को बिना खबर दिये।' यह बताने के लिए कि वे स्वयं यहाँ हैं उन्होंने अपनी पाग विमल के सिर पर रखी और उसका टोप स्वयं पहना तथा परमार की सहायता के लिए दौड़े।

राय ने भी द्वारका दरवाज़े पर रंग बाँध रखा था। उसकी साव-धानी से और उसके सोरठी तीरन्दाज़ों की विनाशक निशानेबाज़ी से

की फ़ौज पार न पा सकी थी। इसलिए जैसे ही उसे परमार का
मिला वैसे ही वह तीन सौ आदमी लेकर जूनागढ़ी दरवाज़े पर
ा।

वहाँ की स्थिति गम्भीर थी। पाँच सौ तैरते घुड़सवारों ने मिलकर
रचा था। उन्होंने एक प्रकार की जीवित नाव बना रखी थी। उन
कछुए चढ़े हुए थे और सीढ़ी लगाने का प्रयत्न कर रहे थे। खाई के
स पार खड़े हुए हाथियों से ऐसे वाण छूटते थे कि गढ़ पर के धनुर्धर
ड़ी कठिनाई से उनसे वच पाते या उनका प्रतिरोध कर सकते। ऊपर
तीरों का जो लेन-देन हो रहा था उसकी परवाह किये विना उन अभ्यस्त
कछुओं और घुड़सवारों ने तख्ते बाँधकर वेड़े वना लिए और खाई में
देखते-देखते पुल तैयार हो गया। नये कछुए आये और उन्होंने वेड़ों पर
होकर जूनागढ़ी दरवाज़े के कुन्दों में रस्से डालकर वेड़ों को मजबूत कर
दिया। सीढ़ियाँ लगाई गई और उनके ऊपर से कछुए ढालें नीची किये
हुए ऊपर चढ़ने लगे। दुश्मन की सेना में हर्ष का संचार हो गया; कोट
पर तीरन्दाज़ भारी संख्या में गिरने लगे।

परमार के शौर्य की भी पराकाष्ठा हो गई। उसने वेड़ों को डुवाने
का पूरा प्रयत्न किया और अकेले कितने ही कछुओं को मारा, परन्तु
उसकी क्षीण होती हुई सेना पर्याप्त न हो सकी। थोड़ी-थोड़ी देर वाद
वह 'भीमदेव महाराज कहाँ है?' ऐसा पूछता था। उसकी केवल इतनी-
सी इच्छा थी कि जब तक उसका मित्र और आदर्श आ पहुँचे तब तक
वह दरवाज़े को वचाये रहे। दरवाज़े पर खड़े-खड़े उसने कई-एक कछु
और सवार मारे। लेकिन जहाँ वह एक को मारता वहीं चार खड़े
जाते। अन्त में वह एक मोटी गदा लेकर कँगूरे पर खड़ा हुआ। उस
वख्तर भी दोपहर के वाद के सूरज के तेज में जगमगाने लगा। उ
सिर पर तीरों की वर्षा हो रही थी, परन्तु वह कँगूरे की चोटी पर
सीढ़ी पर चढ़ते कछुओं को ढेर करने में लगा था।

परमार के शौर्य ने उसके सैनिकों में प्राणों का संचार किया।
दरवाज़े पर खड़े होकर उसकी मदद करने लगे। उस ओर हाथ
खड़े तीरन्दाज़ों ने भी वहीं तीर वरसाये। गढ़ की समस्त सीमा

अपेक्षा वास्तविक युद्ध तो इस दरवाज़े के ऊपर ही हुआ ।

घोर संकट-काल था । सौ कछुए सीढ़ी पर चढ़ रहे थे । ऊपर दरवाज़े की चोटी पर पच्चीस के लगभग वख्तर वाले योद्धाओं के बीच परमार जूझ रहा था और सामने से दुश्मन के तीर आ रहे थे । यदि एक कछुआ परमार के नीचे गडवडाता तो उनका भी कोई साथी बाण से विंधकर खाई में जा गिरता । 'भीमदेव महाराज, आओ, आओ ।'

परमार को कुछ न सूझ पड़ा । एक राक्षसी काकेसियन योद्धा सीढ़ी पर चढ़ता हुआ और ढाल से अपने शरीर को बचाता हुआ ऊपर आ लगा । एक ही क्षण की देर थी । उस योद्धा के हाथ कोट पर थे । एक ही छलाँग में वह ऊपर आ गया । नीचे दूसरा बेडा तेजी से बाँधा जा रहा था । दूसरी सीढ़ियाँ बाँधने की तैयारियाँ हो रही थीं । दूसरे कछुए ऐसी सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे । भयकर परिस्थिति थी । परमार ने 'जय सोमनाथ' कहकर गर्जना की और उसने कोट के ऊपर पैर रखकर चढने वाले योद्धा को फेंकने का प्रयत्न किया । पीछे से आने वाले तीन कछुओं ने पहले को बचाने का प्रयत्न किया ।

सहसा एक सनसनाता हुआ तीर आया और परमार के गले में लगा । उसी क्षण परमार को एक युक्ति सूझी और उसने अपने को मृत्यु के मुख मे डाल दिया । उसने उस प्रचण्ड योद्धा को अपनी बाँहों मे भरकर और 'जय महाराज' की अन्तिम आवाज लगाकर खाई में गिरने के लिए जोर लगाया । इस अकल्पनीय बल के आ जाने से यवन योद्धा का पैर चूक गया । एक निमिष दोनों हवा मे अधर लटकते रहे । और गिरे—और गिरते हुए परमार ने सीढ़ी के एक डण्डे मे पैर फँसा दिया । आँख खुलने से पहले ही क्या देखते हैं कि एक-दूसरे की बाँहों में लिपटे परमार और यवन योद्धा तथा साथ मे अनेक कछुओं वाली पूरी सीढ़ी पानी मे डूब रही है । बेडा हिल उठा । कछुए पानी मे गिर पड़े । उनके अरक्षित शरीरों पर ऊपर से बाणों की वर्षा होने लगी । परमार ने प्राणों की बाज़ी लगाकर जूनागढ़ी दरवाज़े की रक्षा की ।

: ८ :

परमार गिरा और सैनिकों मे हाहाकार मच गया । उसी क्षण

भीमदेव महाराज और उनके वाणावली आ पहुँचे। महाराज ने परमार को गिरते देखा, सीढ़ी सरकती देखी, नीचे पानी में कछुओं, घोड़ों और बेड़ों के भँवर देखे। परमार उनका शिष्य था—पुत्र से भी अधिक प्रिय और मित्र से अधिक विश्वसनीय। उन्हीं की इच्छा से वह वृद्ध माता-पिता और नव-परिणीता वधू को छोड़कर युद्ध में लड़ने आया था। 'भीमदेव', 'भीमदेव' कहता वह मृत्यु के मुख में पड़ा था—उनकी खातिर, उनके पाटण के लिए, उनके इष्टदेव के लिए। महाराज सब-कुछ भूल गए। केवल स्नेही त्रिलोचनपाल का स्नेह ही उन्हें याद रहा। उन्होंने नीचे देखा। घायल परमार अकेला बाघ की तरह लड़ रहा था। 'परमार, हिम्मत रख,' कहकर महाराज ने एक गर्जना की और छलाँग मारकर खाई में उस जगह जा पहुँचे, जहाँ परमार सौ योद्धाओं के बीच पानी में लड़ रहा था। इस धृष्टता से सबके हृदय काँपने लगे, परन्तु पट्टणी वाणावली स्वामी की सेवा में मृत्यु को खेल समझते थे। एक के बाद एक करके पच्चीस वीर महाराज के पीछे कूद पड़े; शेष सामने के किनारे पर हाथियों और वाणावलियों को बेधने के लिए रुक गए। नीचे खाई में भयानक युद्ध हुआ। भीमदेव महाराज ने कूदते ही परमार को मारने वाले योद्धा का सिर काट दिया और पास ही बिना सवार के तैरने वाले घोड़े पर चढ़ गए।

'परमार, घोड़े पर चढ़!'

'महाराज, चढ़ता हूँ,' परमार ने कहा। और अँधेरा छाई हुई आँखों से वह घोड़ा खोजने लगा। यवन योद्धा घबराए। पल-पल में ऊपर से एक योद्धा कूदता और किसी एक को डुबो देता। पानी में भी गुत्थम-गुत्था होने लगी। खंजर और तलवारें चमकने लगीं। परन्तु पट्टणी पच्चीस थे और दुश्मन की संख्या अनेक गुनी थी।

राय आये और भीमदेव महाराज का अप्रतिम साहस देखकर उन्हें भी जोश आया। वे चतुर थे। वे इस बात को जानते थे कि युद्ध की कला में अकल्पनीय आक्रमण ही अकल्पनीय विजय दिलाता है। उन्होंने भी चतुराई की हद कर दी। स्वयं अपने योद्धाओं को पीछे बुलाकर वे कोट की सीढ़ियाँ उतरकर नीचे दरवाजे पर पहुँचे और पल-भर में

हवाँ प्रकरण

उस रात को

: १ :

भीमदेव महाराज वीरा को लेकर हर ओर दृष्टि डालने लगे । मुख्य द्वार पर दुश्मन पीछे लौट रहे थे और धीरे-धीरे हाथी पर बैठने वाले दुश्मन के धनुर्धर भी पीछे हट रहे थे । घुड़सवार तीर छोड़ रहे थे और पट्टणी उनका जवाब दे रहे थे ।

भीमदेव महाराज ने उस मोरचे को मज़बूत बनाकर विमल मन्त्री को सौंपा और स्वयं द्वारिका दरवाज़े पर पहुँचे । इसके सामने खाई और समुद्र का संयोग था, इसलिए इसकी रक्षा करना सरल था । युद्ध धीरे-धीरे चल रहा था और राय खड़े-खड़े गम्भीर विचार कर रहे थे । महाराज जाकर उनसे लिपट गए ।

'राय, धन्य हैं आप । आज आपने मुझे जीवनदान दिया ।' उन्होंने कहा ।

'इसमें क्या है ? आपको बचाने में मैंने तो अपने कर्तव्य का ही पालन किया है,' राय रत्नादित्य ने कहा ।

'आपने दरवाज़ा खोलने में बड़ी हिम्मत से काम लिया । दूसरा कोई होता तो काँप जाता ।'

'लेकिन इतने ऊँचे कोट से कूदने की हिम्मत मुझमें नहीं थी,' ने हँसकर जवाब दिया और दोनों वीर परस्पर फिर मिले ।

'राय, ये लोग यहाँ इस प्रकार क्यों खेलते रहते हैं ?' महाराज ने पूछा ।

'मैं भी यही सोच रहा हूँ । इनकी नीयत बुरी जान पड़ती है

ने कहा और विचार करते-करते मूँछों पर ताव देने लगे, 'मुझे लगता है कि संध्या होने पर यहाँ थोड़े-बहुत आदमी रखने पड़ेंगे।'

'अच्छी बात है; मैं अभी थोड़े-से आदमी भेज देता हूँ।'

'महाराज, आप तो सवेरे से थक गए हैं और मुझे विशेष श्रम करना नहीं पड़ा है। अभी सब ओर शान्ति भी है, इससे जरा थकान उतार लें तो अच्छा हो। न जाने रात को क्या हो?'

भीमदेव महाराज कोट से नीचे उतरे तो देखा कि एक ओर कितने ही साधु मरे हुए सैनिकों के शवों को इकट्ठा कर रहे थे। गुरुदेव अन्तर-कोट के मन्दिरों में घूम रहे थे और घायल सैनिकों की देख-भाल कर रहे थे। जिस गंग सर्वज्ञ की चरण-रज को राजा अपने मस्तक पर चढ़ाते थे वे ही आज एक सामान्य वैद्य की भाँति पीड़ितों का दुःख दूर करने में लगे थे। दीपा कोठारी जो कोई आता था उसे खिलाने-पिलाने में लगा था। इन समस्त व्यवस्था को देखते, किसीको कुछ और किसीको कुछ प्रोत्साहन देते और बीच में मिलने वालों का अभिनन्दन स्वीकार करते महाराज अपने डेरे की ओर आये।

परकोटे में मन्दिर के आगे हरदत्त मिला। वह भीमदेव महाराज के सामने खड़ा रहा और माथे पर चिमटा रखकर बोला, 'तेरे सिर पर मौत घूम रही है, महामाया को भ्रष्ट करने वाले!' भीमदेव महाराज ने पहले तो तलवार खींची, परन्तु फिर नि शस्त्र बाबा को देखकर हँसते हुए चले गए। हरदत्त अपने रास्ते चला गया।

जब महाराज अपने डेरे पर आये तो उनके पगों में स्फूर्ति थी। अन्दर आकर उन्होंने चारों ओर आशा-भरी दृष्टि डाली। वीरा समझ गया, 'महाराज, यह पागल लड़की है। वह अटारी है न? उसी में माँ के साथ बैठी सारे दिन आपको देखा करती है।'

'वीरा, यदि सारा संसार ही ऐसा पागल हो तो कितना अच्छा हो? मैंने उसे एक बार अपनी ओर देखते हुए देखा था।'

'अब तो उसे आपके अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं,' वीरा ने मजाक किया।

'जरा ठहर तो सही, तुझे भी नहीं सूझेगा।'

द्रहवाँ प्रकरण

उस रात को

: १ :

भीमदेव महाराज वीरा को लेकर हर ओर दृष्टि डालने लगे। मुख्य द्वार पर दुश्मन पीछे लौट रहे थे और धीरे-धीरे हाथी पर बैठने वाले दुश्मन के धनुर्धर भी पीछे हट रहे थे। घुड़सवार तीर छोड़ रहे थे और पट्टणी उनका जवाब दे रहे थे।

भीमदेव महाराज ने उस मोरचे को मजबूत बनाकर विमल मन्त्री को सौंपा और स्वयं द्वारिका दरवाज़े पर पहुँचे। इसके सामने खाई और समुद्र का संयोग था, इसलिए इसकी रक्षा करना सरल था। युद्ध धीरे-धीरे चल रहा था और राय खड़े-खड़े गम्भीर विचार कर रहे थे। महाराज जाकर उनसे लिपट गए।

'राय, धन्य हैं आप। आज आपने मुझे जीवनदान दिया।' उन्होंने कहा।

'इसमें क्या है? आपको बचाने में मैंने तो अपने कर्तव्य का ही पालन किया है,' राय रत्नादित्य ने कहा।

'आपने दरवाज़ा खोलने में बड़ी हिम्मत से काम लिया। दूसरा कोई होता तो काँप जाता।'

'लेकिन इतने ऊँचे कोट से कूदने की हिम्मत मुझमें नहीं थी,' राय ने हँसकर जवाब दिया और दोनों वीर परस्पर फिर मिले।

'राय, ये लोग यहाँ इस प्रकार क्यों खेलते रहते हैं?' महाराज ने पूछा।

'मैं भी यही सोच रहा हूँ। इनकी नीयत बुरी जान पड़ती है,' रा

ने कहा और विचार करते-करते मूँछों पर ताव देने लगे, 'मुझे लगता है कि संध्या होने पर यहाँ थोड़े-बहुत आदमी रखने पड़ेंगे।'

'अच्छी बात है; मैं अभी थोड़े-से आदमी भेज देता हूँ।'

'महाराज, आप तो सवेरे से थक गए हैं और मुझे विशेष श्रम करना नहीं पड़ा है। अभी सब ओर शान्ति भी है, इससे जरा थकान उतार लें तो अच्छा हो। न जाने रात को क्या हो?'

भीमदेव महाराज कोट से नीचे उतरे तो देखा कि एक ओर कितने ही साधु मरे हुए सैनिकों के शवों को इकट्ठा कर रहे थे। गुरुदेव अन्तर-कोट के मन्दिरों में घूम रहे थे और घायल सैनिकों की देख-भाल कर रहे थे। जिस गंग सर्वज्ञ की चरण-रज को राजा अपने मस्तक पर चढ़ाते थे वे ही आज एक सामान्य वैद्य की भाँति पीड़ितों का दुःख दूर करने में लगे थे। दीपा कोठारी जो कोई आता था उसे खिलाने-पिलाने में लगा था। इस समस्त व्यवस्था को देखते, किसीको कुछ और किसीको कुछ प्रोत्साहन देते और बीच में मिलने वालों का अभिनन्दन स्वीकार करते महाराज अपने डेरे की ओर आये।

परकोटे में मन्दिर के आगे हरदत्त मिला। वह भीमदेव महाराज के सामने खड़ा रहा और माथे पर चिमटा रखकर बोला, 'तेरे सिर पर मौत घूम रही है, महामाया को भ्रष्ट करने वाले!' भीमदेव महाराज ने पहले तो तलवार खींची, परन्तु फिर निःशस्त्र बाबा को देखकर हँसते हुए चले गए। हरदत्त अपने रास्ते चला गया।

जब महाराज अपने डेरे पर आते तो उनके पगों में स्फूर्ति थी। अन्दर आकर उन्होंने चारों ओर आशा-भरी दृष्टि डाली। वीरा समझ गया, 'महाराज, यह पागल लड़की है। वह अटारी है न? उसी में माँ के साथ बैठी सारे दिन आपको देखा करती है।'

'वीरा, यदि सारा संसार ही ऐसा पागल हो तो कितना अच्छा हो? मैंने उसे एक बार अपनी ओर देखते हुए देखा था।'

'अब तो उसे आपके अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं,' वीरा ने मजाक किया।

'जरा ठहर तो सही, तुझे भी नहीं सूझेगा।'

महाराज बख्तर उतारकर नहाए, खाया और सो गए। नींद आने से पहले कोई इस प्रकार दौड़ा जैसे हरिण दौड़ता है। उन्होंने आँखें खोलकर देखा।

गुलाबी पैर दौड़ रहे थे; उड़ते हुए वस्त्रों में एक छोटा-सा सुन्दर शरीर उछल रहा था। बिखरे और खुले केशों में हाँपता हुआ लाल मुख। यही मुख कह रहा था, 'माँ, माँ! आज तो महाराज ने हद कर दी।'

भीमदेव हँसे और धीमे-से बोले, 'अभी तो हद करना बाकी है।'

चौला ने महाराज को देखा और वह शरमा गई। अपने वस्त्र सँभालकर नीचे देखती हुई वह हँसती-लजाती चली गई। थके हुए भीमदेव करवट बदलकर सो गए और दौड़ते गुलाबी पैर, हाँपता मुख और सुमधुर आँखों का सलज्ज सत्कार उनके स्वप्न में निरन्तर आते-जाते रहे।

: २ :

महाराज पहर-भर ही सोए होंगे कि एक भारी कोलाहल ने उनको जगा दिया। वे एकदम उठे और शस्त्र लेकर बाहर छत पर आये। सन्ध्या होने को आ गई थी। सैनिकों के टोल-के-टोल उछलते-कूदते और नाचते-गाते तथा 'जय सोमनाथ' का उच्चारण करते उनके डेरे की ओर आ रहे थे। सबसे आगे गुरुदेव, राय और दद्दा चालुक्य मशालचियों के साथ आ रहे थे। विमल मन्त्री सबसे आगे वाहवाही लूटने के लिए दौड़ रहा था। महाराज ने छत से नज़र डाली। उन्होंने देखा कि बहुत दूर गुरुदेव के डेरे के उस पार गंगा और चौला झुक-झुककर अभिनन्दनार्थ आने वाले इस जन-समूह को देख रही हैं।

'विमल, क्या हुआ?' महाराज ने हँसते हुए कहा।

'यवन सेना पीछे हट गई।'

'हैं! सच! हमला करना बन्द कर दिया?'

'हमला क्या, तीनों ओर समस्त सेना ठीक आधा योजन पीछे हट गई। आप जीते।'

जैसे-तैसे शस्त्र-सज्जित होकर महाराज नीचे उतरे और समस्त

सेना ने 'भीमदेव महाराज की जय' की पुकारों से उनका अभिनन्दन किया।

महाराज ने गुरुदेव को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और कहा, 'गुरुदेव, आपका आशीर्वाद ही हमारी शक्ति है।'

'वत्स चिरजीव हो, आज भोलानाथ की ही कृपा है। मैं तो मात्र उनका दास हूँ। परन्तु तेरे शौर्य ने तो अनन्तकाल को दीप्तिमान बना दिया है। धन्य है। उठ, वत्स, मुझसे मिल।' कहकर गुरुदेव महाराज से मिले और उसके बाद राय, दद्दा, विमल और सेनापति मिले। 'जय सोमनाथ' और 'भीमदेव महाराज की जय' बोली जाती रही। सैनिकों ने शंख और भेरी तथा मृदंग और नगाड़ों में से जो मन में आया सो बजाना शुरू कर दिया। कुछ तो हर्षातिरेक में रास ही रच बैठे।

'महाराज, सन्ध्या की आरती का समय है। सर्वयशदाता भगवान् के चरणों में जाना चाहिए।' और सब हँसते-खेलते, नाचते-कूदते भगवान् के मन्दिर में गये। सारे परकोटे में सेना फैल गई। गुरुदेव ने ध्यान किया और भगवान् की आरती की। थके होने पर भी सारी भीड़ ने उसे हर्षाभिभूत स्वर से गाया। गुरुदेव ने आरती को नन्दी के आगे रखा और आशीर्वचन कहे। सब लोग शान्ति से सुनते रहे।

'वत्स, भगवान् की रक्षा के लिए लड़े हुए तुम सभी योद्धाओं को मेरे अनेक आशीष। तुम शत शरद् जियो और जन्म का नाश करके इस लोक में यश और परलोक में कैलासवास प्राप्त करो। महाराज, तुम्हारा राज्य अमर हो। यवनों का नाश करके से तुम्हें जो कीर्ति मिले वह यावच्चन्द्रदिवाकरौ वीरों का पथ-प्रदर्शन करे। शत शरद् जियो, महाराजाधिराज परम भट्टारक श्री भीमदेव चालुक्य!' और क्षणभर के लिए अभग शान्ति व्याप्त हो गई।

एक अँधेरे खम्भे के पीछे से एक जटाधारी, ऊँची और भयानक आकृति आगे बढ़ी। जहाँ गुरुदेव खड़े थे वहाँ से थोड़ी दूर, जैसे साक्षात् शंकर ही प्रकट हुए हों ऐसे, वह आकृति विकराल गुरुदेव की ओर बढ़के भयंकर आवाज में इस प्रकार बोली जिससे कि सब सुन सकें।

'धर्मद्रोही, तेरे अभिमान ने [illegible] के आधार हुए, [illegible]

हामाया को भ्रष्ट करने वाले भीम ! तू और धर्म के लिए कलंक-स्वरूप ारा गुरु दोनों ही मरोगे । और जहाँ तुमने अपनी अनीति के कृत्य किये हैं वहाँ गिद्ध उड़ेंगे और कुत्ते रोयेंगे ।' यह प्रौढ़, भयानक और कम्पित करने वाली आवाज़ सुनाई दी और एक हज़ार योद्धा तलवार निकाल-कर इस बोलने वाले के टुकड़े करने के लिए तत्पर हो गए । भीमदेव ने तलवार निकाली । राय ने कटार खींची । दद्दा थरथराता हुआ आँखों पर हाथ धरे बैठ गया । कोलाहल और धमाचौकड़ी मच गई ।

गुरुदेव आगे आये और एक भव्य तथा अजेय अभिनय से भीमदेव और राय को बिठा दिया । 'वीरो, वीरो, मेरे वीरो—' उन्होंने बोलना शुरू किया और मशाल की रोशनी में श्वेत दाढ़ी और त्रिपुण्ड से तेजस्वी बने हुए इस वृद्ध के अभेद्य गौरव का प्रभाव पड़ा, और 'शी-शी, सुनो, चुप रहो' की आवाज़ें उत्तरोत्तर मन्द होती हुई शान्त हो गईं ।

'—मेरे वीरो ! तपश्चर्या और इस युद्ध की तैयारी के बोझ से मेरे शिष्य शिवराशि का मस्तिष्क विकृत हो गया है । इसके कहने-सुनने क विचार मत करना । क्षमा तुम्हारे जैसे वीरों का भूषण है ।'

इस प्रकार कहकर वे शिवराशि के पास आये । उस समय ऐ प्रतीत होता था कि उनमें से एक तो भयंकर, उग्र जटा और कम्ब धारी रुद्र है और दूसरा खुले सफ़ेद बालों और दाढ़ी वाला सौम्य, द और भोला शम्भु है—दोनों ही लम्बे और तपस्वी; एक अस्वस्थ आकुल होने पर भी कठोर; दूसरा शान्त, स्वस्थ और दया की थोड़ी देर गुरु-शिष्य ने एक-दूसरे की ओर देखा और स्नेहमयी की भाँति गुरुदेव की आवाज़ सुनाई दी, 'शिवराशि, जो संयम है वह अधोगति को प्राप्त होता है । चल, तेरी स्वस्थता तेरे जाती रही है । तू बीमार है ।'

शिवराशि ने बिना बोले ही होंठ पीसे और व्यर्थ ही कुछ प्रयत्न किया ।

'चल बेटा, चल,' गुरुदेव ने प्रेम से कहा । शिवराशि ने एक प्रचण्ड ज्वाला उठी, उसका गला रुँधा और उसके सि चिनगारियाँ उड़ने लगीं । उसकी आँखें चक्कर खाने ल

मन में आया कि इस परिचित वृद्ध के मुख पर एक तमाचा मा
परन्तु हाथ ने उसका कहना नहीं माना।

'चल बेटा, चल,' जैसे सांप को मन्त्र से वश में करते हैं वैसे
गुरुदेव ने कहा। 'बेटा चल,' इन शब्दों में कुछ अधिकार की ध्व
थी। शिवराशि ने एक बार प्रयत्न किया, परन्तु वर्षों की आदत औ
इस सौम्य तथा स्नेहपूर्ण आवाज़ की मोहिनी से वह बच न सका। उस
चारों ओर उग्र और शस्त्र-सज्जित योद्धाओं को देखा। उसने फिर से
गुरु की निर्भय आंखों को देखा और अनुभव किया कि यह योजना व्यर्थ
ही नहीं की गई है।

'चल,' कहकर गुरुदेव ने उसके कन्धे पर हाथ रखा और शिवराशि
भीतर से कुछ-न-कुछ करने के विचारों में डूबा पालतू जानवर की भांति
पीछे-पीछे चल दिया।

दोनों अदृष्ट हो गए और राय की 'भीमदेव महाराज की जय' की
गर्जना ने मौन भंग कर दिया। सब स्वप्न में जागे हुए व्यक्ति की भांति
बोलने लगे। घोषणा हुई और मृदंग तथा शंख की ध्वनि के साथ सबने
आज्ञा ली।

'मेरे वीरो, प्रसन्न होकर न बैठना। अभी हमें अपने कैलाशवासी
वीरों का दाह-संस्कार करना है। पीछे खा-पीकर सबको अपनी-अपनी
जगह तैयार रहना है। इस बात को कौन कह सकता है कि दुश्मन के
क्या-क्या प्रपंच हो सकते हैं?'

और वहां से चलकर सबने द्वारिका दरवाज़े पर अपने साथियों का
दाह-संस्कार किया। तीन हजार दो सौ वीरों ने वीरगति पाई थी।
लगभग डेढ़ हजार दूसरे वीर घायल पड़े थे। सबको सन्तोष इतना ही
कि एक-एक गुजराती ने कम-से-कम पांच-पांच, सात-सात यवनों को
था।

रात को भीमदेव महाराज और राय फिर कोट पर चक्कर लगा
नीचे की सारी व्यवस्था देख आए और आगामी कल की तैयारी
देखकर अपने डेरे की ओर चले आए।

'महाराज,' राय ने कहा, 'मैं कुछ देर आराम करके फिर आता हूं।

यह अमीर पीछे हटा है, इसमें कुछ चाल जान पड़ती है।'

'अच्छा, आवश्यकता पड़े तो मुझे जगा लेना,' भीमदेव महाराज ने कहा।

: ३ :

जब भीमदेव महाराज अपने डेरे पर गये तब उनके कान में स्वर्गीय संगीत गूंज रहा था। उन्होंने अप्रतिम शौर्य दिखाया था; दावानल के समान अमीर को पीछे हटाया था; सेना का सत्कार और अमर कीर्ति प्राप्त की थी। अब बाणावली भीम का नाम कुन्ती-पुत्र भीम के साथ विश्व में गिना जाएगा। भगवान् भोलानाथ द्वारा प्रदत्त शक्ति की सफलता की साधना से उन्होंने स्वर्ग में भी स्थान बना लिया। साथ ही पर्वतों में बहती स्रोतास्विनी के समान वह नर्तकी, जो कल्लोल कर रही थी, आनन्द मना रही थी और उनसे मिलने को उत्सुक थी, अपने उछलते हुए अंगों की बेचैनी से और भी आकर्षक बनकर, उनसे मिलने दौड़ रही होगी। उसका हर्षपूर्ण मस्तिष्क चौला का विचार करने बैठा। वह गुरुदेव की कन्या कहलाती और अपने को पार्वती मानती थी। विचित्र बालिका थी। उसके पृथ्वी पर पैर टिकते नहीं, जगत् का जंजाल उसे स्पर्श करता नहीं। वह जैसे मन्दिर में नाचती थी वैसे ही पल-पल में अपूर्व होने वाली समस्त जीवन की छटा से नाचती थी। वह अनुभव के पाषाणों पर से नाचती-नाचती इस प्रकार जा रही थी जैसे वह चन्द्रिका-मण्डित निर्मल जल की एक छोटी-सी लहर हो। उसके हास्य में, अश्रु में और भय में विचार न था। केवल सरसता के सत्व के समान जीने और भोग करने की लालसा थी।

मूर्तता थी। वह चन्द्र के प्रकाश, पुष्पों की सुगन्ध और जल-तरंगों के नृत्य की बनी थी। उसके साथ तो पृथ्वी से बहुत दूर, अगाध समुद्रों में, हिमाच्छादित गिरिवरों में, विशाल व्योम में विहार किया जा सकता था। उसके प्राण पार्थिव बन्धनों को तोड एक अद्‌भुत निरंकुशता मे उड़ने थे। उसकी दृष्टि से उसके प्राण पल-पल निष्कलंक सरसता से पूर्ण होकर नया ही रूप ले रहे थे और उनकी शक्ति अपार तथा उनका उल्लास महस्रधा होता जाता था।

ऐसे-ऐसे विचारों में डूबे वह डेरे पर आये, शस्त्र उतारे, फिर से नामा और छत पर गये। कृष्ण-पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा आकाश मे उदय हुआ था। क्षण-क्षण मे चारो ओर होती आवाज़ धीमी पड़ रही थी और शान्ति रक्तरंजित दिवस को भुलवा रही थी। महाराज अधीर इधर-मे-उधर चक्कर लगा रहे थे और थोड़ी-थोड़ी देर मे कान लगाकर चौला की राह देख रहे थे।

परन्तु चौला की पगध्वनि कहाँ से आती? वह छप्पर के नीचे, अँधेरे कोने में किमी अधीर होते महाराज को हँसती आँखों से देख रही थी।

दिन-भर उसके प्राण थिरकते रहते थे। मन्दिर के शिखर की अटारी ही कैलाश थी; महाराज की पीली पाग ही पीले वालों की जटा थी। उनकी कलगी ही चन्द्र थी। उसकी दृष्टि से पाटणपति भीम युद्ध में लड़ने नहीं आये थे, वरन् स्वयं भगवान् शम्भु ही त्रिपुरासुर के साथ युद्ध मे उतरे थे। स्वयं ब्रह्मा गंग सर्वज्ञ के रूप मे उनके सारथी बने थे। विष्णु उनके बाण हुए; वेद उनके घोड़े हुए, ध्रुवादि ज्योतिर्गण उनके आभूषण हुए।

सर्वदेवमय शिव, पृथ्वी को कँपाते हुए इधर-से-उधर घूम रहे थे। उसे आकाश मे अप्सराओ से घिरे ऋषि उनकी स्तुति करते दिखाई दिए। जिनके हाथों मे दण्ड था, उन जटाधारियों को उसने नृत्य करते देखा।

वह मबको पहचानती थी। वीरा चावडा नन्दी था; विमल मेहता गणपति था; राय रत्नादित्य देवों मे श्रेष्ठ इन्द्र था, और चारो ओर

गण जय-ध्वनि कर रहे थे ।

कैलाश पर वह—हिमवान पर्वत की कन्या—पति की वाट जोहती हुई वैठी थी । वह अभी आएँगे, साथ ले जाएँगे और दोनों त्रिपुर विजय करेंगे ।

सामने त्रिपुर की नगरी फैली हुई थी । उसने त्रिपुरासुर को भी देखा था—हरी पाग तथा लाल दाढ़ी में भयंकर । उसने अपने शम्भु को पाशुपतास्त्र खींचते देखा था । हज़ारों दैत्य विद्ध होकर मर गए थे । मुख्य द्वार के आगे की खाई प्रलय के समय रुद्र द्वारा जलाए जगतत्रय के समान लगती थी ।

उसने महादेव का क्रोध देखा । भयभीत देवसेना को चारों ओर से प्रणाम करते देखा । अन्त में त्रिपुर विजय हुआ । ब्रह्मा और इन्द्र जिनके प्रमुख हैं, ऐसे देवता हर्षित होकर स्तुति कर गए हैं, इस वात को भी उसने सुना ।

उस समय उसे अपने शिवजी अद्भुत जान पड़े—करोड़ों सूर्यों के समान कान्ति वाले, सुन्दर नेत्रों से तेजस्वी और अनुपम आभूषणों से सुसज्जित, विचित्र वस्त्र पहने हुए और मनोहर मुकुट से सुशोभित । और उसके मुख से अनेक वार उल्लास के साथ बोले हुए शिवपुराण के श्लोक निकल गए ।

विजयी शिव इस समय उसकी वाट जोह रहे थे ।

भीमदेव अत्यन्त व्याकुल थे । अभी तक चौला क्यों नहीं आई ? उसने पैर पटके; उसके वाद कान लगाकर सुनती रही । यद्यपि अधीरता से आकुल भीमदेव को देखने में चौला को वड़ा आनन्द आ रहा था तथापि वह हँस पड़ी । भीमदेव ने उसकी हँसी सुनी । वे छप्पर में घुस गए, उसे पैर पकड़कर खींच लिया, और फूल की तरह हाथों में उठा लिया । चौला का न रुकने वाला हास्य उसे आकुल वना रहा था । परन्तु भीमदेव ने उसे अपने आलिंगन-पाश में जकड़ लिया ।

'ओ, ओ, ओ, मर गई,' चौला ने कहा ।

'अच्छा, मर गई ! मैं यहाँ कव से खड़ा हूँ, पता है ?'

'आपको क्या मुझे देखने की फुरसत थी ? मैं न जाने कव से यहाँ

आपका स्वागत करने के लिए बैठी हूँ।'

'अरे, तुझे खोजते-खोजते मेरी आँखें थक गईं।'

'खड़े रहिए शिवजी, मैं आपकी पूजा करने के लिए चन्दन और फूल लाई हूँ। आपने आज त्रिपुरासुर को हराया है, इसलिए बिना पूजा के काम नही चल सकता।' कहकर वह महाराज के हाथों से छूटकर नीचे उतरी।

'चौला, यह हार एक के लिए नही दो के लिए है,' कहकर भीमदेव ने चौला की गरदन में भी अपना हार डाल दिया। दोनों खूब हँसे।

'भोलानाथ, प्रसन्न होओ! भगवान् प्रसन्न होओ! और यह भी बताओ कि सदैव ऐसे ही रहोगे न?' चौला ने कहा, 'पार्वती और परमेश्वर।' इसके बाद चौला भीमदेव के हाथों में समा गई। अद्भुत रात्रि थी। चन्द्रमा भी अमृत-वर्षा कर रहा था। चौला आँख मीचकर अपने भगवान् की शरण मे गई। उसने ऐसे सुख की कभी कल्पना नहीं की थी। वह जन्म से नर्तकी थी, भक्ति-भाव से पुष्ट बन गई थी। वह दोनो हाथ महाराज के गले मे डाले लटकी रही। भीमदेव की शिराओं मे भी हलचल मची। उसे अधर उठाकर वे अपने कमरे मे लाए और किवाड़ बन्द कर लिए।

हाथ मे नंगी तलवार लेकर जीने पर बैठा नन्दी, चन्द्रमा की ओर एक आँख मीचकर देखता हुआ मूँछों-ही-मूँछो मे हँस रहा था।

: ४ :

राय को जो चिन्ता हुई थी, वह अनुचित नहीं थी। महाराज गये और शीघ्र उनके कान मे कुछ आवाज पड़ी। समुद्र के किनारे ऐसे स्थान पर कुछ ठोका-पीटी और पानी मे गिरने की आवाज हो रही थी, जिन पर उनकी दृष्टि नही पहुँचती थी। दूर किनारे पर ऐसी आवाज सुनाई दे रही थी जैसे कोई नाव पानी मे उतारी जाती हो या कोई तैर रहा हो।

चन्द्रमा के प्रकाश मे भी वे कुछ न देख सके, परन्तु उन्होंने रात के समय भिन्न-भिन्न कँगूरो पर रखवाली करने वाले सेनापतियों को उधर भेजकर खबर कराई और बिना किसी खटके के उन्होंने रात में एक हजार धनुर्धर इकट्ठे कर लिए। इस तरह, जहाँ चौ

प्रकाश नहीं डाल रही थी, कुछ आदमियों की हलचल दिखाई दी।

जहाँ पर समुद्र खाई से मिलता था वहाँ डेल्टा के ऊपर, कुछ दूर चलकर आम्रकुञ्ज था। यह स्पष्ट रूप से दिखाई दिया कि उसके नीचे आदमी इकट्ठे हैं। इस समय किसीके द्वारा कोट पर हमला करने की तो सम्भावना थी नहीं, क्योंकि अमीर की सेना खाई से दूर थी, इसीलिए इस हलचल का उद्देश्य कुछ दूसरा ही जान पड़ा।

क्षितिज के बिलकुल पास राव कमा लखाणी की नावें पड़ी थीं। उनमें से एक बहुत ही धीरे-धीरे प्रभास की ओर आ रही थी। हो सकता है कि यवन-सेना की यह हलचल इस नाव को रोकने या पकड़ने के लिए हो। और यह भी सम्भव है कि यह हलचल यवन-सेना की न भी हो; कुछ सैनिक चाँदनी में नावों पर भी पड़े हो सकते हैं।

आवाज़ देकर या मशाल से संकेत करके इस नाव को स्पष्ट रूप से न आने देने के लिए कहने में ख़तरा था, क्योंकि ऐसा करने से उस ओर दुश्मन का ध्यान न गया हो तो भी जा सकता था। फिर दुश्मन देख नहीं रहा है, इस भरोसे पर आती हुई नाव को आने देने में भी खतरा था।

राय ने कुछ देर विचार करके हिम्मत से भय की ओर बढ़ने का निश्चय किया। उसकी सेना में वेरावल के खारा और नीरा नाम के दो तराक थे। उन्होंने उनको बुलाया, अलावों को बुझाने का आदेश दिया और रस्से मंगाकर गढ़ से दोनों तैराकों को नीचे खाई में उतारा। दोनों को उन्होंने दिन-भर के समाचार और यहाँ आने के ख़तरे की बात कहला भेजी।

जब खारा और नीरा पाँच सौ हाथ दूर निकल गए तब राय को आम्रकुञ्ज की हलचल का रहस्य मालूम हुआ। सैनिक चुपचाप किनारे से बेड़ों की कतार-की-कतार खींचे ला रहे थे।

राय घबराये। दरवाज़े से आदमी बाहर निकालते हैं तो वे बेड़ों तक पहुँचने से पहले ही समाप्त हो जाएँगे। यदि दुश्मन के बेड़ों को लगाने के बीच ही नाव आ लगती है तो वह खतरे में पड़ जाएगी। और यदि वह दुश्मन के हाथ पड़ गई तो प्रभास को धक्का लगेगा।

राय ने यह ठीक समझा कि जब तक ये सैनिक बेड़े लगाकर जाएँ

तब तक ठहरा जाए। सैंकड़ों बेड़ों को एक-दूसरे के साथ बाँधकर एक बड़ा पुल बनाया गया था। उसे खाई के मुँह से थोड़ी दूर पर, जहाँ तीर न पहुँच सकें, किनारे पर गड़े हुए खूँटों से बाँध दिया गया था।

उनका इरादा ऐसा जान पड़ता था कि जब युद्ध शुरू हो तब उसे खाई मे खीच लिया जाए, जिससे कोट पर चढना आसान हो सके। यह बेड़ा डुबाना तो है पर कैसे डुबाया जाए, यह प्रश्न राय को उलझन मे डाले हुए था।

वह नाव तो दूर पर रुक गई थी और उसके आदमी उतरने लगे थे। राय को कुछ शान्ति मिली। खारा और नीरा पहुँच गए मालूम होते थे और नाव दुश्मन के हाथ मे पडने से बच गई थी।

जिस समय सैनिक उस पुल को खूँटों से बाँध रहे थे उस समय दूर से डाँडों की 'छलक-छलक-छलक' की आवाज आ रही थी। उस समय राय ने बड़े ध्यान के साथ उस ओर देखा अवश्य था, परन्तु ठीक दिखाई नही दिया था। बाद मे आवाज़ बन्द हो गई। जब उस पुल को बाँधकर सैनिक चले गए तब यह सोचकर कि जो-कुछ भी होगा देखा जाएगा, राय ने पचास अच्छे तैरने वाले सैसिक बुलाये और बेड़े को डुबाने के लिए उनको कोट से नीचे उतारने का प्रबन्ध करने लगे।

रस्से तैयार करके कोट पर लटकाये गए और सैनिक उतरने को तैयार हुए। तब सारा पुल ऐसे हिल उठा जैसे शेषनाग नीद मे से जगे हो। बेड़े एक-दूसरे से अलग होने लगे और वे सब बहते हुए पानी के साथ ऐसे खिचने लगे जैसे उन्हे किसीने बुला लिया हो।

वे स्वयं जाग रहे है या सो रहे है, इसका भी राय को विश्वास नहीं हुआ और वे आँख मलने लगे।

जब बेड़े बहुत दूर खिसक गए तब आम्रकुन्ज मे कोलाहल मचा। राय मूँछो मे हँसे, भोलानाथ की कृपा के बिना ऐसा चमत्कार नही हो सकता।

इतने में कोट के नीचे तीन आदमी तैरते हुए आये और दरवाज़े की सीढ़ियों पर चढ गए।

'बापू,' खारा ने जलमुर्गी की-सी आवाज की। उन तैराकों ने

उसकी आवाज़ को पहचान लिया। राय ने शीघ्र ही रस्से कोट के नीचे लटका दिए और दो के बदले तीन आदमी हाँफते-हाँफते ऊपर चढ़ आए।

'यह कौन है ?' तीसरे नये आदमी को देखकर राय ने खारा से पूछा।

'मुझे नहीं पहचानते ? मैं हूँ सामन्त चौहान।' राय ने आवाज़ पहचानी, कुछ मूँछें पहचानीं और उन्होंने सामन्त को छाती से चिपकाकर कहा, 'कौन ? सामन्तराज ! क्या तुमने वे बेड़े बहा दिए ?'

'क्या करता ? हम तैरते हुए आ रहे थे कि मुझे ये बेड़े दिखाई दिए और मैं समझ गया। आपके इन मल्लाहों और मैंने जाकर रस्से काट डाले,' कुछ लजाते हुए सामन्त ने कहा।

'चौहान, तुमने तो प्रभासगढ़ को बचा लिया,' राय ने आनन्दित होकर कहा, 'मैं बड़ी देर से सोच रहा था कि इस संकट से कैसे छुटकारा हो। धन्य हो !'

'धन्य तो आप सब हैं। मैंने आज का सारा समाचार सुना है। भीमदेव महाराज कहाँ हैं ?'

'उन्होंने दिन-भर इतनी मेहनत की है कि अब उन्हें तंग नहीं करना है। सो रहे हैं, लेकिन तुम यहाँ कहाँ ?'

'राय, आप सब पाटण से गये और गुरु नन्दिदत्त, मैं और आपके दिये तीन सौ आदमी आस-पास के जंगल में छिप गए। अमीर आया और खाली किये हुए पाटण को देखकर भौंचक्का रह गया। फिर हमने घोघावापा के भूत की बात फौज में फैला दी, इसलिए अमीर पाटण छोड़कर सीधा यहाँ चला आया।'

'और पाटण ?'

'जब वह जा रहा था तब महाराज के पदभ्रष्ट भाई दुर्लभसेन आये और अमीर की शरण में पहुँचे। अमीर ने उनको पाटण की गद्दी दी और पाँच सौ राजपूत दिये तथा अपने लौटने तक पाटण की रक्षा का काम उनको सौंपा।'

'अच्छा ! फिर तुम्हारा क्या हुआ ?'

'फिर तो काम सरल हो गया। दुर्लभसेन ने सवेरे आनन्द से राज्य करना आरम्भ किया, दोपहर को नन्दिदत्त नामक ब्राह्मण घोघाबापा के भूत से घबराकर दुर्लभसेन की शरण में गया; दूसरे दिन आसपास के भयभीत ग्रामीणों ने भूत से घबराकर पाटण की शरण ली। भूत की कथा से पाटण के वीर कांपने लगे; महाराज दुर्लभसेन दरवाज़े बन्द करके भीतर बैठ गए।'

राय खिलखिलाकर हँस पड़े, 'फिर ?'

'तीसरी रात को वृद्ध नन्दिदत्त को भूत आता हुआ दिखाई दिया। योद्धा घबराकर घर में घुस गए; नन्दिदत्त ने गढ के दरवाज़े वाले चामुण्डेश्वर के मन्दिर में भूत को भगाने के लिए यज्ञ आरम्भ किया। बाहर से आये हुए ग्रामीण वहाँ एकत्रित हो गए।'

'फिर क्या हुआ ?'

'फिर ठीक आधी रात के समय गढ के किवाड़ खटके। सब लोग थर-थर कांपने लगे। घोघाबापा का भूत अकेला अन्दर आना चाहता था। 'ना' कहने की किसीकी हिम्मत न हुई। दुर्गपाल ने दरवाज़ा खोला। भूत अन्दर आया, नन्दिदत्त ने भूत की आवभगत की। ग्रामीण शस्त्र-सज्जित योद्धा बने और उन्होने राजगढ को अपने अधिकार में ले लिया। भूत ने ढिंढोरा पिटवाया कि पाटण पर घोघाबापा के भूत ने कब्ज़ा कर लिया है और वहाँ मरे हुए आदमियों को छोडकर दूसरा कोई नही रह सकता। जो यवन वहाँ थे उनको ठण्डा कर दिया गया। जो राजपूत सामने आये वे भी मौत के घाट उतार दिये गए। जो शरण में आये उन्हें साथ ले लिया गया।'

'और दुर्लभसेन का क्या हुआ ?'

'वह तो घोघाबापा के चरणों में गिर पड़ा और उसने राज्य की अभिलाषा छोडने की शपथ ले ली। पीछे उसे और उसके दो-चार सेवकों को जगल में खदेड़ दिया गया।'

'शाबाश, शाबाश, चौहान ! फिर क्या हुआ ?'

'लूला मेहता को पाटण सौंपकर भीमदेव महाराज के नाम पर सेना तैयार की जाने लगी। मेहताजी भी खम्भात से सेना लेकर आये। जो

वापा की सलाह से जंगल में छिपे बैठे थे वे भी आ लगे। यह समाचार भी मिला कि मेहताजी ने उज्जैन से जो सहायता माँगी वह भी मिलेगी। और अमीर के यहाँ आने से पहले मंज़िल-दर-ज़ल कूच करती हुई उज्जैन की सेना उसके पीछे लग गई।'

'उसका सेनापति कौन है ?'

'दामोदर मेहता ही ना-ना करते हुए अन्त में सेनापति हुए।'

'लेकिन तुम क्यों नहीं हुए ?'

'अमीर के साथ मेरे बाप-दादे लड़े, अभी मेरी बारी नहीं आई। मैं खम्भात आया।'

'फिर घोघावापा यहाँ आये,' राय ने हँसकर कहा।

'जहाँ शौर्य और टेक होती है वहाँ घोघावापा सदैव रहते हैं,' म्लान-वदन सामन्त ने कहा, 'आपकी ज़रूरत की चीज़ें नाव में लेकर आज ही सवेरे आया हूँ। और वहाँ,' कहकर सामन्त ने समुद्र की ओर संकेत किया, 'मुझे राव कमा लखाणी मिले। वे वहाँ बैठे हैं और मैं यहाँ आया हूँ।'

'चलो, भोलानाथ की कृपा तो चारों ओर है। इस अमीर को भी अभी गुजरातियों की वीरता दिखानी है।'

'चलो, अब तो महाराज को जगाकर मिल लूँ। पौ फटने से पहले तो मुझे वापस पहुँच जाना है।' दोनों वीर फिर भेंटे और सामन्त रास्ता बताने के लिए एक सैनिक को लेकर महाराज के डेरे पर आया।

परकोटे में आते ही सामन्त की कुछ दिन पहले की स्मृतियाँ सजीव हो गईं। उसने उस खम्भे को देखा, जिसके नीचे बैठा-बैठा वह रोय था; कुण्डला का स्मरण किया; त्रिपुर-सुन्दरी के मन्दिर का स्मर किया; वहाँ जो महामाया की आरती हो रही थी वह भी फिर दिख दी और जिसकी आरती हो रही थी उसके साथ बातों में बिताई रात याद आई। कैसा हास्य, कैसा प्रेम और कैसा उल्लास था !

आँधी-भरे जीवन के रेगिस्तान में भटकने वाले उस वीर के लि इस बाला की भावना ही एक-मात्र विश्राम-स्थल थी। मानव-सम की तृषा से मरते हुए इस निराश प्राणी के लिए यही एक आशाबिन्दु

जिस समय आसपास के विनाशक झंझावात मे, अन्तर की दुखद स्मृतियों की झुलसाने वाली रेती मे, उसे तनिक भी सुखमय उमंग के अनुभव करने का अवसर मिलता कि शीघ्र यह उमंग एक सुन्दर और कोमल लावण्यमयी नारी के चारों ओर लिपट जाती। जब वह खम्भात आया और उसे खबर मिली कि प्रभास से नर्तकियां नावों में आई हैं तो उसने क्षण-भर उल्लास का अनुभव किया था। कदाचित् चौला भी आई हो!

परन्तु गगनराशि से मिलते ही उसे पता चल गया कि गंगा और चौला दोनों गुरुदेव के साथ ही रह गई हैं। अब यहाँ आने पर भी उसका पता गुरुदेव से ही चलेगा, यह सोचकर वह वहाँ जाने के लिए अधीर था। परन्तु उसका पहला कर्तव्य महाराज से मिलकर उन्हें समाचार देना था, इसलिए वह पहले वहाँ गया।

सैनिक ने आवास की ओर संकेत किया और वह वहाँ जाने के लिए जीने पर चढा। ऊपर की सीढ़ी पर नगी तलवार लेकर बीरा चावड़ा बैठा था।

'कौन है?' बीरा ने पूछा।

'मैं हूँ सामन्त चौहान। कौन बीरा? महाराज उठे?'

'बापू, आप?' चौंककर धीमे-से बीरा बोला।

'हाँ। मैं खम्भात से नाव मे आया हूँ और तैरकर यहाँ महाराज से मिलने आया हूँ। मुझे इसी समय लौटना है,' कहकर वह जीने पर चढ़ने लगा।

बीरा ने तलवार आडी करके कहा, 'नहीं बापू!'

सामन्त का मुख उग्र हो गया, 'क्यों? जो-कुछ मैं कह रहा हूँ उसे सुनता नही? मुझे आवश्यक बात करनी है।'

'खड़े रहिए बापू, मैं उन्हें जगा देता हूँ।'

'मैं जगा लूंगा।'

'नही, अन्नदाता अकेले नही है।'

'साथ कौन है? अब? ऐसे समय मे?'

सामन्त को बीरा का मन्द और विशाल हास्य सुनाई दिया। सामन्त

ने यह भांप लिया कि इसमें एक प्रकार का विनोद था ।

'ऐसा कौन है ?' सामन्त ने पूछा ।

वीरा हँस पड़ा, 'वही, चौला नर्तकी ।'

सामन्त के कानों में इन शब्दों का पड़ना था कि समस्त ब्रह्माण्ड टूटकर उसके मस्तक पर गिर पड़ा । पहले उसने दीवार का सहारा लिया और फिर आँखों पर हाथ रखकर सीढ़ियों पर बैठ गया ।

'बापू बैठो, मैं अन्नदाता को जगाकर आता हूँ ।'

'वीरा, सोने के लिए गये कितनी देर हो गई ?' सामन्त की आवाज़ रुकती, घरघराती और धीमी थी—मरते हुए मनुष्य की भाँति ।

'चार-छः घड़ियाँ हुई होंगी ।

'सोने दे, सोने दे,' सामन्त क्रन्दन करता हुआ-सा बोला ।

: ५ :

शिवराशि गुरुदेव के साथ चुपचाप अपने डेरे पर आये । इसका कारण उनके सिवाय और किसीको मालूम नहीं था । जिस समय गुरुदेव उनके सामने थे उस समय उन्होंने अपने समक्ष भगवान् लकुलेश को खड़े देखा था । वे उनसे कह रहे थे, 'चल बेटा, चल' और वे चुपचाप चलने लगे थे ।

उनको तपश्चर्या का फल मिला । पाशुपत मत के प्रणेता उनको पापाचारियों के इस धाम से बाहर ले जा रहे थे । दिव्य तेज के पुन्ज के समान महामाया त्रिपुर-सुन्दरी थिरकते हुए, सुकोमल गुलाबी पगों से उनके आगे-आगे चल रही थी । उनका अन्तर दीन हो गया था । इस अन्धकार से उनके गुरु और इष्टदेव उनको प्रकाश में ले जा रहे थे ।

बड़ी देर तक वे अन्धकार में आँखें फाड़कर देखते रहे । अन्त में सिद्धेश्वर ने आकर उनका ध्यान खींचने के लिए खाँसा ।

'सिद्धेश्वर,' नम्र और प्रेरणामय स्वर में शिवराशि ने कहा, 'भगवान् अभी आकर चले गए ।'

सिद्धेश्वर चकित हो गया । सर्वज्ञ को फिर इन्होंने भगवान् कैसे बना दिया ?

'भगवान् लकुलेश ने अभी-अभी आज्ञा दी है ।'

'भगवान् लकुलेश !'

'हाँ, अभी-अभी उन्होंने—शंकर के अवतार ने—मुझे दर्शन दिये हैं,' उन्होंने कहा। शिवराशि ने सम्मान उच्चारण किया, 'यह सारा स्थान घोरतम पापाचार से दूषित है।'

'यह तो मैं जानता हूँ।'

'और इस पाशुपत मत के आद्य प्रणेता ने मुझसे कहा, 'ये धर्म और सम्प्रदाय से द्वेष करने वाले सब-के-सब कुत्ते की मौत मरने वाले हैं। ये पाप के मन्दिर जलकर भस्म हो जाएँगे, इन पर गिद्ध मँडराएँगे।' और इन तपस्वियों में श्रेष्ठ ने मुझसे कहा, 'इस पापाचारियों के धाम को छोड़कर तू ऐसी जगह जा, जहाँ इसकी छाया का भी स्पर्श न हो सके और कोई नया तीर्थधाम खोजकर संसार को सिखा—पाशुपत धर्म की विजय; और प्रतिष्ठा कर भगवान् सोमनाथ और महामाया त्रिपुर-सुन्दरी की नवीन भक्ति की, उसी प्रकार जैसा कि मैं पहले कर चुका हूँ।'

कुछ दिन से राशिजी के भीतर होने वाले परिवर्तन को सिद्धेश्वर घबराहट के साथ देखा करता था। अब वे कमजोर खिलौने न थे, उनमें तेज, आत्म-श्रद्धा और किसी दैवी पुरुष जैसा भयकर व्यक्तित्व आ गया था।

'गुरुदेव,' जब से राशि ने गंग सर्वज्ञ से गुरुपद छीन लिया था तब से सिद्धेश्वर ने यह पद अपने गुरु को दे दिया था, 'मैंने तो जब अमीर की सेना देखी तभी समझ लिया था कि यहाँ रहने में कोई सार नहीं। और गुरुदेव, अरे गंग सर्वज्ञ से आप कहे तो अभी खम्भात जाने की व्यवस्था कर दें। राव कमा लख्याणी समुद्र में नावों में बैठे हैं।'

छेड़े हुए बाघ के समान शिवराशि सिद्धेश्वर की ओर घूरने लगे, 'इस पापी की सहायता लेकर जाने की अपेक्षा मुझे आत्म-शुद्धि में रहना अधिक अच्छा लगता है।'

'लेकिन फिर जाएँगे कैसे ?'

'मुझे जान बचाने के लिए नहीं जाना। मुझे तो भगवान् लकुलेश की आज्ञा के अधीन होना है और भगवती महामाया, दिव्य,प्रकाश से

मित त्रिपुर-सुन्दरी, मुझे पथ वता रही है। जहाँ वे जाएँगी वहाँ मैं
ऊँगा और उनकी आज्ञा का पालन कर पाशुपत मत का उद्धार
रूँगा। महामाया ! जगदम्बे !' कहकर अँधेरे में आँख फाड़कर वे
देखते रह गए।

वहाँ उन्होंने तेल के दीपक के प्रकाश में रात्रि के अन्धकार में
वाहर खड़ी त्रिपुर-सुन्दरी को देखा। वे महामाया सौम्य तेज से निर्मित
उल्लसित आँखों से उन्हें बुला रही थीं। उनके थिरकते गुलावी पाद-पद्मों
के कारण उनके मनोहर तथा सुकुमार अंगों के आकर्षक सौन्दर्य में अजे-
यता आ गई थी। वे हँस रही थीं। यह वही हास्य था, जो उनके हृदय
में घर कर चुका था।

'सिद्धेश्वर, आज्ञा हुई है। महामाया पथ वता रही हैं। चल इस
पापतीर्थ को छोड़कर चलें।'

'अरे, लेकिन कैसे ?' गुरु की स्थिति तक पहुँचने में असमर्थ सिद्धे-
श्वर ने थककर कहा।

शिवराशि आकुल होकर चारों ओर इस प्रकार देखने लगे, जैसे वे
स्वप्न से जागे हों। कुछ देर वाद वे स्वस्थ हुए।

'सिद्धेश्वर, जा, जाकर दद्दा चालुक्य को ले आ।'

'वे जूनागढ़ी दरवाज़े पर पहरा देते हैं।'

'जा, कह कि मेरी आज्ञा है, इसी समय मुझसे आकर मिले,' शि
राशि ने कहा।

सिद्धेश्वर दद्दा को खोजने गया और कुछ देर वाद हरदत्त और
साधु आये।

'नमः शिवाय, गुरुदेव !'

'शिवाय नमः वत्सो,' शिवराशि ने कहा, 'क्यों ?'

'गुरुदेव, चलो। हमने त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा की पूरी तैया
ली है। केवल आपकी ही कमी है। आप चलें तो हम चौला क
लाएँ।'

'चौला को ? महामाया को ?'

'हाँ।'

'मूर्खो ! अन्धो ! पूजा पूरी करने से क्या होगा ?' शिवराशि ने क्रोध से दाँत पीसते हुए कहा, 'हमें तो इस पापतीर्थ से निकलकर किसी पुण्यधाम में जाकर त्रिपुर-सुन्दरी की प्रतिष्ठा करनी है। भगवान् लकुलेश की आज्ञा है और स्वयं महामाया मुझे खींच रही हैं।'

'लेकिन जायेंगे कहाँ ?'

'कहीं भी। आज ही यह पापाचारियों का स्थान छोड़ना है। क्या तुममें आने की हिम्मत है ? कल यह सब जलकर भस्म हो जाएगा।'

'ठीक, परन्तु किस प्रकार ?'

'महामाया मार्ग बनाएँगी। आओगे ?'

'अवश्य।'

'ठीक है, तो चौला को यहाँ ले आओ,' उन्होंने आज्ञा दी, 'लेकिन देखना, किसीको पता न चले। हमें एक घड़ी में ही प्रभास छोड़ देना है।'

और इस भगवान् शंकर जैसे प्रतापी गुरु की आज्ञा को पालन करने के लिए हरदत्त और उसका साथी चले गए।

शिवराशि को चौला-रूपी त्रिपुर-सुन्दरी सागरों और पर्वतशिखरों के उस पार, उनको नये तीर्थों, नये मन्दिरों और नये सम्प्रदायों का स्वामी बनाती हुई आगे-आगे जाती दिखाई दी। सृष्टि ने नये पल्लव का कंचुक धारण किया; सूर्य की किरणों ने सुवर्ण मेरु की रचना की, जिसके ऊपर त्रिपुर-सुन्दरी महामाया के रूप में खड़ी थी और जिसकी तलहटी में वे स्वयं जगद्गुरु के रूप में प्रणिपात कर रहे थे।

: ६ :

'सिर पर हाथ रखकर, रोने में भी असमर्थ, सामन्त बड़ी देर तक बैठा रहा।

जहाँ तक दृष्टि जाती थी वहाँ तक उसके लिए बिना पानी का, [illegible] के भी आश्वासन से रहित रेगिस्तान फैला था। वह अकेला—अकेला—नितान्त अकेला, बिना कुटुम्ब, बिना भाग्य, बिना आश्रय और [illegible] आधा जीता हुआ भी मरा-सा था। वह हँसा—भयं[illegible] नाथ ने भी उसके भाग्य में कुछ नहीं रखा था।

'चौहानराज, चलो,' वीरा ने ऊपर से आवाज़ दी, 'महाराज आपको बुलाते हैं।'

सामन्त जैसे-तैसे खड़ा हुआ, कपाल पर हाथ फेरा और ऊपर गया। भीमदेव हाथों को चौड़ा करके खड़े थे।

'सामन्त, मेरे भाई ! आ, तू कहाँ से आया ?

सामन्त महाराज से ठण्डे शव के समान मिला।

'कौन चौहान ?' आवास के दरवाजे में से आवाज़ आई और वह बाहर आई। जैसे बहन भाई की बलाएँ लेती है वैसे ही उसने सामन्त की बलाएँ लीं।

वह थर-थर कांपता हुआ चौला के स्पर्श को सहन कर रहा था। उसने वीर राजा को देखा, रानी बनने के योग्य चौला को देखा और दोनों की मद-भरी आंखों में एक-दूसरे के लिए व्याप्त आकुलता को देखा। उसने आती हुई सिसकी को रोका और सिर झुकाकर दोनों को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

'महाराज, चौला ! आप दोनों का अहोभाग्य कि आपने एक-दूसरे को पाया।'

कभी-कभी स्वप्न में या अर्द्ध-जागृत अवस्था में वह ऐसे विचारों में डूब जाता था कि घोघाबापा की सन्तान राज्य प्राप्त करने के लिए सौभाग्यशाली हो गई है और चौला उसकी अर्द्धांगिनी बनकर राज्य-सिंहासन की शोभा बढ़ा रही है। इस समय जबकि उसने सिर झुकाया तो उसे लगा कि ऐसा विचार करना बड़ी धृष्टता थी। परन्तु उसी क्षण उसने इस विचार को वेध डाला, कुचल डाला और उसके टुकड़ों को बिखेरकर उन पर कूदने लगा।

'सामन्त, मुझे क्या खबर थी कि तू भी चौला को पहचानता है !'

'महाराज, मैं अकेला विश्व की निर्जनता में भटक रहा हूँ। मेरे लिए तो इसने सगी बहन का कार्य पूरा किया है। इसका सौभाग्य अखण्ड रूप में तपे। बहन, अब मुझे महाराज के साथ अकेले में बातें करनी हैं। घड़ी-आधी घड़ी में मुझे यहाँ से चले जाना है। तू अन्दर जा।'

चौला चली गई और सामन्त भीमदेव को दूर छत के किनारे पर

ले गया ।

'महाराज, समय कम है और काम बहुत । मैंने सारी स्थिति राय को समझा दी है, पूछ लेना । पाटण में आपकी आन बनी हुई है । दामोदर मेहता लश्कर लेकर अमीर के पीछे पड़े हैं । मारवाड और उज्जैन की सेनाएँ भी दो-चार दिन मे आ मिलेंगी । मैं खम्भात से नावें लाया हूँ । उनमें अनाज और शस्त्र हैं ।'

'क्या कहता है ? शाबाश सामन्त, शाबाश !'

'अब मैं शीघ्र वापस जा रहा हूँ । कल फिर आऊँगा ।'

'सामन्त, तू मनुष्य नही देवता है ।

'वास्तव मे मैं मनुष्य नही, क्योकि यदि मनुष्य होता तो इतने दुःख से न जाने कब का मर गया होता ।'

'ऐसा मत कह, तू मेरा दायाँ हाथ है ।'

'अब मैं एक बात अपनी भी कहता हूँ,' सामन्त ने कड़ाई के साथ कहा ।

'क्या ?' और भीमदेव आश्चर्यचकित होकर पीछे हट गए । सामन्त उग्र और भयकर हो गया । उसके हाथ में खजर खेलने लगा ।

'क्या चौला का मोह क्षणिक है—थकी हुई रात का विश्राम-मात्र है या और कुछ ?' और उस प्रश्न के भीतर के निश्चित सकल्प ने भीमदेव के साहसी हृदय को भयभीत बना दिया ।

'किसीने कहा ?'

'यह जन्म और वृत्ति से नर्तकी है । अवसर बीत जाने पर यह पाटण के चालुक्य के घर मे कैसे रह सकेगी ?'

भीमदेव समझे और हँसे, 'सामन्त, तेरा भय व्यर्थ है । चौला मेरे जीवन का सर्वस्व है । मैं इसे कभी नही भुला सकता ।'

'यह गुरुदेव की पुत्री है, मेरी धर्म-बहन है । इसलिए यदि आज की रात के बाद यह पाटण की पत्नी न हो सके तो हम इसी समय फैसला कर लें,' कहकर सामन्त ने खंजर निकालकर भीमदेव की नंगी छाती पर रख दिया । सामन्त दृढ, भयकर और क्रोधित था ।

भीमदेव खिलखिलाकर हँस पड़े, 'चौहान, मुझे सदा सुन्दर पे

ौला के ऐसा भाई है। घबरा नहीं, जब से मैंने इसे देखा है तभी से
मैंने इसे अपनी पत्नी माना है। जो स्त्री सत्कार करने योग्य होती है वह
पत्नी बनने योग्य भी होती है।'

सामन्त ने खंजर म्यान में रख लिया, 'महाराज, क्षमा करिए !
क्षमा करिए ! मैंने आप पर व्यर्थ ही आक्षेप किया।'

'नहीं, तू मेरा भाई नहीं, मेरी पत्नी का भाई है। इसमें क्या हुआ ?
यह युद्ध समाप्त हो जाए कि तू कन्यादान देना।'

सामन्त फिर गम्भीर हो गया, 'महाराज, आज यह पत्नी बन चुकी
है। कल भोलानाथ न करे कि कुछ और हो जाए।'

भीमदेव ने विचारकर कहा, 'सामन्त, तेरी बात सच है। भैया !
राय, विमल और दद्दा तीनों को गुरुदेव के पास बुला ला। अनिर्धारित
मुहूर्त के समान दूसरा मुहूर्त नहीं है। चल, चौहान वीर ! चौला, चल
गुरुदेव के पास चलें, हम अपना विवाह कर लें।'

और जिस समय भीमदेव का विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ, गुरुदे
ने आशीर्वाद दे दिया और गंगा हर्ष के कारण बुरी तरह रोने लगी,
सामन्त खड़ा हो गया, 'गुरुदेव, महाराज, मैं जाता हूँ। अभी पौ फ
वाली है।'

भीमदेव और चौला गुरुदेव के आवास के बाहर तक उसे छो
आये।

'भाई, मेरे मा-जाए भाई,' चौला रो पड़ी, 'जल्दी ही लौटना

'किसी दिन, बहन, किसी दिन जीता रहा तो राखी बँधवाने के
आऊँगा; नहीं तो—' और सामन्त रो पड़ा, 'बहन, किसी दि
करना,' इतना कहकर, सामन्त मस्तक झुकाए द्वारिका दरवाजे
दौड़ गया।

: ७ :

जिस समय सिद्धेश्वर आया उस समय शिवराशि अधीरता
फड़ा रहा था।

'क्यों ?'

तो नहीं मिले। सब गुरुदेव के पास गये हैं

'तो बाहर खड़ा रह। उतरता दिखाई दे तो बुला लाना,' राशि ने कहा। सिद्धेश्वर बाहर जाकर खड़ा हो गया।

कुछ देर बाद हरदत्त और उसका साथी आये। दोनों के मुख से व्याकुलता टपक रही थी, 'गुरुदेव, गुरुदेव, गज़ब हो गया!'

'क्या?'

'गुरुदेव, गंग सर्वज्ञ ने चौला का भीमदेव के साथ विवाह कर दिया।'

'क्या कहा?' शिवराशि पागल की तरह चिल्ला उठा।

'अभी-अभी विवाह किया है। मैंने अभी छत से देखा है।'

यह सुनते ही शिवराशि का मुख विकृत हो गया। उनकी आँखें इतनी बड़ी हो गई जैसे वे बाहर निकली पड़ रही हों। उन्होंने दोनों हाथों से अपने बाल नोच डाले। उनकी नस-नस में आग लग गई। उन्होंने गुरुपद का आडम्बर छोड़ दिया।

उनकी तपस्वीपन में जो श्रद्धा थी वह नष्ट हो गई। चौला—उनकी चौला—उनकी त्रिपुर-सुन्दरी अब पाटण के भीम की पत्नी हो गई थी। वह ऐसा हो गया जैसे वह जमे हुए हलाहल का बना हो।

'गुरुदेव, अब हमें क्या करना है? जाना है कि नहीं?'

'अब तो जब तक ये पापाचारी जलकर भस्म नहीं हो जाते तब तक कैसे जाया जा सकता है?' जाओ, जरूरत पड़ेगी तो बुला लूँगा।' राशिजी की आँखों के तेज को देखकर दोनों साधु चले गए।

कुछ देर बाद सिद्धेश्वर और दद्दा चालुक्य दोनों आये और राशिजी की भयावह आकृति देखकर स्तब्ध हो गए।

'दद्दा, मेरी एक आज्ञा पालन करनी पड़ेगी।'

'क्या?'

'जैसे बने वैसे सिद्धेश्वर के लिए कोट से बाहर जाने की युक्ति सोच।'

'मेरे लिए?' गुरु के मन के परिवर्तन को समझने में असमर्थ सिद्धेश्वर बोला।

'हाँ, तेरे लिए,' राशि ने गर्जना की और घबराया हुआ सिद्ध एक शब्द भी न बोल सका।

'लेकिन गुरुदेव, यह मैं किस प्रकार कर सकता हूँ? यदि मह

पता चल गया तो प्राण ले लेंगे।'

'दद्दा, मेरे आशीर्वाद से तेरे पुत्र हुआ। अपने शाप द्वारा मैं उसे छीन सकता हूँ। सिद्धेश्वर को कोट के बाहर करता है या नहीं?'

'अच्छा, कुछ देर में द्वारिका दरवाज़े भेजो, मैं तैयारी करता हूँ।'

दद्दा ने राय से सामन्त की बात सुनी थी, इसलिए उसे युक्ति सूझ गई और वह बिना तनिक भी रुके इस उग्र मूर्ति के पास से हट गया।

जब शिवराशि ने सिद्धेश्वर से जो-कुछ कहना था वह कहा, उस समय वह भी काँप उठा। अन्त में वह भी इस प्रभास की मृत्यु-शैया से उठकर भाग जाने का लोभ संवरण न कर सका।

जब थोड़ी देर में सिद्धेश्वर द्वारिका दरवाज़े पर पहुँचा तब खारा और नीरा ने सामन्त को नीचे समुद्र में उतार दिया था। दद्दा और दो मल्लाहों के अतिरिक्त वहाँ और कोई न था।

'खारा,' दद्दा ने कहा, 'महाराज ने इसे भी उतारने के लिए कहा है। यह भी चौहान के साथ ही जायेगा।'

'जैसी आज्ञा,' कहकर खारा ने सिद्धेश्वर को समुद्र में उतार दिया।

सोलहवाँ प्रकरण

दूसरे दिन

: १ :

सूर्योदय हुआ। राजपूत सेना सुसज्जित होकर कोट पर खड़ी हुई। लेकिन अमीर की सेना ने अभी कोई धावा नहीं बोला था। द्वारिका दरवाज़े और जूनागढ़ी दरवाज़े के सामने थोड़ी-सी टुकड़ियाँ थी, इसलिए उधर से कुछ भय नहीं था। जो कुछ जमाव था वह मुख्य दरवाज़े के सामने ही था। आक्रमण का रूप क्या होगा, यह कहा नहीं जा सकता था।

महाराज ने सारी सेना को मुख्य दरवाज़े के आसपास खड़े होने की आज्ञा दी थी।

अमीर काल की भाँति अपने शिविर से बाहर [illegible] स्थान-स्थान पर घूम आया। अन्त में उसने हुक्म दिया [illegible] नरसिंघे फूंके गए और घुड़सवारों की दो फौजें, बीच में [illegible] छोड़कर, खाई की ओर बढ़ीं।

हुक्म दिया गया और सैकड़ों सैनिक [illegible] लेकर मध्यद्वार के सामने खाई की ओर दौड़े [illegible] आये; वैसे ही दोनों ओर की घुड़सवार फौजें [illegible] साथ हो ली। यह खाई के ऊपर पुल बाँधने [illegible]

भीमदेव ने सब धनुर्धारी सेना मध्यद्वार [illegible] एक पंक्ति घुड़सवारों को थका रही थी [illegible] बढ़इयों को वेध रही थी। आकाश [illegible] सोमनाथ' की घोषणाओं से गूंज रहा [illegible]

परन्तु दुश्मन का यह हमला [illegible]

कि नये उनका स्थान ले लेते; घोड़े गिरते कि उनके स्थान पर घुड़सवार आ जाते। ऊपर से राजदूतों के वाणों की तीखी मार ी थी और नीचे लाशों के ढेर पर होकर नये सैनिक वढ़े चले ते थे।

मध्यद्वार के तोड़ने के लिए होने वाले इस प्रयत्न को रोकने के लिए महाराज और राय ने एक नई योजना बनाई। हाथियों द्वारा बड़े-बड़े पत्थर लाकर अन्दर से द्वार को वन्द किया जाने लगा और पुल वनाने का प्रयत्न करने वाले सैनिकों को पत्थर मारकर कुचला जाने लगा।

ऊपर दोनों दलों के तीरों का छत्र वन गया था; नीचे अमीर की सेना ने पुल वनाने और भीमदेव की सेना ने उसे तोड़ने के अनेक प्रयत्न किये।

राजपूत तीरों से विद्ध होकर कोट से नीचे गिर रहे थे। नीचे तीरों से विद्ध होकर और पत्थरों से कुचलकर अमीर के सैनिक मर रहे थे।

अमीर ने आज आदमियों के वारे में कंजूसी करना छोड़ दिया था। उसके आदमी चींटियों की तरह उमड़ रहे थे और खाई तथा खाई के वाहर लाशों के ढेर प्रतिक्षण वढ़ते जा रहे थे।

मध्याह्न हुआ तो पुल रखने के लिए तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ अन्त में जैसे-तैसे अमीर की सेना ने पुल रखा और दरवाज़े की लोहे साँकलों से उसे कसकर वाँध दिया।

कोट के अन्दर भी वड़े-वड़े पत्थरों से दरवाज़े को भर दिया ताकि किवाड़ें हिल न सकें और यदि हिलें भी तो खुल न सकें। तरों, घरों और मन्दिरों में से पत्थर निकाल-निकालकर कोट पर किये गए।

दोनों दल महान् प्रयत्न कर रहे थे।

दूर पर अमीर की हरी पगड़ी और रूपहार चाँद दिखाई दि इसके वाद वह अदृष्ट हो गया।

एक के वाद एक छः हाथी सूँड में एक-एक वड़ा तख्ता ले आ आये और पुल से निकलकर ज़ोर से इन तख्तों को किव

मारा। दरवाज़ा झनझना उठा। इसके कारण ऊपर के कँगूरे तक काँप गए।

लेकिन बड़े-बड़े पत्थरों से सुरक्षित किवाड़ न टूटे और राजपूतों ने 'जय सोमनाथ' की हर्षध्वनि की।

परन्तु इस उपाय को देखकर भीमदेव महाराज चिन्तित हो गए। ये किवाड़ इतने ज़ोर के धक्कों को कब तक सह सकेंगे? पतली लोहे की साँकलों की चादर ओढ़े हुए इन मस्त हाथियों को कैसे बेधा जाएगा?

महाराज और राय ने कुछ देर तक मन्त्रणा की। अब मृत्यु के मुख से विजयी होकर निकलने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था।

सौ बलिदानी वीर तैयार हुए; स्वयं राय भी तैयार हुए, परन्तु गुरुदेव ने मना कर दिया। महाराज को भी जैसे-तैसे रोका। अभी तो युद्ध का दूसरा ही दिन था। अभी से इनके जीवन को खतरे में क्यों डाला जाए?

दुश्मन का एक हाथी घायल हो गया था, इसलिए उसे बदल डाला गया। छः हाथियों के स्थान पर आठ हुए और उसके बाद वे बढ़ते गए। पुल हिलने लगा और भारी-भारी तख्ते, आठ हाथियों के वेग के कारण वज्र के समान बनकर फिर किवाड़ों से टकराए। उनके बख्तर से सजे शरीरों पर से तीर ऐसे निकल जाते थे जैसे हंस के ऊपर से पानी की बूँदें निलक जाती है।

दरवाज़े के पीछे जितने सम्भव हो सकते उतने पत्थर भर दिये गए थे। पीछे से चार हाथी ऊँचे पैर करके सहारा दे रहे थे। दरवाज़े के लक्कड़ हिले, परन्तु टूटे नहीं। अमीर के हाथी लौट आए।

इस पुल के ऊपर दोनों ओर से बराबर तीरों की वर्षा हो रही थी और चीख मारकर धनुर्धर पृथ्वी पर गिर रहे थे।

राय घायल हो गए थे। विमल मन्त्री के भी चोट लग गई थी। हाँ, महाराज ही चारों ओर इस प्रकार घूमते दिखाई देते थे मानो उन्होंने इन्द्र का कवच पहन रखा हो।

द्वारिका दरवाज़े पर केवल थोड़े-से ही सैनिक पहरा दे

जूनागढ़ी दरवाज़े पर कल की तरह आज भी कछुए और घुड़सवार खाई से दूर स्थिर होकर खड़े थे। और वहाँ दद्दा सोलंकी आवश्यक सैनिक लेकर गढ़ की रक्षा कर रहा था।

तीसरी बार दो हाथी बदल डाले गए और आठ हाथी तख़्ते लेकर आगे बढ़े। आगे वाला हाथी पुल पर कुछ दूर आया।

ऊपर से 'जय सोमनाथ' की गर्जना हुई और हाथियों के शरीर पर जलते लक्कड़ों की वर्षा हुई। हर एक लक्कड़ पर तेल और गन्धक में भीगा चिथड़ा भड़-भड़ जल रहा था।

चारों ओर गन्धक की गन्ध उड़ रही थी। पहला हाथी गन्धक की गन्ध और जलते लक्कड़ों से चौंककर सहसा खड़ा हो गया। पीछे वाला उस पर चढ़ बैठा और पिछले के वेग के कारण पहला हाथी कुछ आगे घिसटा—रुका—फिसला। पैर फिसला और वह सन्तुलन खोकर नीचे गिर पड़ा।

इस धाँधली का लाभ उठाकर पचास बलिदानी वीर एक हाथ में मशाल और दूसरे में बड़ी-बड़ी रेतियाँ लेकर पुल पर कूद पड़े।

पुल पर हाथी धमाचौकड़ी कर रहे थे और चिंघाड़ रहे थे। बीच वाले चार हाथी कुछ समझ में न आने के कारण ठिठककर खड़े हो गए। अन्तिम तीन, जो ज़मीन की ओर थे, पूँछ ऊँची करके भागे।

घुड़सवारों की समझ में भी कुछ न आया और वे आगे बढ़े। कुछ पुल बचाने के लिए आगे आये। कोट पर 'जय सोमनाथ' की ध्वनि गूंज रही थी।

जितनी धमाचौकड़ी थी उतना ही शोर था। दोनों दल बिना देखे बाण छोड़ रहे थे। आधी घड़ी तक किसी को कुछ न सूझ पड़ा। उस गड़बड़ में बीस वीर रेतियों से लोहे की साँकलें काट रहे थे। जैसे-तैसे थोड़ी देर बाद अमीर के धनुर्धरों ने पुल पर काम करने वाले इन आदमियों को देखा और वे उन पर तीर छोड़ने लगे। जो पुल के ऊपर या उसके पास आता उसी को गुजराती धनुर्धर समाप्त कर देते।

बड़ी देर तक यह भयंकर युद्ध होता रहा। भीमदेव ने कितनों ही के प्राण ले लिये। घायल होने पर भी राय का निशाना नहीं चूकता

था। विमल मन्त्री ने तो जितने बाण छोड़े थे उतने ही प्राण भी लिये थे।

अमीर के सैनिक पुल पर आये, यह देखकर पचास गुजराती वीर 'जय सोमनाथ' की पुकार लगाकर ऊपर से कूदे और पुल तोड़ने वालों में जो बचे थे, उनकी ढाल बन गए।

हाथों-हाथ युद्ध हुआ। मरते हुओं की चीखें कानों को फाड़ने लगीं। लाशें निरन्तर खाई में गिरने लगीं।

क्षण-भर के लिए दोनों सेनाओं का भविष्य अनिश्चित-सा लगा। कुछ देर बाद पुल की रस्सी टूटी; आग बीच में आ गई; साँकलें कट गईं; पुल डगमगाया और उसका जो भाग दरवाज़े से लगा हुआ था वह अलग होकर पानी में गिर गया।

कोट के ऊपर से भीमदेव ने 'जय सोमनाथ' की गर्जना की। हज़ारों वीरों ने भी उस गर्जना को दुहराया।

: २ :

शिवराशि सवेरे से तब तक गणपति के मन्दिर में बैठे थे। उनका चित्त न तो शंकर की ओर था और न गणपति की ओर, वरन् सामने की दीवार के पास पड़े पत्थर की ओर था। उनकी राक्षसी, आनन्द से पूर्ण आँखों के सम्मुख प्रभास का विनाश खड़ा हो गया।

उन्होंने सिद्धेश्वर को समुद्र में गोता मारते देखा। अपने उस विश्वासी शिष्य को, जो किसी दिन उनका उत्तराधिकारी होगा, उन्होंने तैरते देखा। उन्होंने उसे चाँदनी में, शान्त समुद्र की लहरों को अपनी बलिष्ठ भुजाओं से चीरते हुए और अमीर के किसी नायक से बातें करते हुए देखा। वह नायक उसे अमीर के पास ले जा रहा था, इसे भी उन्होंने देखा।

उन्होंने देखा कि वह पाशुपत मत के सन्धि-विग्रहक की हैसियत से गर्व का अनुभव करता हुआ अमीर के आगे गया है। अमीर नीचे झुककर इस प्रतापी तपस्वी के प्रतिनिधि के पैर धो रहा था। उसके बाद सिद्धेश्वर ने अमीर से वचन माँगा। घबराये हुए अमीर ने वह दिया। सिद्धेश्वर ने उसे संकटेश्वर महादेव की बावड़ी बताई।

शिवराशि खिलखिलाकर हँसा।

'वह गया भीम और उसका क्षुद्र-बुद्धि गुरु ! उन्होंने गत सप्ताह वावड़ी को इसलिए भरवा दिया था जिससे इस रास्ते कोई अन्दर न आ सके। वे इस बात को भूल गए कि जिस दिन गंग ने उसे अपना पट्ट-शिष्य चुना था उसी दिन उन्होंने इस गुप्त मार्ग की बात कह दी थी। इस मार्ग को केवल दो ही व्यक्ति जानते थे—गंग और वह। गंग ने वन्द कराया, उसने वह खुलवाया—उसी प्रकार जैसे गंग ने पाशुपत मत को डुबोया और उसने उसे बचाया। हा—हा—हा—हा...

अपने हास्य से शिवराशि स्वयं ही चौंक पड़े। और अब इस सुरंग में होकर अमीर—काल-भैरव के समान विनाशकारी—प्रभास में आ रहा था।

शक्ति के अनुमान से उनकी छाती फूल उठी। उनका वह दम्भी गुरु, चौला के साथ विवाह करने वाला वह मूर्ख और उसकी सेना के प्राण अब उनके हाथ में थे। जैसे एक ही चुटकी में पिस्सू को मसला जाता है वैसे ही वे इन मनुष्य-जन्तुओं को मसले दे रहे थे।

ज्यों-ज्यों समय बीतता था त्यों-त्यों उनकी बेचैनी बढ़ती थी। यदि कहीं सिद्धेश्वर समुद्र में डूब गया हो तो? यदि नमकहराम बनकर उसने गंग सर्वज्ञ के पास जाकर सब-कुछ कह दिया हो तो?

इतना होने पर भी उनका क्रोध शान्त होने वाला नहीं था। यदि आज अमीर नहीं आया तो वे अकेले ही इस रास्ते से बाहर जायेंगे। आवश्यकता होने पर बन्द की हुई बावड़ी को अपने हाथों खोदकर रास्ता निकालेंगे। वे तीनों लोकों को भस्म करने वाले शिव के समान थे। उनकी तीसरी आँख खुल रही थी; प्रभास जलकर भस्म हो रहा था; उसमें चौला को ले आने वाले भीम की राख भी हाथ न लगेगी। और जिस चौला ने उनको छोड़कर उस जड़ तलवार चलाने वाले को अपनाया वह भी भस्म हो जाएगी। उस भस्म को वह अवश्य ढूंढ़ निकालेंगे।

विचारधारा ऐसे ही चलती रही। बाहर से 'जय सोमनाथ' की गर्जना की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती और उनके अन्तर में भड़क उठने वाली क्रोधाग्नि की लपटें उन्हें जलाने लगतीं।

मध्याह्न गया, सूर्य अस्त होने लगा और वे—

जहाँ वे बैठे थे वहाँ नीचे कुछ धमाका सुनाई दिया। कुछ खाली आवाज़ हुई।

वे दौड़कर उस पत्थर के पास गये। चिमटे से आसपास की मिट्टी खोद निकाली और पत्थर को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया। वे राक्षस के समान बीभत्स हर्ष से उछल पड़े। अन्त में यह भीम, चौला और गग जलकर भस्म होंगे ही।

कोई नीचे से पत्थर को ठोक रहा था। एक, दो, तीन, चार, पाँच —और पत्थर उखड़ा।

शिवराशि ने जंगली जानवर की भाँति हर्ष-ध्वनि की और सुरंग में सिद्धेश्वर का सिर बाहर निकाला—जगद्गुरु के संधि-विग्रहक के सिर के समान नहीं, वरन् कीचड़ में लथपथ, घावों से लोहू-लुहान और मकड़ी के जालों से भरे बालों वाला, गन्दा…!

वह थककर लाश की तरह बाहर निकला। उसकी कमर से जंजीर डालकर एक रस्सी बाँधी गई थी, जिसका एक छोर पीछे आने वालों के हाथ में था।

शिवराशि शिष्य से मिलने बढ़े। सिद्धेश्वर दूर हट गया, 'मेरे हाथ से यह क्या कराया? दुष्ट!' उसने दाँत पीसकर कहा और वह थकान, भूख और मार से विवश होकर गिर पड़ा। उसने जमीन पर माथा टेक दिया। शिवराशि को ग्लानि हुई। उनके शिष्य को ऐसा नहीं होना चाहिए।

बारह सैनिक ऊपर आये—एक यवन था, ग्यारह हिन्दू। इस काम के लिए अमीर ने काफिरों को ही योग्य समझा था।

'तू शिवराशि?' एक ने कहा।

शिवराशि अपमानित होकर देखने लगे। दूसरे ने उन्हें पकड़कर हिलाया, 'जूनागढ़ी दरवाजा बता, आगे चल!'

निदान भीम, चौला और गग का काल आ ही गया और प्रभास संध्या होने से पहले ही भस्म हो जाएगा।

शिवराशि आगे बढ़े।

: ३ :

शिखर की अटारी से गुरुदेव, गंग और चौला तीनों इस भीषण वासुर-संग्राम को देख रहे थे ।

आज चौला के हर्ष की सीमा न थी । वह तो पार्वती थी, शम्भु की पत्नी थी, पाटण की रानी थी । उसका प्रियतम वहाँ कोट पर पराक्रम दिखा रहा था । वह सोच रही थी कि जब संध्या-समय वह विजय करके लौटेगा तब वह कंकुम और अक्षत से उसका अभिनन्दन करेगी ।

गुरुदेव निरन्तर शिवकवच का पाठ करते हुए शम्भु से संरक्षण करने की याचना कर रहे थे । गंगा सुखी थी—गुरु थे, चौला थी, चौला, का विवाह हो गया था । उसे अब कोई इच्छा नहीं रह गई थी ।

पुल टूटा और तीनों ने राजपूतों की हर्ष-ध्वनि में अपनी जय-ध्वनि मिला दी । मुख्य द्वार के कोट पर सब विजय की मस्ती में नाच रहे थे । नीचे से पुल टूटा । अमीर की हताश सेना परेशानी में थी । नये पुल और नये हाथियों के लिए दौड़-धूप मच रही थी । यह तो वास्तविक विजय थी ।

और गुरुदेव की दृष्टि जूनागढ़ी दरवाज़े के कँगूरों पर गई ।

'अरे वह पागल क्या कर रहा है ?' कहकर वे घबराये हुए नीचे उतरे । वहाँ शिवराशि और दद्दा सोलंकी में कुछ कहा-सुनी हो रही थी

सहसा कुछ हुआ । क्या हुआ, यह किसीकी समझ में नहीं आ और जूनागढ़ी दरवाज़े के सामने खाई के उस पार सवेरे की जमी अमीर की वह सेना, जो अब तक निश्चेष्ट बैठी थी, सचेष्ट हो गई ।

डंका और निशान बजे । वह अमीर, जिसका अब तक कहीं भी न था, घोड़ा दौड़ाता उसके पीछे आ गया ।

दद्दा ने शिवराशि के साथ वादविवाद करते हुए चेतावनी दे विलम्ब किया । भीमदेव ने अमीर की सेना का हमला देखा और दौड़ाकर जूनागढ़ी दरवाज़े की ओर चले । राय ने शंखनाद कि विमल ने रणसिंघा फूंका और चारों ओर से धनुर्धर दौड़ते हु दरवाज़े पर जाने लगे ।

चौला घबरा गई, 'माँ ! माँ ! यह क्या हुआ ?'

गंगा चीखकर उससे लिपट गई। गौरवशाली गुरुदेव अपनी अवस्था के अनुकूल तेज़ी से दौड़ रहे थे।

'माँ, यह क्या है? देख तो सही। जूनागढ़ी दरवाज़े के नीचे कुछ छप-छप हो रही है।' चौला ने कहा।

'अरे वे कछुए तो खाई में कूद पड़े और महाराज अभी तक वहाँ पहुँचे ही नहीं।'

कछुए पानी में थे। किनारे के घुड़सवार तीर छोड़ रहे थे। दद्दा के थोड़े-से आदमी जैसे-तैसे जवाब दे रहे थे और बुरी तरह मर रहे थे।

अन्त में दद्दा ने शिवराशि को हटाया और गढ़ को चेतावनी देने के लिए रणसिंघा बजाया।

भीमदेव, राय और विमल सेना के साथ कोट पर दौड़ते हुए आये। दद्दा पागल की तरह अपने बाल नोच रहा था। उसमें तीर चढ़ाने की भी शक्ति न थी।

'माँ, महाराज पहुँच गए! पहुँच गए!' चौला ने हर्ष से ताली बजाई।

ऊपर से भीमदेव के धनुर्धर बाण छोड़ने लगे। सामने से पाँच हज़ार घुड़सवार खाई में कूदे। पीछे काले घोड़े पर बैठा हुआ अमीर यहाँ-से-वहाँ और वहाँ-से-यहाँ फिर रहा था।

चारों ओर से यवन-सेना जूनागढ़ी दरवाज़े के सामने इकट्ठी हो रही थी।

राजपूत सेना दरवाज़े पर पहुँच गई।

भीमदेव ने दद्दा की गरदन पकड़ ली, 'चालबाज! हरामखोर!' कहकर उसे ज़ोर से खाई में फेंक दिया।

राय ने आदमियों का व्यूह बनाया। विमल मन्त्री पत्थर लाने की व्यवस्था करने लगा।

'जय सोमनाथ' और 'अल्ला हो अकबर' की पुकारें मिलकर चारों ओर प्रतिध्वनित होने लगीं।

'माँ! माँ! ओ माँ! ओ मेरी माँ!' चौला चीख उठी।

कोट पर लड़ती हुई राजपूत सेना को पता तक न चला और जून

दरवाज़े के किवाड़ ऐसे खुल गए जैसे उन्हें किसी जादू के हाथ ने छू दिया हो।

राजपूत सेना में हाहाकार मच गया। कछुए शस्त्रसज्जित योद्धा वनकर प्रभास गढ़ में घुस गए।

सामने से अमीर और उसके घुड़सवार खाई में कूद पड़े।

'महाराज, अन्तरगढ़ सँभालो। चलो! जल्दी उतरो।'

'विमल, जल्दी। योद्धाओ! अन्तरगढ़ सँभालो।' भीमदेव महाराज ने आज्ञा दी और वे स्वयं भीतर आती हुई यवन-सेना को रोकने चले। चारों ओर 'अन्तरगढ़! अन्तरगढ़! अन्तरगढ़!' की पुकार मच गई।

राय ने 'जय सोमनाथ' की घोषणा करके कोट के नीचे छलाँग मारी। उसके वाद टप-टप करके राजपूत योद्धा कोट के नीचे कूदे और रेल की तरह दरवाज़े में से आती हुई अमीर की सेना को रोकने लगे।

जूनागढ़ी दरवाज़े के आगे वाणों, तलवारों और गदाओं से हाथों-हाथ युद्ध होने लगा। गुजराती वीरों ने अभूतपूर्व और अकल्पनीय पराक्रम दिखाया।

राय पागलों की तरह घूमे। एक बार तो उन्होंने दरवाज़े से आते हुए घुड़सवारों को पीछे धकेल दिया, परन्तु वाहर से स्वयं अमीर मध्य एशिया के विकराल और प्रचण्ड घुड़सवारों के साथ घुस रहा था।

सारी यवन-सेना अन्दर आने के लिए दवाव डाल रही थी। उसका वेग रोका जाने योग्य न था।

एक ओर राय जौहर दिखा रहे थे, दूसरी ओर महाराज भीमदेव लड़ रहे थे। दोनों पैदल थे। उनके सैनिक भी पैदल थे। दुश्मन घोड़ों पर थे।

चौला मूच्छित होकर माँ की गोद में पड़ी थी; गंगा थर-थर काँप रही थी। नीचे की मार-काट में उसे गुरुदेव दिखाई नहीं दिए; उसे शंकर की स्तुति करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता था।

जव भीमदेव महाराज वीच में लड़ने के लिए गये तव उन्होंने विमल को अन्तरकोट वन्द करने की आज्ञा दी। विमल ने पूछा, 'महाराज, आदमी भेजकर समुद्र के रास्ते से जाने की तैयारी कराऊँ?'

भीमदेव ने भयंकर गर्जना की, 'विमल, मैं मर सकता हूँ, पीछे नहीं ट सकता।'

'लेकिन पाटण—'

'जा, जाकर महादेवी की रक्षा कर,' भीमदेव ने आज्ञा दी।

विमल मन्त्री ने आज्ञा शिरोधार्य की, जितने हो सके उतने आदमी ोकर अन्तरगढ़ में आ गए और उसके दरवाज़े बन्द कर दिए। भीम सके कोट के ऊपर से अमीर से लड़ने के लिए तैयार हुए।

राय ने अभूतपूर्व पराक्रम दिखाया। उनका दायाँ हाथ कट गया। हते हुए रक्त के साथ उन्होंने बाएँ हाथ में खड्ग लिया और यवनों को ारने के लिए एक सैनिक की सहायता से घोड़े पर चढ़े।

कुछ क्षण के लिए तो उन्होंने यवन-योद्धाओं से 'तोबा' करवा दी। रन्तु उनके दायें कन्धे से मूसलाधार रक्त बह रहा था; आँखों में ंधेरा छा रहा था, न कुछ दिखाई देता था, न कुछ समझ में आता ा। इतना होने पर भी वे घूमे। अन्त में एक बाण आया और बहादुर ाय घोड़े से ऐसे गिरे कि फिर न उठे।

आकाश से अप्सराओं ने पुष्प-वर्षा की।

: ४ :

गग सर्वज्ञ तेज़ी से शिवराशि को पकड़ने दौड़े। कारण, उनको सी आशंका हुई कि वह कुछ गड़बड़ कर रहा है। कल रात वह पागल ी तरह बोला था, प्रातःकाल से गणपति के मन्दिर में अकेला बैठा था, स समय दद्दा को कुछ समझा रहा था। इसमें कुछ रहस्य जान पड़ता ा।

वे जूनागढ़ी दरवाज़े के पास गये तो उन्होंने शिवराशि को जाते ए देखा। उन्होंने किवाड़ों को भी खुलते हुए देखा। जैसे ही उन्होंने केवाड़ों को खुला देखा वे समझ गए कि अन्त निकट आ गया है। वे शिखर की ओर देखकर बड़बड़ाए, 'भोलानाथ! आखिर यह तुम्हें क्या ो गया?'

वे तुरन्त पीछे लौटे। गंगा और चौला का यवनों के हाथ े ेना ज़रूरी था और वैसे भी अन्त में उनका स्थान देव के पास

जिन गलियों में सैनिकों की हलचल नहीं थी, उनमें होकर वे धीमे-धीमे अन्तरकोट की ओर गये ।

भगवान् की क्या इच्छा है, इस बात को जानने का वे व्यर्थ प्रयत्न कर रहे थे । उनके हृदय में दीनता व्याप्त हो गई । उनको पुरुष-प्रयत्न की व्यर्थता की प्रतीति हो रही थी ।

आज चालीस वर्ष से उन्होंने प्रभास का शृङ्गार किया था, धर्म-सिद्धान्तों का प्रचार किया था, समस्त भरतखण्ड में भगवान् की आन फिराई थी । यह सब एक पल में व्यर्थ हो गया । देव के प्रति उनकी जो श्रद्धा थी वह विचलित होने लगी ।

चिरसेवित शिव-समर्पण की भावना उनकी सहायतार्थ दौड़ी । उनका भोलानाथ जो करेगा सो ठीक होगा । जहाँ त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा के नाम पर वीभत्सता की शिक्षा दी जाती हो, जहाँ भैरव-पूजा के नाम पर भयानक अत्याचार होते हों, जहाँ उन जैसा व्यक्ति कुछ भी करने में समर्थ न हो और जहाँ शिवराशि जैसे को गुरुपद मिलना असम्भव हो, वहाँ किसी तीर्थधाम को अमर करने में भला क्या सार्थकता हो सकती थी !

उन्होंने भगवान् की आज्ञा का रहस्य समझा । प्रभास का पतन दुष्ट विधियों के कारण होगा और उससे भी अधिक उन विधियों के करने वाले दुष्ट नष्ट होंगे । भगवद्भक्ति नवीन और विशुद्ध रूप में विजय पाएगी । वे यह सब देख रहे थे, लेकिन वे इस पतन को किसी प्रकार भी रोक न सके थे, इसलिए भगवान् ने उनको भी बुला ही लिया था । घड़ी-पल की ही देर थी ।

'लेकिन भगवान्, क्या आपका भी इस यवन के हाथों नाश होगा ?' उनके अत्यन्त आर्द्र हृदय से प्रश्न उठा, 'जिस तीसरे नेत्र से आपने त्रिपुरासुर को भस्म कर दिया, वह कैसे बन्द कर लिया है, मेरे प्रभु ?' उन्होंने क्रन्दन किया, 'क्या हम इतनी कृपा के योग्य भी नहीं ?'

वे चलते-चलते अन्तरकोट के आगे आये तो देखा कि वहाँ के दरवाज़े बन्द हो गए हैं । क्या अन्तिम क्षण अपने प्रभु के दर्शन भी उनके भाग्य में नहीं लिखे थे ? वह पास के ही एक घर के चबूतरे पर बैठ

गए। अधखुले किवाड़ों के भीतर से किसी घायल और मरते हुए व्यक्ति की परिचित आवाज़ आई, 'पानी ! पानी !'

वे अन्दर गये। दीपा कोठारी की अन्तिम घड़ी थी।

'कोठारी भाई !'

'कौन, गुरुदेव ? मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ महाराज कि इस समय आपके सामने मेरी मृत्यु हो रही है। पानी !'

'ठहर, ले आता हूँ,' कहकर गुरुदेव ने उसके सूखते हुए मुख में पानी डाला, 'तू कहाँ घायल हुआ ?'

'जब पुल पर युद्ध हो रहा था तब मैं अन्दर पत्थर जमा कर रहा था। वहाँ से मैं यह देखने आ रहा था कि खाना तैयार है या नहीं। आते समय मुझे गणपति के मन्दिर से निकलते हुए राशिजी और थोड़े-से यवन-सैनिक मिले। जब मैंने उनसे पूछा तो एक ने मुझे खंजर मार दिया और इस रास्ते पर फेंक दिया। तब से न तो जिया जाता है न मरा जाता है।'

'कोठारी, हम लोगों पर भगवान् की कुदृष्टि है।'

'महाराज ?'

'पता नहीं। या तो कहीं लड़ रहे होंगे या कैलाशवासी हो गए होंगे। भोलानाथ जो करे सो ठीक।'

'गुरुदेव, लेकिन यह क्या ?'

'भोलानाथ की इच्छा के अधीन हो। कोठारी, पृथ्वी पर प्रलयकाल छा रहा है।'

'गुरुदेव !' उसे हिचकियाँ आने लगीं।

'कोठारी, नमः शिवाय, नमः शिवाय, नमः शिवाय, नमः शिवाय !'

कोठारी ने गुरुदेव के हाथों में प्राण छोड़ दिए।

उसकी आँखें बन्द करके गुरुदेव वहाँ से चले। यवनों के आने का रहस्य उनकी समझ में आ गया। साथ ही अन्दर जाने का मार्ग भी सूझ गया। अन्तरकोट के दरवाज़े के सामने वाले आँगन में जो मारुती का मन्दिर था उसके नीचे से सुरंग जाती थी। सुरंग में हवा जाने के लिए इस मन्दिर की दीवार में झरोखा था और छत में छेद था।

वराशि यवनों को अन्दर बुला सकता है तो वे स्वयं क्यों नहीं जा कते ?

वे तेज़ी से आँगन में पहुँचे।

चौगान में भयंकर मार-काट मच रही थी। चारों ओर से अमीर क घुड़सवारों और गुजराती योद्धाओं की गर्जना तथा चीखें सुनाई दे रही थीं।

मारुती के मन्दिर की छत पर चारों ओर पत्थर और मूर्तियाँ जमा कर कुछ योद्धाओं ने गढ़ बना लिया था और वे उसके भीतर खड़े होकर बाणों से दुश्मनों को बेधे डाल रहे थे। इन योद्धाओं के कौशल से अमीर के योद्धा अन्तरकोट के दरवाज़े तक नहीं पहुँच पाए थे।

एक दूसरे रास्ते की ओर हल्ला हुआ। रणसिंघा बजा और यवन-योद्धा एकदम घोड़े मोड़कर उस ओर दौड़े। गुरुदेव रास्ता पार करके मारुती के मन्दिर की ओर गये।

'गुरुदेव, अन्दर आओगे ?' ऊपर से किसी की आवाज़ आई।

'कौन, वीरा चावड़ा ?' गुरुदेव ने कहा।

शीघ्र दरवाज़ा खुला। गुरुदेव अन्दर पहुँचे और उन्हें देखकर वीरा रो पड़ा, 'गुरुदेव ! गुरुदेव ! महाराज कैलाशवासी हुए।'

'क्या कहता है ?'

'वे सिंह की भाँति लड़े, सैकड़ों यवनों का संहार किया, परन्तु आखिर—' वीरा सिसकी भरने लगा।

'भोलानाथ जो करे सो ठीक,' सिसकी भरकर गुरुदेव बोले, 'महा-राज का शव कहाँ है ?'

हम सात आदमी साथ थे। महाराज के गिरने की बात का पत चलने के कारण सेना में भगदड़ मच जाएगी, यह सोचकर हम उन्हें य ले आए हैं और रास्ता रोककर बैठे हैं। जब हम सातों मर जाएँगे त मन्दिर गिरेगा और तब किसी को इस बात की चिन्ता न रहेगी कि शव किसका है,' वीरा ने कटुता से कहा।

'वीरा, महाराज की देह हमारी नहीं, चौला की है। मुझे अन्द जाने दे।'

'कैसे ले जाओगे ?'

'दो-एक हाथ इस थाले के नीचे खोदने पर अन्तरकोट में जाने वाली सुरंग मिलेगी।'

'अच्छी बात है, ठहरिए,' कहकर बीरा अपने साथियों से डटे रहने के लिए कह आया और वह तथा गुरुदेव जल्दी-जल्दी खोदने लगे। थोड़ी देर खोदने के बाद ही सुरंग की खिड़की मिल गई।

'बीरा, तू यहाँ रह सकेगा ?'

'हाय, जब मेरे मालिक चले गए, तब मेरे रहने से क्या होगा ? मैं जितना जल्दी उनके साथ जाऊँ उतना ही अच्छा है,' कहकर वह अन्तिम बार महाराज के पैर लगा, आँसू पोंछे और ऊपर छत पर चढ़ गया।

गुरुदेव सुरंग से परिचित थे। वे नीचे उतरे। भीमदेव की देह को अपने कन्धे पर लिया और चलने लगे।

लड़खड़ाते, चोट खाते और गिरते-पड़ते गुरुदेव भीमदेव की प्रचण्ड देह को लिये गणपति के मन्दिर में जा निकले। सुरंग का मुँह खुला था।

मन्दिर में बैठकर उन्होंने जरा दम लिया और महाराज को देखा। महाराज के शरीर में अनेक घाव थे, परन्तु उनकी नाड़ी मन्द-मन्द चल रही थी। गुरुदेव ने अपने कपड़े फाड़कर घावों को बाँधा और उन्हें फिर कन्धे पर रखकर बाहर निकले।

कोट की ओर दृष्टि डाली तो उन्हे पता चला कि वहाँ सैनिक जान हथेली पर लेकर लड़ रहे हैं। क्या शौर्य है, क्या भक्ति है, क्या टेक है—गुरुदेव को विचार आया और उनके हृदय में गर्व की बाढ़ आई।

दूसरे ही क्षण उनके कानों से एक भयंकर हास्य टकराया। सामने चबूतरे पर शिवराशि बैठा था।

'क्यों ? मैंने कहा था कि नहीं कि तुम सब कुत्ते की मौत मरोगे,' और वह फिर हँसा।

'राशि, जहाँ पला, जहाँ दीक्षा पाई, जहाँ वेदपाठ किया और जहाँ देव-पूजा की, वहाँ तूने यवनों को लाकर मित्र, गुरु और देव को मरवाया ? जिस धाम में तू हो उसे भोलानाथ जलाकर भस्म करें, इसे मैं

अच्छी तरह समझ सकता हूँ,' यह कहकर गुरुदेव भीमदेव को उठाकर परकोटे में चले गए।

: ५ :

परकोटे में पैर रखते ही गुरुदेव के हृदय में नवचेतना का संचार हुआ। इस परिचित मन्दिर के सभामण्डप में वे न दीन थे न दलित। यहाँ उन्होंने चालीस वर्ष तक एकछत्र राज्य किया था—मनुष्यों के शरीरों पर और आत्माओं पर। यहीं बैठकर उन्होंने चक्रवर्तियों के अर्घ्य स्वीकार किये थे। यहीं बैठकर उन्होंने भरतखण्ड की विद्वत्ता और संस्कारों पर शासन किया था। यहीं वे भगवान् लकुलेश के उत्तराधिकारी थे; वे विश्व के लिए मोक्ष-द्वार का महामन्त्र उच्चारण करने वाले थे।

उनका स्वरूप जैसा था वैसा ही हो गया।

उन्होंने गंगा को आते हुए देखा। वह और चौला घबराती हुई और काँपती हुई नीचे आईं। चौला ने भीमदेव को देखा। उसने उनके मर जाने की व्यवस्था कर ली और छाती पीटकर रोती हुई उनके शरीर पर गिर पड़ी। गुरुदेव ने साँस ली और जैसे सदैव खड़े रहते थे, वैसे ही खड़े रहे—सीधे, शान्त, गौरवान्वित और भव्य।

'चौला,' गुरुदेव ने कहा, 'हमने जो-कुछ सोचा था उससे भगवान् की इच्छा भिन्न निकली। बेटा, रोने से काम नहीं चलेगा। अभी अन्तरकोट का पतन होगा और यवन अन्दर आयेंगे। तू चौला नहीं, पाटण के स्वामी की रानी है। यवन तेरे शरीर को स्पर्श करें उससे पहले तेरा कर्तव्य अग्नि-प्रवेश है।'

चौला पगली की तरह देखने लगी। भीमदेव मर गया; उसका जीवन-दीप बुझ गया।

'महाराज कब मारे गए?'

'अभी कुछ साँस बाकी हैं। तुम्हारी व्यवस्था करने के बाद देखता हूँ कि वे जीवित होते हैं या नहीं। गंगा, जल्दी से चौला को तैयार कर; मैं लकड़ियाँ इकट्ठी कराता हूँ। इसके भाग्य में परलोक में ही सुख बदा है; और गंगा, यवनों के हाथ लगने में कोई सार नहीं है, तू भी तैयार

हो जा।'

'सर्वज्ञ, मेरे मरने के लिए अग्नि की आवश्यकता नहीं है। मेरी चिन्ता न करो।'

एक साधु से, जो वहाँ घबराकर गिर पड़ा था, गुरुदेव ने लकड़ियाँ मँगाईं और अपने हाथ से चिता बनाई। गंगा ने चौला के शरीर पर चन्दन का लेप किया।

चौला के आँसू सूख गए थे। वह यंत्रवत् गुरुदेव की आज्ञा का पालन करती जाती थी। वह भोलानाथ के पास गई, उनके पैर लगी और उसके बाद बेहोश पड़े हुए भीमदेव के पास आई।

वह महाराज के मस्तक से लहू में चिपके बालों को हटाकर बड़ी देर तक उनके मुख की ओर देखती रही।

वह स्वयं भी शव जैसी हो गई थी। उसका मुख विवर्ण और आँखें काँच के समान निर्जीव हो गई थीं।

उसने महाराज के पैरों की धूल माथे पर लगाई, गंगा के पैर छुए और गुरुदेव को प्रणाम किया। गुरुदेव स्वस्थ और शान्त हो गए थे। उन्होंने आग देने के लिए लकड़ियाँ सुलगाईं।

विमल मन्त्री बाहर से हाँफते हुए आये। उनके भी एक-दो घाव लगे थे।

'गुरुदेव, ठहरिए! यहाँ से चले जाइए! अन्तरकोट अभी गिरता है। उसके बाद परकोटे के गिरने में देर नहीं लगेगी।'

'परकोटे के गिरने में तनिक भी देर नहीं लगेगी। मैं चौला को अग्नि-प्रवेश करा दूँ। उसके बाद मैं अमीर से मिलने को तैयार हूँ।'

'अरे, लेकिन यह क्या? महाराज गये?'

'नहीं, जीवित हैं; परन्तु केवल घड़ी-दो-घड़ी के लिए।'

विमल ने होंठ पीसे। यह रोने का समय न था।

'लेकिन गुरुदेव, आप चले जाइए।'

'मैंने तो पहले ही कह दिया था कि जहाँ मेरा भोलानाथ वहाँ मैं—'

विमल मन्त्री ने आह भरी और नीचे झुककर अपने स्वामी को नमस्कार किया।

इतने में पीछे से दौड़ता हुआ सामन्त आया।

'सामन्त, बेटा, तू इस समय ?'

'हाँ, मुझे पता चला कि प्रभास का पतन हुआ है, इसलिए मैं आया हूँ। चलो, समुद्र की ओर की खिड़की खुली है और बाहर बेड़ा आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। जल्दी करो।'

'वत्स, तेरे शौर्य की सीमा नहीं है। चौला, भगवान् की इच्छा है कि तेरा अग्नि-प्रवेश न हो। सामन्त, तू महाराज को भी ले जा। यदि यह जीवित रहे तो फिर प्रभास की स्थापना करेंगे।'

'चलो, जल्दी करो। विमल, तू कहाँ जा रहा है ?'

'मेरा स्थान अन्तरकोट पर है।'

'नहीं, मेरे साथ। भीमदेव जिएँगे, और यदि नहीं भी जिये तो मरने की खबर भी न लगेगी। इनके नाम से तो अभी अमीर का नाश करना है। तेरे बिना गुजरात की हिम्मत टूट जाएगी। चल!'

'विमल, सामन्त का कहना ठीक है। महाराज और तू दोनों होंगे तो गुजरात अपनी भस्म में से फिर उठ खड़ा होगा और अमीर को नष्ट कर देगा।'

'लेकिन—'

'लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। मेरी आज्ञा है। जा, जा,' गुरुदेव ने आज्ञा दी।

'लेकिन गुरुदेव, आप ?'

'जा, समय न खो। मैं तो यहीं भगवान् के चरणों में रहूँगा।'

तेजी से सामन्त और विमल ने महाराज को उठा लिया, चौला को साथ लिया और पीछे के दरवाज़े से निकल गए।

'सर्वज्ञ, सबकी व्यवस्था आपने कर दी, अब मेरी व्यवस्था करना शेष है।'

'क्या ?'

गंगा ने घुटने टेककर प्रार्थना की, 'आप मेरे प्राण हैं, गुरु हैं, देव हैं। मैं आपके ही चरणों में रही हूँ, मुझे वहीं मरना है।'

बिजली की कड़क के समान आवाज़ आई और चारों ओर 'अल्ला

हो अकबर' की गर्जना सुनाई दी।

'अब कुछ ही क्षण है। मेरी एक प्रार्थना है। आपने अपने जीवन में किसीकी हिंसा नही की, लेकिन यदि मैं अपने हाथों न मर सकूं तो मेरे प्रभु, मुझे अपने हाथों मोक्ष देना,' यह कहकर गंगा ने गुरुदेव की चरण-रज अपने माथे पर लगाई।

सर्वज्ञ के हृदय में एक लहर उठी। उन्होंने पृथ्वी पर पड़ी गंगा के मुख पर जीवन-भर की भक्ति और एकनिष्ठा का प्रतिबिम्ब देखा। वे नीचे झुके, गंगा के बालों को प्यार से सहलाया और उसके सिर पर हाथ रखा, 'गगा, कैलाशवासी होना।'

परकोटे के बाहर कोलाहल मचा। परकोटे के द्वार में दुश्मन घुस रहे थे। 'अल्ला हो अकबर' की गर्जना और भी पास आ रही थी।

गगा ने सिर मे सोने की कंघी निकाली। उसके दाँतों की नोकों को उँगली से जाँच की और उसे गले पर जमा दिया। एक चीख, एक धमाका—और गगा शव बनकर गिर पड़ी।

मरते समय भी उसने अपने प्रभु से हिंसा न कराई।

: ६ :

प्रभास मे एक प्रहर तक कत्ले-आम होता रहा। भाग्य मे ही कोई जीता बचा हो। पूरे गाँव मे लूट तो बड़ी देर से चल रही थी, आग भी लगी थी, परन्तु अमीर के हुक्म के बिना कोई कोट मे घुसा नही था।

गजनी के अमीर ने सन्ध्या के समय अन्तरकोट में पहला कदम रखा और बचे-खुचे राजपूतों को कत्ल करा दिया।

परकोटे के अन्दर के दरवाजे को तोड डालने का हुक्म दिया गया। यह तो सरल बात थी। कारण, अन्दर एक साँकल थी जो शीघ्र टूट गई।

घोडा लेकर अमीर परकोटे मे जाने के लिए बढा तो शिवराशि आड़े हाथ करके सामने खडा हो गया।

'अमीर, मत्र कर, मैं ही तुझे यहाँ लाया हूँ।' उसने बुलन्द आवाज मे कहा। हजारों सैनिकों के सहार के बाद एक नि शस्त्र बाबा को अपने सामने रास्ता रोके खड़ा देखकर वह जगद्विजेता हँसा।

'तिलक, यह क्या कहता है ?'

तिलक ने शिवराशि से पूछा और उसका उल्था अमीर को बताया—'जहाँपनाह, यह कहता है कि इसने ही हमारे आदमियों को सुरंग बताई है और हमने इसे वचन दिया है कि हम इसके देव और इसकी रक्षा करेंगे। जितना धन आप चाहें उतना यह देने के लिए तैयार है।'

अमीर खिलखिलाकर हँसा, 'काफ़िर, महमूद मूर्तियों को बेचने वाला नहीं, तोड़ने वाला है,' कहकर उसने अपनी तलवार शिवराशि के सिर पर जोर से मारी।

फिर घोड़े को एड़ लगाई और परकोटे में प्रवेश किया। अमीर के आसपास के योद्धा भी खिलखिलाकर हँस पड़े और बेहोश शिवराशि एक ओर पड़ा रहा।

परकोटे में आते ही अमीर चकित हो गया। वहाँ किसी आदमी का नामोनिशान तक न था, फिर भी सब दीपक जगमगा रहे थे और मणि-जटित स्तम्भों से निकली अनेक-रंगी किरणें सभामण्डप को देदीप्यमान बना रही थीं।

अमीर ने बहुत-से मन्दिर देखे थे और बहुत-से तोड़े थे, लेकिन उसने अस्त होते हुए सूर्य के सुन्दर प्रकाश में जगमगाता ऐसा मणिमय प्रासाद नहीं देखा था।

क्षण-भर के लिए उसने घोड़ा रोका, इस सौन्दर्य को देखा और घोड़े से उतर पड़ा।

हज़ारों वीर राजपूतों की आहुति से परम पवित्र इस प्रभास धाम में, युगों से अमर इस भव्य मन्दिर में, एकाकी भव्यता में, शंकर के समान गुरुदेव गंग सर्वज्ञ भगवान् की आरती उतार रहे थे। जगत् लय हो चुका था; केवल वे और उनके देव दो ही शेष थे।

अमीर इस वृद्ध की भव्यता को देखता रह गया। वह एक शब्द भी न बोल सका।

गुरुदेव ने आरती पृथ्वी पर रखी और कमर पर हाथ रखकर गर्भ-द्वार में खड़े हो गए—अपूर्व गौरव से सुशोभित।

अमीर ने होंठ दबाये, 'बुड्ढे, दूर हट।'

'नहीं,' हाथ के अभिनय से गुरुदेव अमीर का भाव समझ गए। 'यवन,' उन्होंने बिना तनिक भी हटे शान्ति से कहा, 'मेरा भोलानाथ और मैं, दोनों साथ हैं—विनाश में भी सनातन, अनादि और अनन्त।'

वह हँसा।

अमीर बातें करना नहीं चाहता था। उसने एक छलाँग मारी। उसके हाथ में उसकी तलवार चमकी।...

गुरुदेव का शीश, धड़ से अलग, बाहर लोटने लगा।

एक छलाँग मारकर अमीर गर्भद्वार में पहुँचा, एक लम्बी साँस ली, पास ही खड़े एक योद्धा से लोहे की गदा ली और घुमाकर मारी—

सृष्टि के आरम्भ में निर्मित भगवान् सोमनाथ के लिंग के तीन टुकड़े हो गए।

: ७ :

कृष्णपक्ष की द्वितिया का चन्द्रमा आकाश में चढ़ा। आधी रात हुई। शवों से भरे प्रभास पर गिद्ध आने लगे। कहीं मरते हुओं की चीखें सुनाई दे जाती थीं। चारों ओर दुर्गन्ध आ रही थी।

परकोटे के आगे पड़े हुए मुर्दों और घायलों में से बिखरी जटाओं वाला एक पुरुष उठा। उसके चलने का कोई ठिकाना न था। उसे आँखों से कुछ दिखाई नहीं देता था।

वह मुर्दों के बीच होकर लड़खड़ाता हुआ सभामण्डप में पहुँचा और गर्भद्वार के आगे जाकर नमस्कार किया।

वह भीतर वहाँ गया, जहाँ भगवान् का लिंग था।

उसने हाथ से टटोला, पर लिंग न मिला।

उसने आँख फाड़कर उसकी खोज की।

जैसे वह नींद में हो ऐसे अन्त में उसके हाथ में पत्थर के टुकड़े आए।

अन्धे की तरह उसने लिंग को खोजा।

वह काँपता हुआ उठा और गर्भद्वार से बाहर आया।

उसके पैरों से कुछ टकराया। उसे उसने हाथ में लिया और लेकर वहाँ आया, जहाँ चाँदनी पड रही थी।

उसने उसे ऊँचा किया—देखा—वे आँखें पहचानीं; वह मुख, वे

केद जटाएँ पहचानीं ।

'ओ—ओ—ओ—' करके उसने वह सिर डाल दिया और आँखों र हाथ रख लिये ।

कुछ देर उसने ऊपर को देखा, फिर जैसे कुछ याद आ गया हो वैसे उसने आँखें मीच लीं और हज़ारों वार देखे हुए मणिमय सभामण्डप को गुरुदेव से सुशोभित देखा ।

उसने आँख खोलकर चारों ओर देखा । उसके गले से एक सिसकी निकल गई ।

उसने दोनों हाथों से शीशे के खम्भे को पकड़ा और अपना सिर उस पर दे मारा ।

वह गिरा ।

उड़ते हुए गिद्ध उसके ऊपर मँडराने लगे ।

सत्रहवाँ प्रकरण

चौला का नृत्य

: १ :

सामन्त और विमल सारा और नीरा की मदद से मूर्च्छित महाराज और चौला को नाव पर ले आए। महाराज को बहुत-से घाव लगे थे, परन्तु अनुभवियों के यह कहने पर कि जान का खतरा नहीं है, सबकी चिन्ता दूर हो गई थी।

राव कमा लखाणी, सामन्त और विमल तीनों ने मिलकर पूरी सलाह की। परिणामस्वरूप यह निश्चय हुआ कि जब तक यह प्रचार नहीं किया जाएगा कि भीमदेव महाराज जीवित हैं और अमीर के साथ लड़ते जा रहे हैं तब तक पाटण की सेना की शक्ति को बनाए रखना मुश्किल है और इस बात का विश्वास दिलाने के लिए कि महाराज निरन्तर लड़ते जा रहे हैं, यह निश्चय हुआ कि राव कमा लखाणी भीमदेव महाराज को कच्छ ले जाएँ। यह भी निश्चय किया गया कि सामन्त और विमल खम्भात जाएँ और चौला को वहाँ पहुँचा दें तथा दामोदर मेहता से मिल लें और उसके बाद वे अमीर का पीछा करें।

जब से प्रभास छोड़ा था तब से चौला ऐसे बैठी थी जैसे वह बिलकुल बेहोश हो। वह केवल वही करती जो-कुछ करने के लिए उससे कहा जाता। जब वह भीमदेव के पास बैठती तब भी वह ऐसे बैठती जैसे वह जड़ हो।

ऐसा प्रतीत होता जैसे उसके प्राण भी निकल गए हों। कोई सोमनाथ महादेव की बात करता तो वह ध्यान से सुनती, दूसरी बात सुनने के लिए उसके कान नहीं थे। थोड़ी-बहुत बोलती थी [illegible]

राज्यों की फौजों का जाल विछ गया।

लेकिन इनमें से किसी भी वात में चौला को रस नहीं था। वह वात कहने वाले की ओर वड़ी तेजहीन आँखों से देखती और जो-कुछ वह कहता उसे धीरज के साथ सुनती। वात पूरी होने पर वह निःश्वास छोड़कर समुद्र की ओर देखने लग जाती।

दो महीने बीत गए। एक दिन उससे कुछ नहीं खाया गया। खाते ही उल्टी हुई। पन्द्रह दिन वीते तो उसे पता चला कि वह गर्भवती है। इसका पता चलते ही वह चीखी और मूर्च्छित हो गई।

जब वह होश में आई तो उसकी आँखों से अश्रुधारा वहने लगी। वह पार्वती न थी, भीमदेव शम्भु न थे, शम्भु के साथ उसका विवाह नहीं हुआ। अपने भगवान् से छल करके, चंचल मनोवृत्ति के वश होकर उसने एक मनुष्य से विवाह कर लिया था। अब वह उसके पुत्र की माता होने जा रही थी।

अपने द्वारा किये गए इस अत्याचार के लिए वह रात-दिन आँसू वहाने लगी।

जिस रात को उसने मोक्ष-प्राप्ति वाली रात समझा थी वह रात उसे पल-पल त्रास देने लगी। वह भ्रष्ट थी। वह देव की प्रिया स्वयं अपनी इच्छा से रोम-रोम से अधम वनी थी। इस समय वह अधम से भी अधम थी। कारण, वह अपने शरीर में मनुष्य के संसर्ग का कलंक लिये हुए थी।

वह अपनी खाट खिड़की के पास विछवाती। वह समुद्र पर दृष्टि स्थिर करके आँसू वहाती हुई रोज रात को अपने नृत्य करने के कपड़े दासी से निकलवाती, उन्हें ठीक कराती और आधी रात वीत जाने पर ऊँचे रखवा देती।

अब तो दिन-दिन उत्साहप्रद समाचार आते जा रहे थे, परन्तु उसे उनका सुनना भी अच्छा नहीं लगता था।

हिन्दू सेना-संघ आगे बढ़ता जा रहा था। अमीर की इस रास्ते से जाने की हिम्मत नहीं थी, इसलिए कच्छ के रास्ते से निकला। अमीर आया, प्रभास को नष्ट किया, भगवान् की प्रतिमा तोड़ी, परन्तु उसका

कोई फल उसे नही मिला। साहस की दिवाली मनाने पर भी उसके हाथ में राख और नाक मे गन्ध रही, और कुछ नहीं।

अमीर भागा; पाटण की फौज उसके पीछे पड़ी थी। रास्ते में स्वयं महाराज और राव तथा कमा लखाणी उसे खूब सता रहे थे।

दिवाली आ पहुँची और सबसे अच्छी खबर आई। महाराज ने अमीर को कच्छ के बाहर कर दिया था और वे अब पाटण आने वाले थे।

गाँव-गाँव से हर्षनाद करते हुए लोग खम्भात आ पहुँचे। खम्भात में घर-घर दीप जले। राजगढ़ में डका-निशान बजे। 'भीमदेव महाराज की जय' से राजगढ़ गूँजने लगा।

ग्रामीण चौला रानी के दर्शन करने आये, परन्तु चौला मे तनिक भी चेतना न आई। उसके शरीर के भीतर का कलक दिन-दिन बढ रहा था और जैसे-जैसे वह बढ रहा था वैसे-ही-वैसे उसके प्राण अधिकाधिक अधमता में डूबते जा रहे थे। अश्रुधारा बहती रहती—निरन्तर। आँखें निस्तेज और रोगी हो गईं। वैद्यक उसके लिए व्यर्थ हो गई।

इसके बाद गगनराशि महाराज को बुलाने के लिए पाटण गया और उसके जीवन को सँभालने वाली जो एक साँकल थी वह भी अदृष्ट हो गई।

धीरे-धीरे उसका सम्मान बढ गया। अब वह विजयी बाणावली की पत्नी थी। जिस राजगढ मे वह रहती थी वह अब नये ही रग मे रग गया। दास-दासियो की दौड़-धूप होने लगी। उसे गीत और वाद्य मे रिझाने के प्रयत्न होने लगे। वह इन सबसे निर्लिप्त थी। न तो उसमे उत्साह आया और न उसके आँसू ही बन्द हुए।

एक दिन विमल मन्त्री उसकी खबर लेने आये—महाराज के भेजे हुए। महाराज पाटण आये, भरत-खण्ड के राजाओं ने उनकी वीरता को अर्घ्य दिया। राज्य उनके सामन्त हुए। अनेक सेनाओं ने उनकी कीर्ति का गान किया, पाटण का गढ नया होने लगा और महाराज ने सोमनाथ पाटण को फिर से बनवाकर भगवान् की स्थापना की आज्ञा दी। इस काम को करने के लिए गगन सर्वज्ञ—कारण, अब उनके

ने मान लिया था—प्रभास जाने वाले थे।

चौला आँख फाड़े इस अन्तिम खबर को सुन रही थी। सुनते ही उसकी आँखों में चेतना लौटी। वह ज्यों-त्यों करके खड़ी हो गई।

'भगवान् की प्रतिष्ठा में कितनी देर लगेगी ?'

'एक वर्ष लग जाएगा।'

'तो मुझे नहीं मरना है—तब तक। मेरे नाथ ! भोलानाथ ! मुझे नहीं मरना। प्रभु मेरी लाज तुम्हारे हाथ है।'

इतना शारीरिक श्रम भी उससे न सहा गया और वह मूर्च्छित होकर बिछौने पर गिर पड़ी।

: ३ :

दूसरे दिन से चौला होंठ दबाकर बैठी और खाने लगी। उसकी आँखों में आते हुए तेज की झलक मिलने लगी। अब उसे मरना नहीं, जीना था। अब वह जीने के लिए भगीरथ प्रयत्न करने लगी थी।

उसने बड़ी कठिनाई से फिर खिड़की के पास बैठकर समुद्र का ध्यान करना शुरू किया। दासी से अपने नृत्य के वस्त्राभूषणों को बाह[र] निकलवाना उसने बन्द कर दिया और पहले की तरह स्वयं ही निकाल[ने] लगी।

अब उसके पूरे दिन थे। यह सुना गया कि महाराज स्वयं चौ[ला] रानी से मिलने आने वाले हैं। भीमदेव के नाम से समस्त भरत-[खंड] गूंज रहा था, गुजरात पागल हो रहा था और नर-नारी उनकी [कीर्ति] गा रहे थे। उन्होंने अमीर को खदेड़ दिया था; उन्होंने गुजरा[त को] महान् बनाया था। वे पाटण और प्रभास दोनों को फिर बनवा र[हे थे।] उन्होंने शौर्य में कार्तिकेय के साथ स्पर्द्धा की थी। उनकी कीर्ति [...] फीका पड़ गया था। देव और ऋषि रात-दिन उनके गुण गाते [...]

वे रानी उदयमति के साथ खम्भात आ रहे थे—चौल[ा से] मिलने। घर-घर तोरण बाँधे गए; मुहल्ले-मुहल्ले में जयध्वनि [...] राजगढ़ का नया ही रूप हो गया। चारों ओर विजयी यो[द्धा] धमाधम होने लगी। बाणावली भीम आ रहा था—यवन-वि[जेता, गुज]रात का स्वामी !

महाराज की सवारी राजगढ़ में आई। चमकती पगड़ियाँ बांधे घुड़सवारों के झुण्ड आये, ऊँटों पर डंका और निशान आये और सबसे पीछे एक प्रचण्ड हाथी के ऊपर रत्न-जटित सोने की अम्बारी पर बैठे हुए महाराज आये। वे पैर मोड़कर बैठे थे। उनके शरीर पर जरी की जगमगाती पोशाक थी, कन्धे पर यवन-संहारी धनुष था। उनके कानों में कुण्डल लटक रहे थे। कपाल पर था केसरिया त्रिपुण्ड और सिर पर था मणि-जटित मुकुट। मणि और रत्नों की जगमगाहट मध्याह्न के सूर्य की किरणों के कारण सहस्रगुनी होकर लोगों की आँखों में चकाचौंध पैदा कर रही थी। हमारे भीम—हमारे महाराज—हमारे बाणावली—हमारे अन्नदाता—हमारे देव, ऐसे-ऐसे विचारों से देखने वाले की छाती गज-गज-भर की हो जाती थी।

चौला ने तेजपुञ्ज के बीच बैठे गुजरात के स्वामी को देखा। इन्द्र के यौवन की भांति उनके सनातन यौवन को देखा। उनकी आँखों का विजय-गर्व, उनके मुख पर खेलता राजोचित हास्य, उनकी सुन्दर कढ़ी हुई और हर्ष से फहराती हुई दाढ़ी को उसने देखा और उसकी शुष्क तथा तटस्थ दृष्टि पल-भर में पीछे हट गई। उसकी आँखें भय से फट गई और उसके होंठ अकथनीय वेदना से काँपने लगे।

'माँ, माँ, महाराज कैसे शोभा दे रहे हैं!'

उत्तर में चौला रानी ने सिर को तकिये में गड़ा दिया और सिसकियों के मारे उसका सारा शरीर काँपने लगा।

: ४ :

सवारी से उतरने पर भीमदेव महाराज वस्त्राभूषण उतारे बिना ही, अधीर प्रेमी की भाँति त्वरा के साथ अन्तःपुर में प्रियतमा से मिलने आये। दास-दासियों ने झुककर उनका अभिनन्दन किया।

'चौला, मेरी चौला,' उन्होंने पुकारा और वे दौड़ते हुए चौला के पलंग के पास पहुँचे।

सूखी और निस्तेज चौला ने बड़ी-बड़ी काली आँखों से पति को भय से देखते हुए मन्द स्वर से स्वागत किया, 'महाराज!'

'अररर! तू एकदम ऐसी हो गई है? मुझे क्या खबर थी चौला,

तू अस्वस्थ है। तेरी तबीयत अच्छी नहीं थी तो तुझे पाटण बुला लेता। लेकिन अभी तुझसे यात्रा की थकान सही न जाएगी। चौला, पिछला वर्ष तो विचित्र था। स्मरण है प्रिये, जब हमने विवाह किया तब दुःख के दिन थे। और कहाँ आज का दिन ! मैंने अमीर को भी खूब छकाया। और चौला, तुझे खबर है कि सपादलक्ष, मारवाड़ और स्थानक ने मुझे कर दिया है ? पाटण अब अत्यन्त सुन्दर बनेगा। और मैंने तेरे लिए एक बहुत ही सुन्दर महल बनवाया है। जब तू आये तब देखना। चौला, मैंने तेरे लिए देश-देश से आभूषण मँगाए हैं।'

भीमदेव महाराज की उत्साहपूर्ण वाग्धारा बहती गई और चौला बड़ी-बड़ी फीकी आँखें भीमदेव पर ठहराकर ऐसे बैठी रही जैसे वह धारा तरल हिम की हो और इसने उसके अंग-प्रत्यंग में पीड़ा उत्पन्न कर दी हो।

'चौला, पन्द्रह दिन में तुझे मुक्ति मिल जाएगी। पुत्र हो तो बहुत अच्छा है। मेरे भाग्य में यही कमी है। फिर तू आना, मैं तुझे लिवाने आऊँगा। न होगा तो विमल को भेज दूँगा। उसके हृदय में बड़ा प्रेम है। हो सकता है कि मैं उस समय मालवा के भोज पर चढ़ाई करूँ। वह बहुत गड़बड़ करता रहता है। उसे भी इसका स्वाद चखाना है।'

और भोले तथा प्रेम-विह्वल भीमदेव को इसका भान भी नहीं हुआ कि इस प्रकार के शब्द उसकी प्रियतमा के अन्तर में घाव कर रहे हैं।

इसके बाद प्रेमातुर होकर महाराज पास आये, चौला के मुख को दोनों हाथों में लिया और उसे चूम लिया।

चौला को सारा संसार हिलता हुआ जान पड़ा। वह मुख और पसीने की गन्ध, वह काढ़ी हुई सुवासित दाढ़ी का सुहाना स्पर्श और वह बड़ी-बड़ी आँखों की विलास-लालसा उसे पराई, अपरिचित और अप्रिय जान पड़ी। वह आँखें मींचे, थर-थर काँपती हुई इस दुलार को सहन कर रही थी।

'अरे भोलानाथ, मुझे इस प्रकार भटकती छोड़कर कहाँ गया ? क्यों भुला दिया, मेरे नाथ ?' उसने मानसिक व्यथा को व्यक्त किया।

'और चौला,' भीमदेव महाराज कह रहे थे, 'वह सामन्त चौहान

अभी आयेगा। अजीब लड़का है! मेरे साथ ठाठ से आने के बदले वह रात को चोर की तरह आयेगा। परन्तु चौला, एक बात कहूँ। किसी से कहना मत। देख, यदि अमीर भागा है तो मेरे कारण नहीं, इस चौहान के कारण भागा है। यह दिन-रात देश-देश मारा-मारा फिरा है; इसने हर एक राजा को समझाया है। दामोदर मेहता तो इसका ही यश गाता है। यदि यह न होता तो हम लोग पाटण में न जाने कब के कट गए होते।

'और चौला, हम लोग भी यदि जीवित हैं तो इसी के कारण। यह न होता तो हमें प्रभास से कौन लाता? लेकिन है बिलकुल मूर्ख। मैंने इसे सोरठ का दण्डनायक बनाने के लिए कहा। यही नहीं, अन्त में मैंने इसे एक छोटा-सा राज्य भी देने के लिए कहा। लेकिन यह टस-से-मस नहीं होता। कहता है, "अब मेरा कर्तव्य पूरा हो गया। मैं घोघा-गढ़ जाता हूँ।" और वहाँ तो कौवे भी नहीं उड़ते। तेरे पास भेज दूँगा। तू समझा देना। अपने यहाँ रहेगा तो अपने गुजरात की कीर्ति उज्ज्वल करेगा।'

'महाराज,' अन्त में उसने हिम्मत करके उस प्रश्न को पूछा, जिसे वह बड़ी देर से पूछना चाहती थी, 'प्रभास कब तक बन जाएगा?'

'लगभग आठ महीने लगेंगे।'

'तो मैं इस काम से छुट्टी पाकर वहाँ जाऊँ?'

'अरे, ऐसा कैसे होगा? तुझे तो पाटण आना है न? वहाँ हम लोग आनन्द करेंगे।'

'मेरे प्राण प्रभास में हैं। मुझे अपने भोलानाथ की पूजा करनी है।'

'अरे मैंने इतना सुन्दर मन्दिर बनवाया है; इसके बाद नये लिंग की स्थापना होगी, तब चलेंगे।'

'नया लिंग! मेरे भगवान् का क्या हुआ?'

'वह लिंग तो अमीर ने तोड़ डाला और उसके टुकड़ों को गज़नी ले गया।'

चौला की आँखें स्थिर हो गईं। व्याकुलता से वह पागल की तरह चारों ओर देखने लगी। उसकी चक्कर खाती हुई आँखों को देखकर

महाराज घबराए। दासियों को बुलाया। जब दासियाँ आईं तो चौला मूर्च्छित पड़ी थी।

दूसरे दिन सामन्त मिलने आया—सूखा, काला, मस्त, दो-दो घावों के कारण अनाकर्षक, सतत पोषित उन्माद के कारण भयंकर। खण्ड में आते ही वह पल-भर के लिए ठिठक गया और क्षीण चौला को देखता रह गया।

'देवी, मेरा प्रणाम,' कहकर सामन्त दूर से पैरों पड़ा।

'चौहान, तुम भी ?' क्रन्दन करके चौला बोली और रो पड़ी।

'क्या है, क्या है ?'

'कुछ नहीं,' आकुल चौला ने कहा।

'चौहान, तुम भी चौला को भूल गए ?'

सामन्त के मुख पर मृदुता आई। वह पास आया और हाथ जोड़कर बोला, 'मैं कैसे भूल सकता हूँ ? लेकिन जब सारा जगत् ही बदल गया है तब मैं क्या करूँ ?'

'सच कहते हो सामन्त ! प्रभास गया, गंगा गई, गुरुदेव गये, भगवान् के टुकड़े हुए तब भी मैं—भगवान् की दासी—किसलिए जीवित रह गई ?' चौला के हृदय से सिसकियाँ उठने लगीं।

सामन्त के हृदय के तार झनझनाए। उसका हृदय भी संवादी वेदना से गूंजने लगा। वह चौला की व्यथा को समझ गया।

'चौला,' उसने धीरे से कहा, 'समझता हूँ, सब समझता हूँ। मेरा भी सब गया—घोघागढ़, घोघाबापा का कुल, गुरुदेव—सब।'

समान दुख वाले ही एक-दूसरे को समझते हैं, इस गहरे तथ्य का अनुभव करते हुए वे एक-दूसरे को देखने लगे।

'सामन्त,' चौला ने क्रन्दनपूर्ण स्वर में कहा, 'तुम भी चले जा रहे हो ?'

'क्या करूँ ? मैं तो घोघाबापा और गुरुदेव के समय का हूँ। इस नये युग में मैं पराया, अनजान, नासमझ हूँ।

'चौहान, मैं—मैं भी इस लोक की नहीं हूँ

मैं तुमने मेरे हाथ से विजय-तिलक कराया था।

मांगती हूँ—दोगे ?'

'बोल, बहन, बोल ।'

'जब तक मेरा भोलानाथ प्रभास में वापस लौटे तब तक यहीं रहोगे—यदि मैं जीवित रही तो ?'

सामन्त को विजय-तिलक की याद आई। उस रात की मीठी बातें याद आईं। उस रात उसने भाई बनकर कन्यादान दिया था, यह भी याद आया।

'अच्छा, चौला, स्वीकार है। और कुछ ?'

'सामन्त, सौ वर्ष जी मेरे वीर !'

चौला के मुख पर मन्द हास्य खेलने लगा। जिस सामन्त ने महीनों से सुख, हर्ष अथवा शान्ति नहीं देखी थी, वह भी हँसा और इन दो एकाकियों ने मिलकर जगत् के भार को हलका किया।

: ५ :

महीने-भर बाद परमभट्टारक श्री भीमदेव महाराज की चौलादेवी के गर्भ से प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। खम्भात, पाटण और गुजरात में आनन्दोत्सव मनाया गया। महाराज के सुख का पार न रहा। वे खम्भात आये, पुत्र-रत्न को खिलाया और दास-दासियों को वस्त्राभूषण दिये। चौला उनकी प्रिय रानी थी। यह उनका प्रथम पुत्र था। उनके सुख और विजय पर कलश चढ़ा था।

जब चौला प्रसव-काल की वेदना से मुक्त हुई और उसे होश आया तो उसका मन अपने पुत्र को देखने को न हुआ; और जब उसने पुत्र को देखा, उसकी विशाल छाती, सिंह के समान कटि और बड़ी-बड़ी आँखें देखीं तो वह थर-थर काँप उठी। वही छाती, वही कटि, वही आँखें—परन्तु कुछ अधिक बड़ी, अधिक प्रौढ़, अधिक प्रभावपूर्ण—उसे याद आई। उसे ऐसा लगा जैसे उसने हृदय-भेदक स्वप्न में किसी भयानक राक्षस को देख लिया हो।

उसे चक्कर आने लगे।

देवों के देव महादेवजी की वह वचनदत्ता इस बालक को पार्थिव अधमता की शृङ्खला के समान समझती थी। जब उसे देखती तब

उसके दुख का पार न रहता।

दो महीने बाद विमल मन्त्री उसे पाटण ले जाने के लिए आये। मना तो किया नही जा सकता था, इसलिए वह तैयार हुई। उसने पालकी मे पड़े-पड़े धीरे-धीरे पाटण का रास्ता तय किया।

अन्त मे वह गुजरात की राजधानी में पहुँची और राजगढ़ के अन्त.-पुर में रही। रानी उदयमती आकर मिल गई—नुकीली नाकवाली, रूपवती, कुलीन राजपूतानी—भीमदेव के अनुकूल अर्द्धाङ्गिनी। दास-दासियों की दौड़-धूप होने लगी। चौला रानी की व्यवस्था करने के लिए राजगढ मे हलचल मच गई।

चौला की तबीयत कुछ सुधर गई थी, परन्तु इस वैभवपूर्ण राज-प्रासाद में उसे खम्भात के बराबर भी आराम नही मिला। खम्भात में सामने ही समुद्र था, उसके उस किनारे पर भगवान् विराजते थे। वहाँ के राजमहल मे थोडे आदमी थे, न इतना आडम्बर था और न दास-दासियों के झुण्ड।

पहले दिन आते ही उसे लगा—पता नही किस प्रकार—कि बाहर के इस सब प्रकार के सम्मान के होते हुए भी उसे पराया और अधम समझा जा रहा था।

बात भी ठीक है, दाँत पीसकर उसने विचार किया, मैं न तो राज-कन्या हूँ और न राजपूतानी—मै तो अपने देव की नर्तकी हूँ। मुझे यहाँ क्या अधिकार है?

और उसके रोते हुए हृदय पर असह्य प्रहार होने लगे।

भीमदेव महाराज ने आज अत्यधिक उत्साह से अपने कार्य को समाप्त किया। उनकी रगों मे नये संगीत के आलाप गूंज रहे थे। उसकी कल्पना उस भयकर और रमणीय रात्रि के चित्र खड़े कर रही थी। वह छत, वह चाँदनी, वह सेज—सकीर्ण, छोटी और अव्यवस्थित, सामन्त की बातचीत, लग्नविधि, और उन सबके ऊपर राज करती हुई चन्द्र-किरणों से बनी उछलती, कल्लोलती और रस से आप्लावित चौला! इन विचारों में डूबे महाराज अन्तःपुर मे आये।

चौला बैठी हुई अपने नृत्य के कपडों मे मोती गूँथ रही थी। उस

मांगती हूँ—दोगे ?'

'बोल, बहन, बोल ।'

'जब तक मेरा भोलानाथ प्रभास में वापस लौटे तब तक यहीं रहोगे—यदि मैं जीवित रही तो ?'

सामन्त को विजय-तिलक की याद आई । उस रात की मीठी बातें याद आईं । उस रात उसने भाई बनकर कन्यादान दिया था, यह भी याद आया ।

'अच्छा, चौला, स्वीकार है । और कुछ ?'

'सामन्त, सौ वर्ष जी मेरे वीर !'

चौला के मुख पर मन्द हास्य खेलने लगा । जिस सामन्त ने महीनों से सुख, हर्ष अथवा शान्ति नहीं देखी थी, वह भी हँसा और इन दो एकाकियों ने मिलकर जगत् के भार को हलका किया ।

: ५ :

महीने-भर बाद परमभट्टारक श्री भीमदेव महाराज की चौलादेवी के गर्भ से प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ । खम्भात, पाटण और गुजरात में आनन्दोत्सव मनाया गया । महाराज के सुख का पार न रहा । वे खम्भात आये, पुत्र-रत्न को खिलाया और दास-दासियों को वस्त्राभूषण दिये । चौला उनकी प्रिय रानी थी । यह उनका प्रथम पुत्र था । उनके सुख और विजय पर कलश चढ़ा था ।

जब चौला प्रसव-काल की वेदना से मुक्त हुई और उसे होश आया तो उसका मन अपने पुत्र को देखने को न हुआ; और जब उसने पुत्र को देखा, उसकी विशाल छाती, सिंह के समान कटि और बड़ी-बड़ी आँखें देखीं तो वह थर-थर काँप उठी । वही छाती, वही कटि, वही आँखें—परन्तु कुछ अधिक बड़ी, अधिक प्रौढ़, अधिक प्रभावपूर्ण—उसे याद आईं । उसे ऐसा लगा जैसे उसने हृदय-भेदक स्वप्न में किसी भयानक राक्षस को देख लिया हो ।

उसे चक्कर आने लगे ।

देवों के देव महादेवजी की वह वचनदत्ता इस बालक
अधमता की शृङ्खला के समान समझती थी । जब उसे

उसके दुख का पार न रहता।

दो महीने बाद विमल मन्त्री उसे पाटण ले जाने के लिए आये। मना तो किया नही जा सकता था, इसलिए वह तैयार हुई। उसने पालकी में पड़े-पड़े धीरे-धीरे पाटण का रास्ता तय किया।

अन्त में वह गुजरात की राजधानी मे पहुँची और राजगढ़ के अन्तःपुर मे रही। रानी उदयमती आकर मिल गई—नुकीली नाकवाली, रूपवती, कुलीन राजपूतानी—भीमदेव के अनुकूल अर्द्धाङ्गिनी। दास-दासियों की दौड़-धूप होने लगी। चौला रानी की व्यवस्था करने के लिए राजगढ़ मे हलचल मच गई।

चौला की तबीयत कुछ सुधर गई थी, परन्तु इस वैभवपूर्ण राज-प्रासाद में उसे खम्भात के बराबर भी आराम नही मिला। खम्भात में सामने ही समुद्र था, उसके उस किनारे पर भगवान् विराजते थे। वहाँ के राजमहल में थोड़े आदमी थे; न इतना आडम्बर था और न दास-दासियों के झुण्ड।

पहले दिन आते ही उसे लगा—पता नही किस प्रकार—कि बाहर के इस सब प्रकार के सम्मान के होते हुए भी उसे पराया और अधम समझा जा रहा था।

बात भी ठीक है, दांत पीसकर उसने विचार किया, मैं न तो राज-कन्या हूँ और न राजपूतानी—मैं तो अपने देव की नर्तकी हूँ। मुझे यहाँ क्या अधिकार है?

और उसके रोते हुए हृदय पर असह्य प्रहार होने लगे।

भीमदेव महाराज ने आज अत्यधिक उत्साह से अपने कार्य को समाप्त किया। उनकी रगों में नये संगीत के आलाप गूंज रहे थे। उसकी कल्पना उस भयकर और रमणीय रात्रि के चित्र खड़े कर रही थी। वह छत, वह चाँदनी, वह सेज—सकीर्ण, छोटी और अव्यवस्थित, सामन्त की बातचीत, लग्नविधि, और उन सबके ऊपर राज करती हुई चन्द्र-किरणों में बनी उछलती, कल्लोलती और रस से आप्लावित चौला! इन विचारों में डूबे महाराज अन्तःपुर मे आये।

चौला बैठी हुई अपने नृत्य के कपड़ो मे मोती गूँथ रही थी। उस

समय भी खण्ड के अँधेरे में वह ऐसी लग रही थी जैसे काले बादल में लिपटा हुआ चन्द्रिका से निर्मल आकाश का भाग।

'चौला, क्या करती है?'

चौला ने ऊपर देखा और अपनी थकी हुई निस्तेज दृष्टि महाराज पर डाली।

'अपने कपड़ों में मोती भर रही हूँ।'

'कपड़े! दासियाँ कहाँ गईं? और ये कपड़े?'

'ये तो मेरे नृत्य के कपड़े हैं। दासियाँ इन्हें छू लें तो ये अशुद्ध हो जाएँ।'

'उँह', हँसकर महाराज ने कहा, 'मैंने सुना है कि तू रोज़ रात को नये कपड़े बनाती है। क्या ये वही हैं?'

चौला ने गरदन हिलाकर 'हाँ' कही।

'लेकिन यह क्या पागलपन है? तू तो अब पाटण की देवी है। तुझे नर्तकियों के इस वेश की आवश्यकता नहीं है।'

चौला खड़ी हो गई। लालिमा से दीप्त उसके गाल उसके फीके सुन्दर मुख को अनुपम बना रहे थे।

'महाराज, मैं तो नर्तकी थी और रहूँगी—अपने देव की।' उसकी आवाज़ काँप रही थी।

भीमदेव महाराज को ऐसी सुहावनी रात व्यर्थ के झगड़े में नहीं बितानी थी। वह शीघ्र शरण में गये, 'चौला, मुझसे भूल हुई। देव की नर्तकी ने तो मेरे सिंहासन को उज्ज्वल किया है। आ,' कहकर उन्होंने हाथ बढ़ाकर उसे भुजाओं में भरना चाहा।

चौला ने प्रेमवश महाराज को आते देखा तो थोड़ी देर तक क्रोध-पूर्ण आँखों से देखती रही। इतने ही में महाराज का हाथ उससे लगा। चौला फटी हुई आँखों और फीके मुख से पास आते हुए हाथ को इस प्रकार देखने लगी जैसे कोई नाग डसने के लिए आ रहा हो। उसके रोम खड़े हो गए। उसका सारा भयत्रस्त शरीर संकुचित हो गया। वह पीछे हटी। आते हुए फनों से बचने के लिए उसने दोनों हाथ आगे कर लिए और उसके मुख से भयंकर चीख निकल गई।

सम्बन्ध है ?' महाराज ने हँसकर कहा।

उन्होंने तो एक सामान्य चतुराई की बात कही थी, परन्तु चौला को ऐसा लगा जैसे किसीने सारे जगत् की आँखों के सामने उसको तमाचा मार दिया हो। वह अपमानित और पीड़ित होकर खड़ी हो गई।

'मुझे प्रभास भेज दो,' आँसू-भरी आँखों से उसने विनती की।

'चौला, तू चली जाएगी तो मुझे यहाँ कैसे अच्छा लगेगा ?'

'लेकिन मेरा व्रत—' आती हुई आशा को जाते देखकर उसने फिर हाथ जोड़े।

भीमदेव का प्रचण्ड पुरुषत्व चौला के आकर्षण के वश अवश्य था, परन्तु साथ ही उनको इस कुसुम-कोमल नववधू के प्रति असीम प्रेम भी था। वह प्रेम उन्हें चौला के प्रति उदार होने की प्रेरणा दे रहा था। महाराज हँसे।

'पगली, तेरी बात मैं कैसे टाल सकता हूँ ? जा, अपना व्रत पूरा कर। जैसे उस रात को विजय प्राप्त करने के बाद हम मिले थे, वैसे ही जब भरत-खण्ड के समस्त राजाओं की उपस्थिति में भगवान् की प्रतिष्ठा हो जाएगी, तब हम फिर मिलेंगे।' और उन्होंने आशावान् प्रेमी की भावना को व्यक्त किया, 'उस समय अनेक दिनों की इच्छा एक ही रात में पूरी कर लेंगे।'

'महाराज,' चौला चरणों में गिर पड़ी, 'आप तो कृपालु हैं। मैं इस उपकार का बदला कैसे चुका सकती हूँ ? मैं तो केवल दासी हूँ।'

उसने जैसे-तैसे उमड़ते हुए आँसुओं को रोका।

: ६ :

परम भट्टारक श्री भीमदेव महाराज की प्रिय पत्नी भगवान् सोमनाथ का मन्दिर बनवाने के लिए प्रभास गई। साथ में दासियाँ और थोड़ी-सी सेना भी गई। स्वयं महाराज भीमदेव अपने मंत्रियों सहित उसे कुछ दूर तक छोड़ने गये। दामोदर मेहता प्रभास तक साथ गये; कारण, सोमनाथ के भक्त इस भावुक ब्राह्मण को भी भगवान् की प्रतिष्ठा कराने की जल्दी थी। कुंवर क्षेमराज की देख-भाल के लिए राजवैद्य भी साथ गये।

प्रभास की ओर पैर बढ़ाते हुए चौला को कुछ उत्साह आया, परन्तु

वह अधिक नहीं टिका। वहाँ पहुँचने पर उसने ऊँचा और बड़ा, नया कोट चिना जाते देखा; नये रास्ते और कुआँ-बावड़ी बनते देखे, थोड़ी बस्ती वाले चौराहे देखे; नये ढंग के, नये प्रकार के आधे बने हुए शिखरों वाले मन्दिर देखे; राजप्रासाद के समान गगनराशि का मठ देखा, राजमहल की श्रेष्ठ अनुकृति जैसा महाराज का प्रासाद देखा। जहाँ पहले नर्तकियों का आवास था वहाँ ब्राह्मणों के लिए नई बस्ती बसाई जा रही थी और भगवान् के मन्दिर का शिखर बहुत बड़ा परन्तु भिन्न आकृति का, जैसी अटारियों में वह बैठती थी वैसी अटारियों के बिना, अधबना पड़ा था।

यह नवीन और सुन्दर सृष्टि थी—किसी अपरिचित विश्वकर्मा द्वारा निर्मित; यह उसके भगवान् का धाम नहीं था। वह प्रासाद में आई, वह उस अन्तःपुर में गई, जिसे भीमदेव महाराज ने विशेष रूप से उसी के लिए बनवाया था और अपरिचितता के वातावरण से बेचैन होकर वह आँसू बहाने लगी।

जिस प्रकार पाला पृथ्वी को आच्छादित कर लेता है उसी प्रकार ग्लानि उसके हृदय को आच्छादित कर रही थी और उसका एकरंगा विस्तार उसके प्रत्येक भाव, उमंग और नृत्य को वैसा ही रूप दे रहा था।

पूर्व जन्म की अपूर्ण कामनाओं से प्रेरित होकर कोई प्रेतलोक का वासी जैसे इस लोक में भटकता है वैसे ही वह जितना महादेवी की मर्यादा को छोड़ सकती थी उतना छोड़कर, अधूरे पत्थरों, ईंट और चूने, कारीगरों और लकड़ी छीलते हुए मजदूरों के बीच घूमती और इन अपरिचित और पराई-सी लगने वाली नई इमारतों में अपने हृदय में अंकित नष्ट परन्तु अविस्मरणीय सृष्टि को गढ़ी करती।

यहाँ वह बचपन में खेली थी, यहाँ ताल चूकने पर गंगा ने उसे नोचा था; यहाँ बैठकर उसने आलाप लिये थे, यहाँ गुरुदेव ने उसे सीख दी थी; यहाँ वह कुण्डल से लड़ी थी। उस ओर—अब वहाँ दीपमालिका बनाई जा रही थी—वह भीमदेव से अलग हुई थी। जहाँ बन्द दीवारों के बीच त्रिपुर-सुन्दरी का छोटा मन्दिर खड़ा था और जहाँ

उसे ले आया था, वहाँ खुले चौक में महामाया का बड़ा मन्दिर खड़ा किया जा रहा था। और परकोटे में, जहाँ अब गगन सर्वज्ञ का मठ खड़ा हो रहा था, वह ओसारा था जिसकी छत पर वह भगवान् पिनाकपाणि को वरने के लिए पाटण के स्वामी के वश में हो गई थी।

और जब वह भगवान् के नये बनने वाले गर्भगृह के सामने आई तब उसकी आँखों में अँधेरा छा गया। ईंट और पत्थर ओझल हो गए, मणि-मण्डित सभामण्डप जैसा था वैसा हो गया और उसने गंगा और गुरुदेव को उसकी चिता तैयार करते देखा।

उससे भी भयंकर दृश्य उसने तब देखा जब कि वह होश में आई। जहाँ उसके प्रियतम देव-के-देव महादेव विराजते थे वहाँ इस समय एक खाली कमरा बन रहा था। उसके वे नाथ, जिन्होंने सृष्टि के समय ब्रह्मा और विष्णु के झगड़े को शान्त किया था, अब वहाँ नहीं थे।

और प्रलय के समय नष्ट होती सृष्टि की भयंकर निर्जनता में, जैसे वही अन्तिम मानवी हो ऐसे, चारों ओर निराशामय दृष्टि डालती वह क्रन्दन से हृदय को विदीर्ण कर रही थी।

: ७ :

सूर्य उदय होता है और अस्त होता है; पत्थर के मन्दिर और मकान धीरे-धीरे ऊँचे उठते हैं, बाज़ारों और चौकों में आदमियों की बस्ती बढ़ती जाती है।

परन्तु चौला दिन-दिन इस प्रकार अन्तर की गहराई में उतरती जाती है जैसे वह किसी प्रेतलोक की निवासिनी हो। इस सबमें उसका और उसके जगत् का जैसे कुछ भी नहीं है। ये मनुष्य उसे अपने नहीं लगते, इसकी इमारतें अपनी नहीं लगतीं। यह उसका प्रभास—यह उसके देव का धाम नहीं है। गगनराशि—गगन सर्वज्ञ भी उसका नहीं है। यह तो हृष्ट-पुष्ट, धृष्ट और रेशमी वस्त्रों से सजा हुआ साधु है।

उसका जगत् तो मात्र उसके हृदय में है। वहाँ पूर्वकाल के मन्दिर की घण्टा-ध्वनि होती; वहाँ गंग सर्वज्ञ अब भी गौरवशाली होकर आरती करते; वहाँ गंगा अब भी नर्तकियों को संगीत और नृत्य सिखाती; वहाँ अब भी वह नाचती-कूदती और गाती, हँसते-हँसते अपने भोलानाथ को

रिझाती, और प्रणय-विह्वल अभिसारिका के समान विल्वपत्र से अपने प्रभु की पूजा करती।

यह उनका वास्तविक जगत् था—जहाँ वह जागती थी और जगत् सोता था; जहाँ जगत् जागता वहाँ वह यन्त्रवत् खाती-पीती और बन्धन की बात करती तथा दिन-रात अपने कपड़ों को भरा करती। उन कपड़ों पर मोती और माणिक की अद्भुत कारीगरी करने के अतिरिक्त उसके जीवन में और कोई आनन्द की बात नहीं थी।

दास-दासियों ने इस महादेवी के पागलपन में रस लेना छोड़ दिया। वे यह निश्चय नहीं कर सके कि वह पागल है या नहीं, लेकिन इतना अवश्य है कि सब उसे देखकर डरते थे। वह जहाँ जाती वहाँ से मृत्यु-लोक की ऊष्मा चली जाती। वह जिस स्थान को छोड़कर जाती उस पर कुछ देर के लिए सबको कँपकँपी आ जाती।

जब सध्या होती और भगवान् की आरती हो रही होती तब चोला मानो चौंककर जागती और उसे जगत् का भान होता। वह अत्यधिक उत्साह से जिन वस्त्रों को तैयार करती थी उन्हें अपनी खाट पर फैलाती और बड़ी देर तक उन्हें देखा करती।

उसके हृदय में किसी समय इन वस्त्रों को पहनकर अपने प्रियतम को रिझाने और उनसे क्षमा माँगने की आशा उत्पन्न होती रहती।

उसे वह प्रबोधिनी एकादशी याद आती, जबकि उसने नृत्य द्वारा भोला शम्भु को वश में किया था।

किसी दिन फिर वह गग सर्वज्ञ की उपस्थिति में भगवान् को आत्म-समर्पण करेगी।

कुछ देर वह देखती रहती और यदि दूर पर कहीं कोई शख फूंका जाता या बैलों की घंटियाँ बज उठतीं तो उसका हृदय उछलने लगता। तब वह फिर उत्साही बालिका हो जाती। वह चारों ओर देखती, ठिठकती और यदि कुछ नहीं सुनाई देता तो बड़ी देर तक राह देखती और अन्त में रो पड़ती।

'वह नहीं आयेंगे, नाथ नहीं आयेंगे' ऐसे असम्बद्ध वाक्य बोलने लगती, गिर पड़ती, बाल नोचती और सिसक उठती। उसके अग-अग

में निराशा का शीत व्याप्त हो जाता। वह भ्रष्ट थी, उसने अपने प्रियतम को छोड़कर मनुष्य के साथ व्यभिचार किया था। उसके नाथ अब उससे असन्तुष्ट हो गए थे। अब वे कभी नहीं आयेंगे, उसे कभी क्षमा न करेंगे।

उसकी अधोगति पराकाष्ठा को पहुंच गई थी—जब उसे इसका भान होता तब वह तड़प उठती और कितनी ही बार तो बेहोश होकर गिर पड़ती।

उसके जीवन का नित्य का यही क्रम था। उसमें भी जब कभी वह कुंवर क्षेमराज को लेती तो उसके जीवन में और भी विष घुल जाता। वह दिन-दिन भीमदेव महाराज की मूर्ति बनता जाता और उसके लिए पार्थिव बन्धन बनकर गले को जकड़ता जाता था।

इस प्रकार रोज शाम होती, सुबह होती और चौला अपनी प्रणय-विह्वलता में बेहोश-सी उस एक ही क्षण की प्रतीक्षा करके जीती जब कि उसके नाथ फिर आयेंगे और क्षमा करके गोद में ले लेंगे।

इस प्रकार दिन गिनते-गिनते महीने बीत गए। सरदी गई, गरमी आई, गरमी गई और बरसात आई।

नन्दी की घण्टा-ध्वनि की बाट देखते-देखते उसका धीरज चुक गया। सेज सजाते-सजाते और वस्त्र बिछाते-बिछाते रात बैरिन होने लगी, परन्तु न आये भोलानाथ, न आया वह क्षण। उसके मन की लालसा मन में ही रह गई।

: ८ :

आश्विन मास आया। शरद् की उल्लासमयी पूर्णिमा के दिन भगवान् की प्रतिष्ठा करवाने का दिन आया।

परम भट्टारक श्री भीमदेव महाराज की ओर से निमन्त्रण भेजा गया और देश-देश के राजा प्रभास में आये। उसके मुहल्लों में पूर्व की अपेक्षा और भी अधिक चेतना आ गई। व्यापारी बाजार में बैठे और घर-घर वेद-ध्वनि गूंजने लगी। चौक-चौक में समस्त भरत-खण्ड से आये हुए यात्रियों ने पड़ाव डाले और लकुलेश मत के अधिष्ठाता गगन सर्वज्ञ ने महारुद्र आरम्भ किया।

प्रभासगढ़ पर नगाड़े बजे और पताकाएँ फहराई गईं और धाम म्लेच्छ-विमर्दन बाणावली भीम के प्रताप से, जैसा था उससे भी कहीं अधिक भव्य होकर, भगवद्भक्ति की विजय-दुन्दुभि बजाने लगा।

चौला अपने महल की अटारी पर खड़ी हुई समुद्र पर दृष्टि स्थिर कर स्वप्न देख रही थी और चारों ओर होने वाली 'जय सोमनाथ' की विजय-घोषणा उसके स्वप्नों को नया वेग और अनोखी सजीवता दे रही थी।

भीमदेव महाराज पधारे—सामन्तचक्र से संवृत्त और विजय-नशा में चूर हुई सेना को लेकर सारा गाँव पागल हो गया। गगन सर्वत्र ने विजेता का अभिनन्दन किया और चालुक्य-शिरोमणि ने चारों हाथों से दान दिया, परन्तु चौला के स्वप्न के गढ़ वैसे ही अभेद्य रहे जैसे कि वे थे।

प्रभास के राजमहल में भीमदेव महाराज का हृदय गर्व से फटा जा रहा था। आज उनके वैभव और कीर्ति की सीमा न थी। कवियों ने उनको म्लेच्छ-विमर्दन और अप्रतिरथ वीर कहा था। उनके प्रताप से नया प्रभास अनुपम सौन्दर्य से शोभित था और कौस्तुभ मणि के समान तेजस्वी सागर में से तिरकर आ रहा था।

जैसे सतयुग में सोम ने, त्रेता में रावण ने और द्वापर में श्रीकृष्ण ने इस मन्दिर की स्थापना की थी वैसे ही कलयुग में यह चालुक्य-श्रेष्ठ कर रहा था।

भीमदेव महाराज अन्तःपुर में आये—गर्व से प्रफुल्लित, कीर्ति से प्रकाशित, वैसे ही भोले, रसिक और शूर। अब भगवान् की प्रतिष्ठा होनी थी; चौला रानी व्रत पूरा करने वाली थी और उस युद्ध की रात्रि में मनाया हुआ आनन्द आमरण व्याप्त होने वाला था।

वे प्रियतमा से मिलने गये, परन्तु चौला की अविस्मरणीय आकृति में किसी परलोकवासिनी रानी का आभास पाकर विस्मित हो गए।

'चौला, आज मेरे जीवन की धन्य घड़ी है। आज मैं भगवान् सोमनाथ की प्रतिष्ठा कराऊँगा और समस्त भरत-खण्ड मेरी कीर्ति का

था। एक मृत के सदृश चौला का स्नेह ही उसका सर्वस्व उसे किसीकी क्या परवाह ? उसे प्रतिष्ठा की क्या परवाह ? देव की उसे क्या पड़ी ? कीर्ति, धन और राज्य उसके लिए क्या ? तो रेगिस्तान के रेत का एक कण था, जो देव-कृपा से कैलाश बन या था। देव विमुख हो जाए तो फिर कण-का-कण; उसकी ऊँटनियाँ यार थीं। सन्ध्या की आरती के समय वह रेगिस्तान में जानेवाला या—उसी रास्ते से, जिस पर उसके पूर्वज गये थे। चौला की प्रार्थना को क्यों स्वीकार न करे ?

वह खड़ा हुआ और कमर से बँधी भेंट को कस लिया।

'चौला,' और उसकी आवाज़ में जीवन-भर का प्रेम उमड़ आया, 'चौला, मैं तेरा दास हूं। तेरी आज्ञा शिरोधार्य है। मैं आरती के समय आऊँगा।'

चौला का मुख लालिमायुक्त हो गया।

'चौहान, तो मैं तैयार रहूँगी।'

: १० :

सन्ध्या की आरती का समय होता है। सभामण्डप जगमगाता है। सैकड़ों दीपस्तम्भों से हज़ारों दीपकों का प्रकाश फैलता है। पहले से भी सुन्दर और विशाल गर्भद्वार से भगवान् के दर्शन होते हैं—जैसे सुन्दर वैसे ही, चन्दन-चर्चित, बिल्वपत्र के ढेर में शोभित, ऊपर सुवर्ण की जल धारी लटकती है; नीचे कोने-कोने में सुवर्ण के दीपक जल रहे हैं।

बाहर सभामण्डप में राजाओं का जमघट है। दाएँ हाथ को राज भीमदेव बैठे हैं। साथ ही झालोर का वाक्पतिराज बुढ़ापे की को जवानी के जोर से खींचता है और सपादलक्ष का बलदेव चौह हज़ारों युद्धों का खिलाड़ी—गर्व से हँसता है। आबू के धूंधीराज स्थानक के मुकुन्ददेव पास बैठे हैं और इसके साथ ही कच्छ औ के स्वामी तथा सामन्त प्रफुल्लित होकर बैठे हैं।

आज सब अमीर को हराने के लिए दी गई आहुतियों के रहे हैं। इस विचार से कि अन्त में अनादि और अनन्त भग धाम में विराजे, उनके झेले हुए दुःख आज सुखद स्मृ

ए हैं।

शंख बजता है और सब खड़े होते हैं। गगन सर्वज्ञ खड़ाऊँ पहने, ोनानुक पर व्याघ्रचर्म बाँधे और काली जटाओं को तनिक क्षोभ से बिखेरते हुए आते हैं। उनमें गुरुदेव के चलने और बोलने की कुछ झलक लगती है।

वे सबके 'नमः शिवाय' को स्वीकार करते, मन्दिर में जाकर पल-र ध्यान करते हैं, बिल्वपत्र चढ़ाते और घण्टा बजाते हैं।

जो रत्नजटित आरती काश्मीर के राजा ने भगवान् के चरणों में ी थी उसे गगन सर्वज्ञ अपने हाथ में लेते हैं।

सब एक साथ आरती गाते हैं।

इसके बाद वे 'जय सोमनाथ' की घोषणा करते हैं और सभामण्डप बैठे हुए महारथी उसे दुहराते हैं। आकाश में धीरे से फैलती गर्जना भाँति यह घोषणा परकोटे में, उसके बाहर और नगर में फैलती है। ाड़े बजते हैं। नगर के निवासी और सैनिक सब घोषणा को दुहराते समस्त प्रभास पहले के समान सोमनाथमय हो जाता है। सब 'जय नाथ' की एक आवाज से आकाश को गुंजा देते हैं।

सब लोग शान्त होते हैं। गगन सर्वज्ञ अपने स्थान पर बैठकर आज्ञा ते हैं, 'नृत्य होने दो।'

शिष्य पुकार लगाते हैं, 'नृत्य शुरू करो।' कोई कहता है, 'लेकिन तो नर्तकी तैयार है और न बाजे वाले ही तैयार हैं।'

एक क्षण—दो क्षण—पाँच क्षण।

राजा आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरे को देखते हैं। गगन सर्वज्ञ के ह पर भ्रूभंग स्पष्ट दिखाई देता है।

परन्तु झाँझ की झनकार आती है, मृदङ्ग बजता है।

नर्तकी सभामण्डप में आती है।

यह हीरे, मोती और रत्नों से जगमगाती दिव्यलोक की देदीप्यमान सा जान पड़ती है। उसके वस्त्र और आभूषणों पर पड़कर दीपकों प्रकाश सहस्रधा हो जाता है और सबकी आँखों में चकाचौंध पैदा होता है।

दौड़ते हुए नर्तकी के पास जाते हैं।

इस धन्य पल में चौला ने अपने भोलानाथ को आत्मसमर्पण कर दिया था।

चारों ओर व्याप्त अभंग शान्ति में एक सिसकी सुनाई देती है। एक योद्धा शीघ्रता के साथ लोगों के बीच होकर निकलता हुआ अँधेरे में अदृश्य हो जाता है।